१ प्राणों का महत्व ०३-०५-१९८०

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उसके ज्ञान और विज्ञान का वर्णन कर रहा है। उसकी रचना का भान प्रायः मानव के अन्तर्हृदय में अंकुरित होता रहता है। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है, जब हम इसके ऊपर विचार-विनिमय करना आरम्भ करते हैं तो बेटा! एक-एक वेदमन्त्र में ब्रह्माण्ड का ज्ञान-विज्ञान हमें प्रायः दृष्टिपात होने लगता है। जैसे एक-एक की रचना एक परमाणु में ही विद्यमान है। जैसे यह ब्रह्माण्ड नाना रूपों में हमें दृष्टिपात आ रहा है, इसी प्रकार जब हम चिन्तन करते हैं तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात होने लगता है जैसे परमपिता परमात्मा का ज्ञान तथा विज्ञान एक वेदमन्त्र में दृष्टिपात आ रहा है।

आओ मेरे पुत्रो! आज कुछ विशेष चर्चा न देकर कुछ परिचय देने आया हूँ। वह परिचय क्या? हमारे यहाँ प्रत्येक वेदमन्त्रका जो परिचय है वे परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान है। एक ही वेदमन्त्रमें तुम्हें व्यवहार दृष्टिपात आएगा। उसी वेदमन्त्रमें परमाणुवाद की विद्या दृष्टिपात आने लगेगी परन्तु जब और गम्भीरता में पहुंचेंगे तो आध्यात्मिक विज्ञान तुम्हें दृष्टिपात आएगा, तो यह तीन प्रकार की आभा हमें एक ही वेदमन्त्रसे दृष्टिपात होने लगेगी। जितना भी यह मानव समाज या प्राणी समाज है उस सर्वत्रप्राणियों में वह मेरा देव ओत-प्रोत हो रहा है।

प्राणायाम का महत्त्व

तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें उस घ्राण-इन्द्रिय के द्वार पर ले जाने के लिए आया हूँ। यह घ्राण-इन्द्रिय क्या कह रही है? यह नाना प्रकार की सुगन्धियों को ले रही है। परन्तु स्वार्थपरता में आ करके यह असुगन्धित भी बन जाती है। जब हम इस घ्राण-इन्द्रिय के ऊपर व्यवहार में विचार-विनिमय करने लगते हैं तो इसके व्यवहार में जितना भी यह समाज अथवा यह पृथ्वी का विज्ञान प्रत्येक श्वासों की प्रतिक्रिया को यह जानती है। एक मानव मानव के समीप विद्यमान है परन्तु जब मानव के आन्तरिक विचारों में प्राण के द्वारा, श्वास के द्वारा उसके विचार व्यक्त हो रहे हैं और वह जो वैज्ञानिक, जो प्राण इन्द्रियों के विशेषज्ञ होते हैं, प्रत्येक संवाद की प्रतिक्रिया को जान करके यह जान लेते हैं कि इसके आन्तरिक विचार यह कह रहे हैं।

मेरे प्यारे! देखो, यह प्राणवाद ही तो उसको मृत्यु से पार ले जाता है, मृत्यु से उसे उलांघ देता है, नाना बन्धनों से दूरी कर देता है। वह स्वार्थपरता की परिधि समाप्त हो जाती है तो यही घ्राण-इन्द्रिय इस मानव के शरीर में वायु बन करके विद्यमान है। क्योंकि वायु ही घ्राण कहलाती है और जब यह परिधियाँ समाप्त हो जाती हैं तो यही मृत्यु से पार हो करके वायु देवता बन गया। वायु देवता के बन जाने के पश्चात् देवतव को यह प्राप्त हो गया।

तो विचार क्या? मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते हुए कहा था कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक मेरी पुत्रियों को प्राणायाम करना चाहिए प्राण की भिन्न-भिन्न प्रकार की जो प्रतिक्रियाएं हैं उनको जानना चाहिए, क्योंकि पञ्चमहाभूतों में यह घ्राण इन्द्रियाँ गति करती रहती हैं किसी काल में इसमें पार्थिव परमाणु हैं, किसी श्वास के साथ में अग्नितत्व पर रमण कर रहा है, किसी श्वास की धारा में जलम् ब्रह्मणे जल तत्त्व रमण कर रहा है। तो मुनिवरों! इनके परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हैं। अब जो गति मानव के प्रत्येक श्वास के साथ में होती है वह गति अन्तरिक्ष में परमाणुवाद ही होती है।

नक्षत्रों का त्रिकोण

अब यह आन्तरिक जगत् बाह्य-जगत् दोनों की एक सन्तुलना की जाती है कि हमको जितना भी यह जगत्

दृष्टिपात आता है, इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में एक प्राण गति कर रहा है। यह प्राण ही है जो एक सूत्रबन करके लोक-लोकान्तर में पिरोया हुआ है। तुम्हें यह दृष्टिपात हो गया होगा मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय कराया। एक शनि मण्डल है, एक स्वाति नक्षत्र है और एक जेठाय नक्षत्र है, इन तीनों मण्डलों का त्रिकोण बन जाता है, जिस काल में त्रिकोण बनता है उस काल में यह प्राण जल में प्रवेश करके अग्नि की धाराओं में, अग्नि जलों में प्रचण्ड हो जाती है उस समय जल प्लावन आते रहते हैं।

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा कि जिस समय जल की अग्नि यह प्राण-स्वरूप विकृत होता है तो देखो, जल में अग्नि प्रवेश हो जाती है और यह भयंकर अग्नि बनकर के पृथ्वी-मण्डल के प्राणियों को नष्ट करने लगती है। तो यह सब धाराएं क्या हैं? वेद का ऋषि यह कहता है प्राणम् ब्रहे वरुणोस्तुतिः अधनम् देवम् प्रजाम् मयावरधोः कि प्राण को हम विकृत न होने दें। यह प्राण विकृत किस काल में होता है? विकृत उस काल में होता है जबकि मानव को समाज में विषय कामना की बलवती हो जाती है। वह कामना क्रोध में परिवर्तित हो जाती है। वह अति-स्वार्थ में परिवर्तित हो जाती है। वही धाराएं नाना प्रकार की धारा बन करके, अपने शरीर की अग्नि बन अमृत को अग्नि में प्रवेश कर दिया जाता है। अपने-अपने दोषों के कारण और वही परमाणु, वही गतियाँ अन्तरिक्ष में होती हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, वाक्य प्रकट करते हुए कहा था देखो, इसके ऊपर पुरातन काल से ही ऋषि-मुनि अनुसन्धान करते रहे हैं। आओ आज मैं तुम्हें कुछ ऋषियों के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ। मुझे वह काल स्मरण है ऋषि-मुनियों का, वह भव्यकाल जिस काल में वे अनुसन्धान करते रहते थे। वेद का मन्त्रऋषियों के मध्य में विद्यमान है और उसके ऊपर वे मनन करते रहते थे उनकी जो मनन क्रिया है वह कितनी उज्ज्वल और महानता में रमण करती रही है।

एक समय अंगीरस ऋषि गोत्रमें एक त्रेतकेतु अंगीरस हुए हैं। त्रेतकेतु अंगीरस मुनि महाराज तपस्या करने लगे। वे मन और प्राण दोनों को एक सूत्रमें लाने का प्रयास करने लगे। यह जो पञ्च-इन्द्रिय हैं, इनका उन्होंने एक सांकल्य बनाया और सांकल्य बनाकर यह जो शरीर रूपी यज्ञशाला है इस यज्ञशाला में उस साकल्य की आहुति देने लगे। अब विचार आता है कि आहुति क्यों दी जाती है। वेद का ऋषि कहता है, मनस्त्व प्राणम् ब्रह्मणे नाना प्रवासहीः वेद की ऋचा यह कहती है कि यह जो दस रूपों में प्राण का विभाजन हो गया है इस प्राण क्रिया को जानने के लिए।

प्राण और मन का मूल

मेरे प्यारे! मैं तुम्हें गम्भीर दर्शनों में ले जाने के लिए कुछ परिचय दूंगा। आज प्रत्येक मानव की इच्छा होती है कि मैं मोक्ष को जानना चाहता हूँ, मोक्ष क्या है? प्रत्येक मानव के अंकुरों का वृक्ष बनता है और वृक्ष जब सिमट जाता है वह मोक्ष का नृत्य कहलाता है। मेरे प्यारे! त्रेतकेतु अंगीरस ऋषि ने १०१ वर्ष का तप किया, तप करने के पश्चात् वे मन और प्राण, दोनों को जान गये। दोनों के सूत्रों को जान गएं और उसका बाह्य जगत्, आन्तरिक जगत्, दोनों को जान गये। एक समय उनके द्वार सोमभानु गार्गे और सन्दुप भारद्वाज और ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, ब्रह्मचारी सुदेशवन ने गमन किया। भ्रमण करते हुए यह सब त्रेतकेतु अंगीरस मुनि के द्वार पर पहुंचे। अंगीरस मुनि ने कहा, आओ ऋषियो विराजो, वे जिज्ञासु विराजमान हो गये। वे सब त्रेतकेतु से एक स्वर में बोले, महाराज हम प्राण और मन के मूल को जानना चाहते हैं। यह कहाँ से प्रारम्भ होता है, कहाँ से विभाजन होता है और कहाँ यह विभाजन हो करके इसका कैसे वृक्ष बनता है और इस वृक्ष को कैसे सिमटा जाता है।

त्रेतकेतु अंगीरस बोले कि प्रश्न तो बहुत ही प्रिय है परन्तु उन्होंने कहा हे जिज्ञासुओं! तुम मेरे द्वार पर आए

हो, तुमने प्रश्न किए हैं और मैंने जो कुछ जाना है उसका उच्चारण करने का प्रयास करूंगा। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ तुमको इस विद्या को कितना अधिपथ्य है? कितना जानते हो इसके सम्बन्ध में? जिज्ञासुओं ने कहा, प्रभु! हम इतना ही जानते हैं कि हमारी इन्द्रियों का और इन्द्रियों के विषयों का बाह्य जगत् होने से साकार वृक्ष बन गया है इससे आगे हम कुछ नहीं जानते। उन्होंने कहा, बहुत प्रिय, तो विद्यमान हो जाओ।

बेटा! वे विद्यमान हो गएं और अंगीरस ने कहा कि तुम अब्रनाम वरिहस्ते छह माह तक तुम तप करो। बेटा! उन्होंने वाक्य स्वीकार किया और अंगीरस ने कहा तुम गऊओं का पालन भी करो। मेरे प्यारे! वह गऊओं का पालन करने लगे। अब यहाँ गऊ के नाना रूप माने गएं हैं। ऋषि अंगीरस कौन-सी गऊओं के लिए कह रहे है, हमारे यहाँ गौ नाम इन्द्रियों को कहते हैं क्योंकि यह चंचल है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा तुम गऊओं का पालन करो, पालन करने का अभिप्राय क्या कि इन्द्रियों की जो चंचलता है उस चंचलता को इन्द्रियों में न रहने दो।

ज्ञान और प्रयत्न

बेटा! यह वाक्य जिज्ञासुओं ने स्वीकार किया और वह छह माह के पश्चात् अंगीरस ऋषि के चरणों में ओत-प्रोत हो गएं और ऋषि से कहा, महाराज अब हमें उत्तर दीजिए। ऋषि ने कहा, तुम बाह्य विज्ञान से जानना चाहते हो या आन्तरिक जगत् से जानना चाहते हो। उन्होंने कहा महाराज! हम सबसे प्रथम तो सिमटना चाहते हैं। और सिमट करके हम इस वृक्ष को भी जानना चाहते हैं। मेरे प्यारे! ऋषियों के जिज्ञासुओं के बड़े महान् प्रश्न थे। तब अंगीरस ऋषि उत्तर देने लगे। ऋषि ने कहा, हे जिज्ञासुओं यह जो मानव शरीर है इस मानव शरीर में दो प्रतिक्रियाएं हो रही हैं, वही प्रतिक्रिया पृथ्वी के गर्भ में हो रही है, वही प्रतिक्रिया सूर्य की किरणों में हो रही है, वही प्रतिक्रिया चन्द्रमा की कांति में हो रही है और वहीं प्रतिक्रिया नाना लोक-लोकान्तरों में नृत्य कर रही हैं। यह जितना भी जगत् है इस सर्वत्रजगत् में दो ही क्रियाएं हैं। जब यह मानव किसी काल में संसार में आया तो इस मानव शरीर में एक मूल था और वह मूल दो भागों में परिवर्तित हो गया। वह दो भाग क्या हैं, ज्ञान और प्रयत्न। ज्ञान और प्रयत्न दो भाग हैं इसके। ज्ञान का माध्यम मन और क्रिया का माध्यम प्राण, क्रिया के मूल में प्राण बन गया और ज्ञान के मूल में मन बन गया। जितना भी ज्ञान होता है वह मन के द्वारा होता है, जितनी क्रियाएं होती हैं वह प्राण के द्वारा होती हैं।

अंगिरस ऋषि कहते है, हे जिज्ञासुओ! मन के द्वारा एक कामना की उत्पत्ति होने लगी, क्योंकि वह ज्ञान का माध्यम था। जितना ज्ञान होता गया उतनी कामना बलवती बनती चली गयी। जितना वृक्ष बन गया है उतना ही बलवती बन गया। वह जो वृक्ष बनने लगा तो वह जो प्रयत्न था, प्राण उसके मूल में था। उसके पाँच भाग बना दिये, कामना के द्वारा पाँच भाग बन गये। प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान अब जितना भी यह ब्रह्माण्ड था और मानव के शरीर में जो कार्य होने लगा, वह पाँच प्राणों के रूप में।

प्राण विवेचना

प्राण सबसे प्रथम प्राण है। प्राण का कार्य नाभि केन्द्र से होकर ब्रह्मरन्ध्र के आसन को गति करके घ्राण के द्वारा बाह्य-जगत् में परिणत हो जाना अर्थात् प्राण नाभि-केन्द्र से चलता है। यह नाना प्रकार की ज्ञान वाहक नाड़ियों में से रमण करता हुआ बाह्य-जगत् में चला जाता है। अरबों-खरबों परमाणु बाह्य-जगत् में गति करते हैं। उनको लेकर आन्तरिक जगत् में प्रवेश करता है और आन्तरिक-जगत् से अरबों-खरबों परमाणु दुर्गन्धयुक्त बाह्य जगत् में त्याग देता है। आदान-प्रदान होने लगा। जितना भी यह जगत् है, इसमें जितना भी यह आदान-प्रदान हो रहा है, चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में नाना धातुओं के रूप में हो रहा हो, पृथ्वी के गर्भ में चाहे जल को शक्तिशाली बनाता जा रहा है विभक्त क्रिया चल रही है। मुनिवरों! देखो, वृक्षों के, वनस्पतियों के, सर्वत्र उसके मूल में एक रसों का

आदान-प्रदान हो रहा है, वह आदान-प्रदान जैसे परमाणुवाद का श्वास प्रति-श्वास के द्वारा होता है। इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों में भी उसी प्रकार की गतियाँ हो रही हैं। मेरे प्यारे! ऋषि कहता है प्राण आदान-प्रदान कर रहा है।

अपान-द्वितीय अपान प्राण है। नाभि से निचले विभाग को अपान माना गया है। अपान का समन्वय पृथ्वी से होता है। अपान क्या कर रहा है? जितनी भी चाहे वह सूर्य की किरणों से गतियाँ कर रही हैं। जितना भी ऊर्ध्व में कर्म हो रहा है वह सब अपान के द्वारा। अपान के द्वारा इस मानव शरीर में जो प्रतिक्रिया हो रही है। यदि अपान प्राण विकृत हो जाता है तो मानव का स्वास्थ्य भंग हो जाता है, स्वस्थ नहीं रहता परन्तु अपान अपना कार्य कर रहा है। अपान के मूल में मोह भी है, अपान के मूल में उत्पत्ति भी है, अपान के मूल में त्याग भी हैं जितनी वस्तु त्यागी जाती हैं वह अपान से त्यागी जाती हैं। शरीर से जब माता-पिता के हृदय में एक संकल्प जागता है कि मैं पुत्रयाग करना चाहता हूँ तो अपान में गति होती है और वह जो वनस्पतियों का रस है उन दोनों का मिलान हो करके पुत्रकी उत्पत्ति होती है। उससे याग होता है तो अभिप्राय क्या? वह अपान कहलाता है। जितना भी त्याग है वह अपान के द्वारा है, जितनी भी उड़ान गति है वह सब प्राण के द्वारा होती रहती है। ऋषि कहता है इसमें गुरूत्व है, आकर्षण शक्ति है यदि इस पृथ्वी में अपान शक्ति नहीं होगी तो सर्व पृथ्वियाँ सूर्य की किरणों के साथ सूर्य में आकर्षित हो जाएगी। तो बेटा! आकर्षण शक्ति अपान से मानी जाती है, अपान ही है जो मानव को दूर ले जाता है, गमन कराता है। अपान ही है जो मानव की सुरक्षा कर रहा है। अगर अपान प्राण नहीं होगा तो मानव का जो यह मानवीय शरीर है यह भी नहीं रहेगा। यह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जो अपने कारण में लय हो जाते हैं परन्तु प्राण ही जागरूक रहता है। एक अपान अपना कार्य कर रहा है, प्राण अपना कार्य कर रहा है वहाँ मनस्तत्व भी नहीं रहता परन्तु आत्मा का इसके साथ सन्निधान रहता है। सन्निधान मात्रसे ही यह अपनी गति करता है तो ऋषि कहता है अपान को शुद्ध रूप में रमण कराना है।

व्यान-तृतीय व्यान प्राण है। कण्ठ के ऊपर के विभाग का स्वामी व्यान प्राण है। मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क, ऋणित मस्तिष्क भी इसी के अधीन कार्य कर रहे हैं। मानव के मस्तिष्क में अरबों-खरबों प्रकार की तरंगें व्यान प्राण के द्वारा होती हैं। हमारे इस मानव शरीर में ७२ करोड़ ७२ लाख १० हजार २ सौ नाड़ियाँ गिनी जाती हैं ये रक्त को मानव के ब्रह्मरन्ध्र से लेकर के पगों तक जो गतियाँ हो रही हैं उसको संचालित कर रहा है रसों का शोधन हो रहा है, गतियाँ हो रही हैं, प्रत्येक नस-नाड़ी में व्यान प्राण गति कर रहा है, शक्ति प्रदान कर रहा है, संचालित कर रहा है। उनमें एक आभा उत्पन्न हो रही है। यह सर्वत्रव्यान प्राण कहलाता है। तो ऋषि कहता है व्यान प्राण सर्वत्रता में रमण करता है।

समान-चतुर्थ समान प्राण है जितना भी हम आहार करते हैं। अन्न इत्यादि का पान करते हैं समान प्राण उसका रस बना देता है और रस बना करके जितनी इन्द्रियाँ हैं इन सबको सामान्यता में पहुंचा देता है। इसमें वितरण करने की शक्ति हैं। तीनों प्राण-प्राण, व्यान और उदान वे जो बनाते हैं वे समान प्राण को दे देते हैं और समान प्राण शरीर की नस-नाड़ियों में उनके भाग के अनुसार वितरित कर देता है। इस समान प्राण से ही निर्माण होता है। इन्हीं पाँचों प्राणों से राष्ट्र का निर्माण होता है। मेरे प्यारे! वैश्य की उत्पत्ति कहाँ से होती है, समान प्राण से होती है। ऋषि कहता है, समान प्राण अपने में जो धारण कर लेता है वह प्रत्येक इन्द्रिय को अपना-अपना भाग परिवर्तित कर देता है अथवा प्रत्येक इन्द्रिय के भाग को पहुंचा देता है, वितरण करना इसका कार्य है।

उदान-पाँचवां उदान प्राण है, उदान प्राण का सम्बन्ध कण्ठ से रहता है। जिस समय प्राणान्त होने लगता है अथवा यह आत्मा शरीर को त्यागता है उस समय चित्त इस उदान प्राण से मिलान करता है और उदान उस चेतना से मिलान करके इस शरीर को त्याग दिया जाता है। और अब मुनिवरों! देखो, अब्रह्म व्रनिस्ताह जितना भी ज्ञान

का माध्यम है, जितना ज्ञान आता है वह जीवन और मृत्युपर्यन्त जितना भी ज्ञान-विज्ञान है उसकी तरंगें उदान में आती रहती हैं, उदान कण्ठ में रहता है। जिस समय आत्मा यह शरीर त्यागता है तो यह मन के मण्डल के साथ में आता है जिससे चित्त कहते हैं। चित्त नाम भूमिका का है, चित्त नाम अंकुरों के क्षेत्रमें है जहाँ मानव के शरीर में नाना अंकुर होते हैं, जन्म-जन्मांतरों के संस्कार होते हैं, करोड़ों जन्मों के संस्कार मानव के जीवन में निहित होते हैं। वह जो चित्त है उदान प्राण से मिलान करता है उसमें सूक्ष्म शरीर और उसी में कारण शरीर विद्यमान रहते हैं। आत्मा, मन दोनों उदान प्राण के ऊपर सवार हो करके शरीर को त्याग दिया जाता है। द्वितीय शरीरों को धारण करता रहता है जैसा उसका अन्तिम विचार होता है, उसके अनुसार जन्म धारण करता है। क्योंकि मन में चित्त का मण्डल रहता है तो ऋषि कहता है, हे मानव! अन्त में जो तेरा विचार होगा, जिस प्रकार का तेरा चिन्तन होगा उसी प्रकार की योनियाँ तुझे प्राप्त होंगी क्योंकि उदान प्राण का सम्बन्ध कण्ठ से रहता है।

इसके पश्चात् धिती सन्धनम् देवत् प्राणाः पाँचों प्राणों को यह मन कार्य देता है और मन का कार्यवाहक यहाँ शान्त नहीं होता। मेरे प्यारे! तब यह पांच उप-प्राणों की उत्पत्ति हो गई। नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म, कृकल, पाँच उप-प्राण बन गये। जब यह पाँच उप-प्राण और बन गएं तो इनको कार्यवाह दे दिया।

नाग-प्रथम उप प्राण-नाग को कहते हैं जब मानव को अति क्रोध आता है तो नाग प्राण का ऊर्ध्वामुख हो जाता है, ऊर्ध्वामुख हो करके जब अधिक क्रोध आता है तो अमृत भस्म हो जाता और उसका विष बन करके नाग प्राण उसको अपने में ग्रहण करने लगता है। नाग कहते हैं जो विष को शोषण करता है, विष जब अति बलवान हो जाता है तो यही विष नाना प्रकार के रोगों के मूल कारणों को उत्पन्न करता है। इसलिए वेद का ऋषि कहता है क्रोध न करो, प्राणों को विकृत न होने दो जिससे रुग्णता तुम्हारे शरीर में न आये।

देवदत्त-द्वितीय उप प्राण-देवदत्त कहलाता है जब क्रोध नहीं होता, जितना भी नाग प्राण शान्त रहता है, विष नहीं होता, उतना ही देवताओं के मार्ग को गति करता रहता है, देवताओं को प्राप्त होता रहता है तो ऋषि कहता है जब यह अपान विकृत हो जाए किसी काल में तो यह देवदत्त प्राण कार्य में लाता है।

धनंजय -तृतीय धनंजय उप प्राण-उसे कहते हैं जो सर्वत्रब्रह्माण्ड की आभा में रमण करने वाला है। जितना भी पृथ्वी का गर्भ है, जितना भी अन्तरिक्ष का गर्भ है, प्रत्येक लोक-लोकान्तरों का जो गर्भ है उसको जान लेता है, धनंजय प्राण के द्वारा। ऋषि कहता है, व्यान-प्राण में विकृतता आ जाएं तो धनंजय उसके साथ में गति करता है।

कूर्म-कूर्म उप प्राण-वह कहलाता है जिसमें ब्रह्मवेत्ता की उत्पत्ति होती है ब्रह्मा में वह रमण करने लगता है।

कृकल उप प्राण-उद्बुद्ध अग्नि को उत्पन्न करके ध्रुव लोकों में ले जाता है। वेद का ऋषि कहता है मानव को स्थूल बनाना, सूक्ष्म बनाना यह कूर्म और कृकल दोनों प्राणों का कार्य है।

प्रत्येक प्राण के साथ एक-एक उप-प्राण की उत्पत्ति हो गई तो कार्यवाहक इसी मनीराम ने ज्ञान के द्वारा प्रदान कर दिया। जब प्रदान कर दिया तो मुनिवरों! देखो, इनका कार्य प्रारम्भ होने लगा। अब मेरे प्यारे! यह एक मानव के शरीर का निर्माण हो गया। पाँचों प्राणों का निर्माण हो गया है एक प्राण के दस भाग बन गएं हैं। दस से विशेष प्राण के भाग नहीं बन सकते। मैंने बहुत पुरातन कल में कहा, इन दस प्राणों के विभक्त होने से ही दस रूपों में यह संसार रच गया और जितना ज्ञान और विज्ञान है इन दस ही प्राणों में रमण कर रहा है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाएं परमाणुओं की अन्तरिक्ष में होती रहती है।

अब मुनिवरों! देखो! मन को तो कार्य करना था, तो वह अंकुरित होने लगे। उसके पश्चात् मन के तो भाग हो नहीं सकते थे। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियों का निर्माण हो गया। अब यह बाह्य जगत् बन गया इस मानव शरीर का। यह आन्तरिक जगत् में था, प्राणों के रूप में था, परन्तु बाह्य जगत् हो गया इन्द्रियों का निर्माण

हो गया। जब इन्द्रियों का निर्माण हो गया तो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ बन गयी। वह जो ज्ञानेन्द्रियाँ थीं अब उनमें बेटा! रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द यह पाँचों विषय आ समाने लगे, यह इनका विषय बन गया। जब यह विषय बन गया तो अब इन इन्द्रियों में स्वार्थपरता आ गयी, मृत्यु के अन्धकार में जब यह इन्द्रियाँ आ गई अब तक यह प्रकाश में थीं। परन्तु जब रूप आ गया, रस आ गया, गन्ध आ गया, स्पर्श आ गया, शब्द आ गया तो पुत्रो! उनमें स्वार्थपरता भी आ गयी। क्योंकि ध्वनियों में अशुद्धवाद हो गया, रूप में अशुद्धवाद आ गया। रसना में, गन्ध में, स्पर्श में, शब्दों में अशुद्धवाद आ गया। प्रत्येक इन्द्रिय में जब अशुद्धवाद आ गया तो स्वार्थपरता आ गयी। अब मानव मृत्यु से भयभीत होने लगा। प्रत्येक मानव चाहने लगा कि तेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। यदि यह रूप रस गन्ध इत्यादि नहीं होते तो मृत्यु का भय नहीं हो सकता था। मृत्यु उसके मूल में कोई वस्तु ही नहीं थी। परन्तु जब यह मृत्यु से ह्रस होने लगा, ममता में आ करके मृत्यु उसे ह्रसने लगी। तो इस ममता के आने के पश्चात् काम, क्रोध, लोभ मोह और मद यह पाँचों विषय बन गये। यह मित्र और शत्रु बन गये। मित्रऔर शत्रु के रूप में जब यह परिणत होने लगे तो एक और उत्पन्न हो गया इसका नाम तृष्णा कहलाया जाता है। मेरे प्यारे! इनके ऊपर एक तृष्णा है। तृष्णा इतनी बलवती बन गई है। आज्ञा के अनुसार कार्य होता है तो मानव में अभिमान की उत्पत्ति हो गई और यदि आज्ञा के अनुसार कार्य नहीं होता तो निराशा आ गयी, मृत्यु आ गयी, अन्धकार आ गया।

मेरे प्यारे! मानव कहाँ चला गया कितना विशाल यह वृक्ष बन गया है। महर्षि श्‍वेतकेतु अंगीरस ऋषि कहते हैं हे जिज्ञासुओं यह एक मानव का वृक्ष बन गया है। अब देखो! इस वृक्ष को समेटना है क्योंकि तृष्णा के आने पर एक मानव के पिता के दस पुत्रहैं, वह कहते हैं कि नगर में अग्नि प्रदीप्त करके आओ। वह अग्नि प्रदीप्त कर देते हैं तो अभिमान की उत्पत्ति हो गई और यदि आज्ञा के अनुसार दस पुत्रकार्य नहीं करते तो वहाँ निराशा आ गई, मृत्यु आ गयी। अंगीरस ऋषि ने कहा है ब्रह्म के जिज्ञासुओं, हे मानव! दोनों ही तेरे लिए अन्धकार हैं। अभिमान भी मृत्यु है और निराशा भी मृत्यु है, दोनों ही मृत्यु कहलाती हैं।

अब बेटा! जिज्ञासुओं ने विचारा, चिन्तन किया। मानव-दर्शन को विचारा कि अब हम इसको कैसे समेट सकते हैं। वे राष्ट्र राष्ट्रों को त्याग करके भयंकर वनों में चले गए। भयंकर वनों में जाकर चिन्तन करना प्रारम्भ किया। सबसे प्रथम तृष्णा को त्यागने का प्रयत्न किया। जब तृष्णा को ऋषियों ने समेट लिया। तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद इत्यादियों पर अनुशासन होने लगा। अनुशासन होने के पश्चात् प्रत्येक इन्द्रिय का साकल्य बनाया गया। अब यहाँ आकर के ऋषि प्रत्येक इन्द्रिय का साकल्य बनाता है, जो उसका विषय है उस विषय को ज्ञानपूर्वक जान करके उसको आकुंचन में लाता है।

प्रकृति की पाँच गतियाँ

क्योंकि प्रकृति की पाँच प्रकार की गति कहलाती है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा प्रकृति की पाँच प्रकार की गतियाँ हैं। १. प्रसारण २. गति ३. ऊर्ध्वा ४. ध्रुवा और ५. आकुंचन। तो ऋषियों ने इन्द्रियों के विषयों का आकुंचन किया। आकुंचन किया तो वहाँ योगी ने प्राणायाम किया। बेटा! संकल्प प्राणायाम किया जो मैंने कल उच्चारण किया था। संकल्प प्राणायाम करने से मेरे प्यारे! संकल्प में यह जगत् कटिबद्ध हो गया। वह वृक्ष संकल्प में कटिबद्ध हो गया और संकल्प के द्वारा जब उन्होंने अग्नि प्रदीप्त प्राणायाम किया। यह भिन्न-भिन्न प्राणायाम करने से उन्होंने सबसे अन्तिम प्राणायाम केवल संकल्प प्राणायाम किया और संकल्प को भी त्याग दिया। देखो, जब साकल्य बना करके इस हृदयरूपी गुफा में जहाँ चेतनरूपी आत्मा विद्यमान है जिसके मूल में मन और प्राण देखो, ज्ञान और प्रयन्त दो भाग हो गये।

मुनिवरों! देखो! उसके अव्रनाह में उसके यह साकल्य बन करके आहुति देने लगा, स्वाहा उच्चारण करने

लगा ब्रह्मचरिष्यामि ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्वा बन गई। ध्रुवा से ऊर्ध्वा बन गई, अंकुरित न होकर के केवल ज्ञान में वह परिपक्व बन गया। उसके पश्चात् यह सब इन्द्रिय प्राणों में समाहित हो गई तो नाग, देवदत्त, धंनजय यह प्राण में समाहित हो गएं और जब वह प्राण में समाहित होकर के प्राण और अपान इन दोनों का जब समन्वय हो गया, दोनों का मिलान हो गया, दोनों के मिलान होने के पश्चात् दोनों सूत्रएक मनके में आ गए। मन इसमें सिमट करके ज्ञान और प्रयत्न दोनों एक सूत्रमें आ गए। ज्ञान और प्रयत्न दोनों के एक सूत्रमें आने का नाम मोक्ष है और इनका वृक्ष बन जाने का नाम यह संसार है।

तो विचार क्या, संसार क्या है? संसार एक वृक्ष है। पाँचों प्राणों का, दसों प्राणों का, मन इसमें कटिबद्ध होने से एक वृक्ष बन जाता है। यह संसार बन गया और इस संसार को समेट करके, अपने में अनुभव करके ज्ञान और प्रयत्न दोनों का एक सूत्रमें आ जाना ही मोक्ष कहलाता है। बेटा! यह मैंने कुछ मानव दर्शन की चर्चाएं तुम्हें प्रकट कीं। विचार-विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें दर्शनों की चर्चा कर रहा था, मैं एक वेदमन्त्रकी व्याख्या कर रहा था। मन्त्रकहता था प्राण ब्रह्मणों वृताम्देवाः मनस्त्वम् ब्रह्मणे वृतो देवा। मनस्त्वंम् जानाति गच्छतम् मेरे प्यारे! यह वेद-मन्त्रों की कुछ आख्याकियाएं हैं।

त्रेतकेतु अंगीरस मुनि ने कहा था कि हे जिज्ञासुओ तुम यह जान गएं होंगे कि कैसे वृक्ष बनता है और कैसे वृक्ष को समेट करके एक अंकुरित हो जाता है। गुण से गुणी कदापि पृथक् नहीं होता। इसलिए इस शरीर में जो चेतन रूपी आत्मा है इसके मूल में ज्ञान और प्रयत्न है, इसके संसार में लाते हो तो वह वृक्ष बन जाता है, अंकुरित हो करके मन और प्राण को एक सूत्रमें आते ही यह संसार सिमटकर तुम्हारे अन्तर्हृदय में प्रवेश कर जाता है।

यह है बेटा! एक यौगिक विषय। इसे हमारे यहाँ यौगिक विषय कहा जाता है। योगियों की विवेचना करके से, ऋषि-मुनियों की आभाओं को विचारने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक मानव को प्राणायाम करना चाहिए। इस प्राण को और मन, को दोनों को एक सूत्रमें लाना है, दोनों को एक सूत्रमें लाने के लिए प्रयत्न करते रहेंगे। पति-पत्नी गृह में रहने वाले हैं यदि यह प्राणायाम करते हैं, तो उनका जीवन भी सफल है और मुनिवरों! देखो, जहाँ इस प्रकार की धाराओं का चिन्तन करने में मानव लग लाता है, प्रत्येक प्राणी त्यागमय हो जाता है वहाँ राष्ट्र की भी आवश्यकता नहीं रहती। राष्ट्र तो बहुत ही निम्न श्रेणी की एक तरंग है, वह कोई ऊंची तरंग नहीं है, निम्न श्रेणी की तरंग है। यह समाज विकृत होने से ही इसकी उत्पत्ति होती है। इसे विकृत ही न होने दो।

तो मेरे पुत्रों! विचार-विनिमय क्या? आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है कि हम मानव दर्शन को जानने वाले बनें। बेटा! इस प्राण की चर्चा तो मैं कल भी तुम्हें प्रकट करूंगा। मेरा यह विषय शांत नहीं हुआ है अभी। मैंने एक वृक्ष को बनाया है और उस वृक्ष को बना करके, समेट करके जिसे ऋषि मोक्ष कहते हैं, ज्ञान और प्रयत्न में कारण रूप बन जाते हैं। बेटा! कल मुझे समय मिलेगा मैं स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर कैसे-कैसे प्राण की आभाओं में गति करता है, यह चर्चा मैं कल प्रकट करूंगा। आज का यह विचार समाप्त। मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट करूंगा। कल बेटा! भगवान राम १२ कलाओं को जानते थे, उन १२ कलाओं में एक सूक्ष्म रहस्यतम सूक्ष्म शरीर और पृथ्वी के विज्ञान को जानते थे। कल में इस सम्बन्ध में कोई विवेचना प्रकट करूंगा, आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा, इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त होगी।

२ कन्या याग २०-०४-१९८४

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है, प्रत्येक वेदमन्त्र ऐसे उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है, उसकी महिमा का गुणगान गा रहा है, अथवा उसके गुणों का वर्णन कर रहा है, जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, माता का वर्णन कर रहा है, जिस प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, अथवा ब्रह्माण्ड का वर्णन कर रही है। जिस भी काल में ऋषि-मुनियों ने अथवा वैज्ञानिकों ने इसके सन्दर्भ में गम्भीर चिन्तन प्रारम्भ किया है। तो एक चेतना दृष्टिपात आती रहती है, और उस चेतना को जानने के लिए प्रत्येक मानव परम्परागतों से अनुसन्धान करता रहा है।

हमारे यहाँ नाना प्रकार की अग्नियों का चयन करने वालों न इस अग्नि के गर्भ में विद्यमान हो करके उस प्रभु का दिग्दर्शन किया है। आपो में प्रवेश हो करके आपोमयी ज्योति को निहारते-निहारते अग्निमय स्वरूप बनाने के पश्चात उसमें प्रभु का दिग्दर्शन प्रायः भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ान उड़ने वालों नक नाना प्रकार के यागों की चर्चाएं की हैं, अथवा उड़ाने उड़ी हैं। यहाँ संसार में प्रत्येक शुभ कर्म का नामोकरण यागों में चयन किया है और कहा है कि जितना भी शुभ कर्म है, चिन्तनीय कर्म है, जिसमें पूर्णता प्राप्ति होती है उस सर्वत्र को नामोकरण याग में परिणित होता रहा है। मैं इस सम्बन्ध में कोई विवेचना नहीं देना चाहता हूँ। आज का हमारा विचार-विनिमय यह कि वेदमन्त्र क्या कह रहा है, अथवा वैदिक ध्वनि हमें क्या कहती है, हमें किस मार्ग के लिए प्रेरित करती है? पुनरूक्तियां, विचारो का उद्घोष करना चाहते हैं। उस प्रेरणा को ले करके हम अपनी आत्मा में परिणित होना चाहते हैं। बेटा! हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने परम्परागतों से यागों का वर्णन किया है। कन्या यागाम् ब्रह्मवाचो देवः। एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने भयंकर वनों में विद्यमान हो करके यागों का वर्णन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने जहाँ अग्निष्टयोग याग, वायपेयी यागों का वर्णन किया वहा कन्या का भी वर्णन किया है।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कन्या याग के सम्बन्ध में अपनी लेखनी बद्ध करते हुए कहा कि कन्याम् भवते देवः अस्वाम ब्रह्म वाचो दिव्यगतः। उन्होंने इस वेदमन्त्र को ले करके जहाँ कन्या याग का वर्णन किया है। मुनिवरों! गार्हपथ्य नाम की अग्नि और कन्या याग एक ही सूत्र के मनके हैं, दोनों एक ही सूत्र में सूत्रित हो जाते हैं। कन्या याग का अभिप्राय यह कि कन्याम द्रेवः लोकाम वाजप्रभिक्तो देवः। वेद का मन्त्र कहता है कि जिस समय देवलोक में इसका वास होता है, तो देवताजन कन्या की रक्षा करते हैं, देवताजनों में इसका वास रहता है। देवः प्रवृत्ति होती है, देवताजन ही इस और की, जनहित की सुरक्षा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं, जिस प्रकार माता के गर्भस्थल में शिशु के प्रवेश होने से नाना देवता ही उस शिशु की रक्षा करते हैं। आज का वेदमन्त्र भी यह कह रहा था कि सम्भवः शिशु रूद्राः गृहे वर्णा ब्रह्मवाचाः। यहाँ वसुन्धरा सन्दर्भ में वसुन्धरा नाम माता को वर्णन किया जाता है। वसुन्धरा के भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं, परन्तु वसुन्धरा का विशेष सम्बन्ध माता के जीवन से ही रहता है।

एक शिशु के प्रवेश से, संगतिकरण के आभास से ही माता के गर्भस्थल में नाना देवता शिशु की, बिन्दु की, रक्षा करते हैं, परमपिता परमात्मा उनके निर्माण में सहकारिता करते हैं। अग्नि ऊष्मा बनाती है, सूर्य प्रकाश देता है, चन्द्रमा अमृत देता है, प्राण वायु देता है और तारा मण्डलों की माला बन जाती है। लघु मस्तिष्क, हृदय कृतिकः,

नाना प्रकार के मस्तिष्कों का निर्माण होता है, जिसे योगीजन जानते है। इसी प्रकार कन्या जब देवलोक में होती है तो देवता उसकी रक्षा करते हैं। देवता उसके अंग-प्रत्यंग दोनो की रक्षा करते हैं। जब बाल्यकाल होता है तो देवताजन प्रत्येक इन्द्रिय के समीप विद्यमान होते हैं। महर्षि ने वर्णन करते हुए कहा कि जब परमपिता परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं तो ब्रह्माण्ड की रचना में सप्त ऋषियों का वर्णन आता है। जब मानव शरीर की रचना होती है, तो वहाँ भी सप्त ऋषियों का वर्णन आता है। जहाँ कन्या याग का वर्णन आता है।, वहाँ भी सप्त होताओं का वर्णन आता है।

आज मैं केवल तुम्हें परिचय देने आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, न बुद्धिमान हूँ। केवन कन्या याग के सम्बन्ध में तुम्हें एक सूक्ष्म परिचय देना चाहता हूँ कि देवताजन उसकी रक्षा करते उसके समूचे हृदय की आभूति बनाते हैं,उसको सन्भूति में लाते रहते हैं। इस हृदय में एक बालिका की प्रतिभा देवताओं से सम्बन्धित है। इस प्रकार कन्या याग का देव लोक समाप्त हो जाता है। देवताजन जब अन्तर्मुखी हो जाते हैं तो वह पितरलोक में प्रवेश हो जाती है। पितरलोक उसे कहते हैं, जहाँ पितरजन उसकी रक्षा करते हैं। ब्रह्मा चरिष्यामि गतः प्रमाणः देवः हिरणाय प्रथः। पितरलोक की चर्चा करते हुए एक समय, माता अरून्धति ने वशिष्ठ मुनि महाराज से प्रश्न किया कि महाराज! यह पितरलोक क्या है? उन्होंने कहा कि देवी! पितर कहते हैं रक्षक को, वही तो पितरों का स्थान माना गया है। देवी ने कहा कि पितरों में कौन-कौन आता है। ऋषि ने कहा कि सबसे प्रथम परमपिता परमात्मा आता है। द्वितीय माता-पिता आते है, आचार्यजन आते हैं। उसके पश्चात् अनेक समाज के विद्वान और भी नाना प्रतिभाषित होते रहते हैं। तो विचार-विनिमय कया कि पितरों में सूर्य देव, जड़त्व भी पित्वत माने गएं हैं। जो रक्षा करता है, वही पितर कहलाता है। इस प्रकार जब कन्या आचार्य कुल में प्रवेश करती है तो आचार्य उसकी रक्षा करते हैं। उसकी शिक्षा-दीक्षा उसको अनुशासन में लाना ही आचार्य का कर्त्तव्य होता हैं। ब्रह्मचारी जब याग में प्रवेश करता है तो उस समय पितरों का वर्णन आता हैं आचार्य कहता है कि अनुशासन में जो आ जाताहै, वह योग में सिद्ध हो जाता है वही पितर याग में, पितरों के संरक्षण में रह करके अपने जीवन को अनुशासित बना लेता है। पितरजनों का अभिप्राय यह है कि जिसके संरक्षण में रह करके हम अपनी प्रवृत्तियों को ऊंचा बना दें, अपनी महत्ता में परिणित हो जाएं। परमपिता परमात्मा का यह जगत भी अनुशासन में निहित रहता है, अनुशासन में बद्ध रहता है। सूर्य है, चन्द्र है, तारा मण्डल है, नाना प्रकार की अग्नि आपो में प्रवेश करती हुई प्राण सूत्र में पिरोई हुई है। इसी प्रकार प्रत्येक लोक-लोकान्तर एक दूसरे में अनुशासित हो रहा है, अनुशासन में बद्ध हो रहा है। प्रातः काल सूर्य उदय होता है, पृथ्वी अपनी परिक्रमा कर रही है, सूर्य अपने में कटिबद्ध हो करके परिक्रमा कर रहा है। नाना लोक-लोकान्तर एक दूसरे में अनुशासित हो रहा है, अनुशासन में बद्ध हो रहा है। नाना लोक-लोकान्तर, नाना प्रकार की निहारिका एक दूसरे की सहकारिता से परिक्रमा कर रही हैं।

बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में महर्षि भारद्वाज ने यहाँ कन्या याग का प्रसंग आया। ब्रह्मचारी यज्ञदत्त और कवन्धि ने अस्वातक नाम के एक परमाणु का विभाजन किया। यन्त्रों में यन्त्रित हो करके, अनुशासित हो करके जब उसका विभाजन किया तो उसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्रण अनुशासन में हो रहा था। मैं अपने विचारों को दूरी न ले जाऊं। पितर याग का अभिप्राय यह कि अपने को अनुशासन में लाना और कन्या याग करते हुए उसकी रक्षा करना और उसको अनुशासन में लाना और कन्या याग करते हुए उसकी रक्षा करना और उसको अनुशासन में लाना। अनुशासन का अभिप्राय यह है कि वह सर्वत्र विज्ञान को जानने वाली हों। मेरी पुत्री कन्या सर्वत्र विद्या को जान करके अनुशासन में रहने वाली हों अनुशासन किसे कहते हैं? आत्म चिन्तन करके आत्मा के अनुकूल जो प्रवृत्तियाँ है, आत्मतत्व की जो प्रवृत्तियाँ हैं, उनके ऊपर अपना अधिपथ्य करना,

उसके अनुसार करना। इस प्रकार क्रियाकलाप करने का नाम अनुशासन कहा जाता है।

बेटा! योग में आता है कि योगम् ब्रह्मवायः देवम् दधिहि। वेद के ऋषियों ने कहा है, वेद का सूत्र कहता है कि अनुशासन का नाम योग है। प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानना, प्रत्येक इन्द्रियों को अनुशासन में लाने का नाम योग कहा जाता है। हृदयरूपी यज्ञशाला में, हृदयरूपी यज्ञवेदी का ज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा इन्द्रियों के साकल्य को परिणित करने का नाम योग है। विचार विनिमय क्या कि एक माला बनी हुई हे और वह मनके किसी सूत्र में पिरोए हुए हैं। जब मनके पिरोए जाते हैं तो अनुशासन एक माला के रूप में आ जाता है, एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर यौगिक प्रतिक्रियाओं में जब हम प्रवेश करते हैं, एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर अनुशासन की चर्चाएं करने लगते हैं, एक-एक वेदमन्त्र को विचारने लगते हैं, तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक अनुशासन में दृष्टिपात आता है। एक दूसरे में एक दूसरा मण्डल पिरोया हुआ है, एक दूसरे का सहायक बना हुआ है। यह कैसा मेरे प्यारे प्रभु का अनुपम जगत है।

बेटा! मेरे प्यारे प्रभु ने जब सृष्टि का सृजन किया तो इस संसार को यज्ञवेदी के रूप में, अनुशासन के रूप में परिणित करते हुए एक ऐसे भव्य भवन का निर्माणकिया, ऐसी सुन्दर ब्रह्माण्ड की यज्ञशाला का निर्माण किया जिसमें वैज्ञानिकजन चकित हो करके मौन हो जाते हैं। लोक-लोकान्तर के चिन्तनवेत्ताओं को एक निहारिका दूसरी निहारिका में कटिबद्ध हो रही दृष्टिपात आती है, एक निहारिका का दूसरी निहारिका से समन्वय रहता है, और उसका भी एक सूत्र बना हुआ है। इसलिए वेद के याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं कि हमें कन्या याग मे विचारना है कि अपने को अनुशासन में लाते हुए कन्या देव लोक से पितर लोक में प्रवेश करती है। जब पितर लोक में प्रवेश हो जाती है, तो युवावस्था को प्राप्त हो जाती हैं जैसे परमपिता परमात्मा का अमूल्य जगत परिवर्तनशील होता रहता है। इसी प्रकार कन्या भी परिवर्तनशील पति लोक को प्राप्त होती है। और पति लोक को प्राप्त हो करके उसे याग करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके पश्चात वे याग करते हैं परमपिता परमात्मा ने जैसे ब्रह्माण्ड की रचना की, इसी प्रकार मानव भी अपने लोक गृहस्थ की रचना करता है। विचार क्या कि वेद का वाक्य कहता है कि वह पति लोक को प्राप्त हो करके गृहस्थ ऊंचा बनाती है। पति का अभिप्राय है रक्षक, जैसे देवता रक्षक, पितर रक्षक, इसी प्रकार पति भी रक्षक कहलाता है। जैसे परमपिता परमात्मा सर्वत्र पति कहलाता है। पति का अभिप्राय है जो अपनेपन की धारणा को ले करके, रक्षक बन करके अपनी प्रतिभा को ऊंचा बनाने वाला हो।

अगस्त्य ऋषि

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में महर्षि संदीपन ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान होकर विचार विनिमय करते थे। महर्षि संदीपन ऋषि महाराज का संस्कार महर्षि टुंडुन ऋषि महाराज की कन्या से हुआ तो एक समय उनके हृदय में यह कामना जागृत हुई कि हम पुत्र याग करें। उन्होंने तप किया और पुत्र याग के सम्बन्ध में चिन्तन करने लगे। उन्होंने अपनी देवी से कहा कि हे देवी! मैं पुत्र याग करना चाहता हूँ। बहुत प्रिय देवी ने कहा। उन्होंने पुत्र याग किया। याग करने के पश्चात देवी के गर्भ से महान बालक का जन्म हुआ। देव पूजा करने का नाम भी यागहै, अग्निष्टोम भी याग कहलाता है परन्तु यहाँ संसार के ऋषि-मुनियों ने, वेद के मन्त्रों में, वेद की प्रतिभा में बताया है कि सन्तान की उत्पत्ति और उसका विचार बनाना भी याग माना गया है। बेटा! स्वाति नक्ष. में बालक का जन्म हुआ, तो ऋषि का नामोकरण उन्होंने अगस्तय के नाम से वर्णित किया। माता गर्भ में ही बालक को शिक्षा देना प्रारम्भ करती है, जैसा मैंने अभी-अभी प्रकट किया था कि देवताजन माता के गर्भस्थल में उसी रक्षा करते हैं।

शिशु की रक्षा करने वाले सर्वत्र देवता होते हैं। देव लोक में, पितर लोक में इस प्रकार की प्रतिभा का प्रायः वैदिक शास्त्रों में वर्णन आता है। साहित्य को अच्छी प्रकार चिन्तन में लाते हैं तो विचार आता रहता है कि हम

अपने में कितना सुदृढ़, कितना विचारधारा को महान बना सकते हैं। हमारे यहाँ पति के बहुत अभिप्राय हैं क्योंकि हमारे यहाँ जैसे लोकभाषा में, लोक प्रचलन में लौकिक पति कहलाता है, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा जो सर्वत्र तत्त्वों का निर्माण करने वाला है, सबको उज्ज्वलता देता है, उसका भी नामोकरण पति कहलाता है, वह भी पति है। सूर्योव्रताम देवाः, सूर्य भी पति कहलाता है। पति का अभिप्राय है रक्षा करने वाला।

गृहपथ्य अग्नि का पूजन

आज हम याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के उस विचार में चले गए जहाँ हमें एक वेदमन्त्र स्मरण आ रहा था। हमें अपने जीवन को महान बनाना है। हमें नाना प्रकार के यागों का चयन करते हुए गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करना है, जो गृह में प्रज्वलित हो रही है। विचारों की जो अग्नि है, इस अग्नि को हम साकार रूप देना चाहते हैं। अग्नि का अभिप्राय हे विचार। प्रत्येक हृदय में व्याकुलता लगी रहती है कि मैं स्वर्ग में चजा जाऊं। स्वर्ग कहाँ प्राप्त होता है? स्वर्ग उस काल में प्राप्त होता है जब गृह में गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन होता है। गार्हपथ्य नाम की अग्नि का अभिप्राय यह है, पति-पत्नी एक स्थल पर विद्यमान है, अग्निहोत्र हो रहा है, अपने विचारों में संलग्न हैं, दर्शनों की भाषा में अपनी वाणी का प्रभाव हो रहा है, विचारों की अग्नि प्रज्वलित हो रही है, अर्थात उस अग्नि का चयन करके, विचारों का चयन करते हुए उसी के अनुकूल अपने गृह के वायुमण्डल को बना लेते हैं तो वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है। इससे प्रत्येक गृहवेत्ता स्वर्ग का स्वामी बनता है, गृह की आभा प्रकट हो जाती है।

विचार-विनिमय यह कि जो राजा इस अग्नि का पूजन करता है उस राजा का राज्य पवित्र बन जाता हैं, राजा का जैसा भी क्रियाकलाप हाता है, चयन होता है उसी के अनुसार प्रजा बरतने लगती है। इसी प्रकार गृह में माता-पिता जो इस क्रियाकलाप को अपनाते हैं, चयन करते हैं, हवन कार्य में इसका चयन करके गृह स्वर्ग बन जाता है। राजा के राष्ट्र में यदि राजा तपस्वी है, महान है, गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करता है, विचार पवित्र हैं तो प्रजा भी उसके अनुकूल अनुसरण करके, राष्ट्र पवित्र बन जाता है। इसी प्रकार आचार्य कुल में ब्रह्मचारी उसके अनुकूल अनुसरण करते हैं, तो वह स्वर्ग और महान पवित्र पुरी बन जाती है और दर्शनों की प्रतिभा का उसमें प्रसार होता रहता है। प्रत्येक मानव को एक दूसरे का रक्षक बन करके, तपस्वी बन करके जीवन को महान बनाना है, पवित्र बनाना है जिससे मानवीयता मानव के धर्म में प्रवेश हो करके नाना प्रकार के यागों का चयन बना रहे।

मेरे पुत्रो! परमपिता परमात्मा का यह जो अमूल्य जगत है, उसके ऊपर चिन्तन-मनन करना यह हमारा अनुपम मानवीय कर्त्तव्य माना गया है, जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अनुसन्धान करता रहता है, अन्वेषण करता रहता है, विचार विनिमय करता रहता है, प्रत्येक आधार में अपने जीवन को पवित्र बनाता है। प्रत्येक वेदमन्त्र हमें यह कहता है कि यह जो अमूल्य परमात्मा का जगत है, यह जडवत में, चैतन्यवत में दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रभु दृष्टिपात आता हैं। एक-एक परमाणु एक-एक अणु में उस प्रभु का दिग्दर्शन होता रहता है। परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वत्रता में एक अनुशासन को निर्धारित किया है। यदि अनुशासन प्राणी मात्रा में नहीं रहता तो रक्तमय जीवन बन जाता है, नारकीय जीवन बन जाता हे, उस नारकीय जीवन को हमें लाना नहीं है।

सर्वत्र चैतन्यवत, जड़वत में मेरा प्यारा प्रभु ही दृष्टिपात आ रहा है। प्रत्येक मन्त्र उस प्रभु की गाथागा रहा है, उसके अनुशासन की चर्चाकर रहा है, उस की महत्ता की चर्चा कर रहा हैं मेरे पुत्रो! जैसे प्रत्येक वेदमन्त्र प्रभु की गाथा गा रहा है, इसी प्रकार माता का पुत्र माताकी गाथा गा रहा है क्योंकि माता को निर्णय कराने वाला माता

का पुत्र है। मेरे पुत्रो। जैसे पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा की गाथा गाते हुए प्रत्येक वेदमन्त्र के ऊपर अनुसन्धान, अन्वेषण करते हुए, अपने में चिन्तन करते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा, अब वेदों का पठन-पाठन होगा। वाराणसी, २०-०४-१९८४

३ विज्ञान का सदुपयोग १२ १० १९८६

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान करते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता हैं, क्योकि जितना भी यह जड़ जगत, और चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा हैं, जब इसका मन्थन किया जाता हैं, अथवा विचार-विनिमय किया जाता हैं, तो वे परमपिता परमात्मा दोनो ही जगत के मूल में दृष्टिपात आता रहता हैं, क्योंकि जब मानव अपने में विचारने लगता हैं, क्या मैं परमपिता परमात्मा की महती को जानना चाहता हूँ, तो वह जो संसार रूपी जो जगत हैं, वह जड़वत में और चैतन्यवत में दृष्टिपात आ रहा हैं, मानो उसको जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य हैं, क्योंकि परमपिता परमात्मा तो इसके मूल में भी विद्यमान रहता है।

तो आओ, मेरे पुत्रों! हमारा वेदमन्त्र, जहाँ परमपिता परमात्मा को सर्वज्ञ, एक-एक कण-कण में दृष्टिपात आता हुआ हम वेद हमारा वर्णन करता रहता हैं। परन्तु उसकी अनुपमता कितनी विशाल हैं, क्या वैज्ञानिक जन, जब विज्ञान के युग में प्रवेश करते हैं, तो वैज्ञानिकों को, एक-एक कण-कण में मानो वह चेतना दृष्टिपात आती हैं, और कहीं-कहीं तो ऋषि-मुनियों ने, विज्ञानवेत्ताओं ने यह निर्णय लिया है, क्या एक एक परमाणु के विभाजन करने से मानो देखो,यह ब्रह्मण्ड उसमें दृष्टिपात आता रहता हैं। तो मेरे पुत्रों! हमारा जो वेदमन्त्र हैं, वह विज्ञान के युग की चर्चा प्रगट करता रहता हैं, मानो दोनों प्रकार के विज्ञान को मापता रहता हैं, एक विज्ञान वह कहलाता हैं, जो भौतिकवाद में मानव परिणत रहता हैं, और एक आध्यात्मिक विज्ञान हैं, क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने इस संसार को, मानो बड़ी गम्भीरता से मापने का प्रयास किया, और भौतिक विज्ञानवेत्ताओं ने, मानो तरंगों के ऊपर अन्वेषण किया, उसी अन्वेषण के द्वारा, मानव अपने में अभ्योदय होता रहा हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी कि भी एक प्रेरणा प्राप्त होती हैं, क्या याग के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार दीजिए। परन्तु हमारे यहाँ याग के सम्बन्ध में पुरातन काल से ही बेटा! सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक मानो ऋषि-मुनियों के हृदयों में और ऋषि-मुनियों के क्रियाकलापों में, याग का अपना बड़ा महत्व माना गया हैं। हमारे यहाँ, जब भी कोई राजा, राष्ट्रवेत्ता के द्वारा पंहुचा हैं, उन्होंने जब राजा ने उसका स्वागत किया तो राजाओं को ऋषियों ने अपना उपदेश, सबसे प्रथम क्या हे राजन! तेरे राष्ट्र में सुगन्धि होनी चाहिए जब तेरे राष्ट्र में सुगन्धि होगी, तो तेरा राष्ट्र पवित्र बनेगा। तो मानो देखो,यह सुगन्धि जब राजा यह प्रश्न करते हैं, चरणों में ओत-प्रोत हो करके, क्या महाराज यह सुगन्धि कौन-सी होनी चाहिए? उन्होंने कहा सबसे प्रथम तुम मानो देखो, अग्नि का चयन अपने गृहों में करों, और जब अग्नि का चयन होगा देवता ब्रह्मे वृतं क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख कहलाता हैं। जब अग्नि के मुखारबिन्दु में, मानो कुछ साकल्य प्रदान करोगे, जो तुम आहार करते हो उसी का साकल्य बनाया जाता हैं परन्तु जब वह साकल्य अग्नि में प्रदान किया जाता हैं, तो वही साकल्य मानो अग्नि उसको उद्बुद्ध बना देती हैं उसको विभक्त कर देती हैं और जब उसका विभाजन हो जाता हैं तो मानो वही अग्नि मुनिवरों! रूप धारण करके ही मानो देखो, वह वायुमण्डल का शुद्धिकरण करती चली जाती हैं अग्नि के ऊपर बेटा! मैंने बहुत-सी विवेचनाएं की हैं।

परन्तु आज भी मुझे स्मरण आ रहा हैं मेरे प्यारे! ऋषि कहता है राजा से कि प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए, याग का अभिप्रायः यह है, क्या जैसे अग्नि मानो देखो, मुख में साकल्य सामूहिक बना करके आहुति देता है वहीं विचारों की सुगन्धि भी पवित्र होनी चाहिए। को पवित्र बना रहा हैं, वहाँ विचारों में सुगन्धि होना बहुत अनिवार्य हैं, विचारों में सुगन्धि किस काल में आती हैं, जब बेटा! मानव के हृदय में देखो, हिंसा के विचार नही

रह पाते अहिंसा के विचार आ जाते हैं, जब परमपिता परमात्मा को अणु रूप में जहाँ मानव देखो, सर्वत्रता के रूप में दृष्टिपात करता हैं। मेरे प्यारे! बिना परमात्मा के अनुपमता के बिना कोई भी मानव मानव में सुगन्धि उत्पन्न नही कर सकता। मैंने बहुत पुरातन काल में महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था क्या मानव में एक दूसरे की सुगन्धि जब ही आती हैं, जब मानव यह जान लेता हैं कि मानव अपना क्रियाकलाप कर रहा हैं, जैसे प्रभु मेरे अन्तर्हृदय में क्रियाकलाप कर रहा हैं, ऐसे ही मानो देखो, प्रत्येक मानव के हृदय में क्रियाकलाप हो रहा हैं। जैसे मानो मेरे मस्तिष्क में अनहद ध्वनि होती रहती हैं, और वह मुझे प्रेरणा मानो कहाँ से कहाँ से प्राप्त होती है। इसी प्रेरणा का स्रोत बन करके मानो वही तो मेरे जीवन का कल्याण करने वाला हैं और वही संसार को मानो देखो, महान बनाता रहता हैं, और विचित्र बनाता रहता हैं, तो इसके पश्चात जब राजा इन वाक्यों को स्वीकार करता हैं। तो मानो देखो, अपने विचारों को पवित्र बनाना बहुत अनिवार्य हैं, मानो देखो, मैंनें बहुत पुरातन काल में यह कहा था क्या राजा के हृदय में ब्रह्मज्ञान होना चाहिए। बिना ब्रह्म ज्ञान के नम्रता नही आती, बिना ब्रह्म ज्ञान के मानो देखो, अपने स्वतः मानवीय दर्शन करने से करने बिना मुनिवरों! देखो, मानव के हृदय में नम्रता का आभास नही हो पाता। तो मानव नम्र बन करके ही निरभिमानी जब बनता हैं, जबकि उसे ज्ञान होता हैं, विज्ञान होता हैं, विवेक होता हैं, इसीलिए इन सर्वत्रता को धारण करने में मानव को यह जान लेना चाहिए, कि मेरे अन्तर्हृदय में जो आत्मा अपना क्रियाकलाप कर रहा हैं, मानो वह सर्वज्ञ अपनी आभा में गति कर रहा हैं, उसकी मृत्यु ही नही होती, तो मुनिवरों! देखो, मानव अपने हृदय मे यह स्वीकार करता हैं, क्या तेरे अन्तर्हृदय में जो अन्तर्ध्वनि हो रही हैं। उसका भी विनाश नही होता हैं। तो मुनिवरों! राजा पुरोहित बन करके, आचार्य ऋषि-मुनि कहते हैं, क्या हे राजन! तुझे निर्भय बन करके अपने क्रियाकलापों का पालन करना हैं, याग करना है, सुगन्धि करनी हैं, और वही सुगन्धि मानो देखो, एक महान क्रियाकलापों में परिणत हो जाती हैं।

तो मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि जब अपना हृदय ग्राही बन करके इस वाक् को प्रगट करते हैं तो मुनिवरों! देखो, राज इनके वाक्यों को स्वीकार करते हैं और वह नतमस्तिष्क हो करके, यह कहते है। हे भगवन! तपो ब्रह्मे व्रताः आप तो तपस्वी हैं, हे प्रभु! जो आपका वाक् हैं वह विवेकमयी कहा जाता हैं। तो मेरे पुत्रों! देखो, यह क्रियाकलाप, सब इसके पूर्व काल में, हम बेटा! तुम्हें अश्वमेध यागों की चर्चा कर रहे थे, और भी नाना अपने वाक्यों की चर्चा कर रहे थे, परन्तु जहाँ याग के सम्बन्ध में जितना भी कहा जाता है उतना ही सूक्ष्म हैं यह इतना गहन और गम्भीर मार्मिक इसमें रहस्यतम हैं इसे मानो उदधृत कहते हैं जिसे जान करके मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाता हैं मानव अपने विचारों का याग करता हैं मानव बाह्य जगत में अग्न्याध्यान करता हैं और उसी क्योंकि अग्न्याध्यान की सुगन्धि को ले करके बेटा! वैज्ञानिकों ने अपना बड़ा अनुसन्धान किया हैं मेरे प्यारे! देखो, जब राजा ऋषि के द्वार पर जाते तो राजा उनसे प्रश्न करते तो क्या हे प्रभु! मैने याग किया हैं और याग में मानो मैं यह नही जान पाया हूँ क्या याग का वास्तविक स्वरूप क्या हैं? जिसे मैं जान सकूं तो मुनिवरों! देखो, ऋषि-मुनि उसका उत्तर देते हुए कहते हैं क्या याग वह है जो मानव का प्रत्येक शब्द अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यौ लोक में स्थिर हो जाता हैं और यज्ञशाला का रथ बन जाता हैं रथ बन करके देखो, वह उन तरंगों में ओत-प्रोत हो जाता हैं तो मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि इस प्रकार के अभ्योदय होने वाले शब्दों का जब उद्गीत गाते हैं। तो मुनिवरों! देखो, राजा अपने में प्रसन्न होता हैं और वह कहता है धन्य हैं प्रभु!

तो मेरे प्यारे! मैं राष्ट्र की चर्चा देने नही आया हूँ, केवल विचार क्या हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए आज मानो देखो, आज का विचार हमारा यह कि हम परमपिता

परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते रहें और परमपिता परमात्मा ही मानव को ऊँचा मानो देखो, उस मार्ग का पथप्रदर्शक गामी कहलाता हैं, जिससे मानव के हृदय में एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाती हैं। आओ, मेरे प्यारे! देखो, हमारे यहाँ जब याग के वांगमय में भारद्वाज जी के आश्रम में बेटा! जब मैं विज्ञान के वांगमय में प्रवेश होता हूँ, तो मुझे ऐसा प्रतीत होता हैं, क्या महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने तो अपने विद्यालय में अपने आश्रम में उन्होंने याग के द्वारा बेटा! नाना प्रकार के यन्त्रों को जानने का प्रयास किया था मानो देखो, मुझे स्मरण हैं बेटा! क्या जब ऋषि-मुनि उनके आश्रम में कोई भी जाता तो भारद्वाज यह कहा करते थे कि याग करो तो मेरे प्यारे! वह उनके यहाँ याग होता तो याग का तो यह स्वाहाः उच्चारण करते कोई उनमें से उद्गाता बनता, कोई अध्वर्यु बनता, परन्तु कोई यज्ञमान और कोई ब्रह्मा बन करके बेटा! वह याग करते तो मुनिवरों! देखो, वह एक यन्त्र को स्थित करते थे, और वह यन्त्र में मुनिवरों! देखो, जैसे याग हुआ जैसे स्वाहाः उच्चारण ध्वनि हुई मेरे पुत्रों! देखो, वही ध्वनि वेदज्ञ ध्वनि के साथ मुनिवरों! देखो, अग्नि की तरंगों में इनके चित्र जाते हुए दृष्टिपात आते थे, और वह कहा करते थे कि तुम्हारा जो वेदोक्त शब्द हैं, जो स्वाहाः शब्द हैं, हृदय का शब्द हैं, वही तो मानो देखो, तुम्हारा गति कर रहा हैं, वह द्यौ लोक में जाता हैं, और द्यौ लोक वाला जो शब्द हैं, मेरे पुत्रों! देखो, वह द्यौ में प्रवेश हो करके वह सूर्य की किरणों के द्वारा मानो देखो, ऊर्ज्वा सत्ता को प्रदान करता रहता हैं। तो मुनिवरों! यह बड़ा विज्ञानमयी एक जगत कहा गया हैं, तो भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना प्रकार के ऋषि अन्वेषण करते रहते थें और वह कहा करते थे कि महाराज! यह जो शब्द हैं यह द्यौ लोक में जाता हैं। उन्होंने कहा प्रियतम, क्योंकि उन्होंने एक वाक् बड़ा महत्वपूर्ण कहा हैं क्या जिस काल में बुद्धिजीवी प्राणी होते हैं, और सत्यवादी प्राणी जिस काल में होते हैं, याज्ञिक पुरूष होते हैं, वह काल मानो देखो, सर्वोपरि होता हैं, और जिस काल में मिथ्यावादी पुरूष होते हैं, एक-एक वाक् पर मानो मानो मिथ्या उच्चारण करने वाले पुरूष होते हैं, उसका भू मण्डल मानो देखो, अशुद्धता में परिणत हो जाता हैं। जैसे एक गृह में कलह रहता हैं, और एक गृह में दर्शनों का अभ्यास होता हैं, दर्शनों की चर्चा होती हैं, और जिस गृह में मानो देखो, कलह रहता है, वह नारकिक गृह कहलाता हैं, और जिस गृह में एक दूसरे की सम्मति विचार और एक दूसरे की प्रतिभा एक दूसरे की मानो प्रभावी असुतं वाचक होती रहती हैं। तो मेरे पुत्रों! देखो, वही तो स्वर्ग कहलाता हैं, भारद्वाज मुनि ने अपने इन वाक्यों में यह कहा हैं, क्या मेरे माता-पिता ने मुझे यही शिक्षा दी हैं, जब मैं बाल्यकाल में था तो मानो मैंने विज्ञान के युग में जाना मेरा हुआ क्या माता-पिता ने मुझे धिक्कार दिया, और यह कहा कि विज्ञानं ब्रह्मे मानो देखो, विज्ञान वेद का एक प्रमुख एक क्रियाकलापों में आता रहता हैं। वेद की आभा में आता रहता हैं, वैज्ञानिक बनो मेरे प्यारे! देखो, विज्ञान आध्यात्मिक और भौतिक दोनों को जानने का प्रयास करों, जिससे तुम्हारा जीवन मानो महान बन करके भौतिक विज्ञान में तुम्हारी अशुद्ध गति न हो जाएं।

तो मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् महर्षि भारद्वाज मुनि ने कहा था भारद्वाज मुनि का जीवन जब मुझे स्मरण आने लगता हैं तो बेटा! हृदय गद्-गद् हो जाता हैं, वह कितने विज्ञान में मानो पारायण थे कितना उनका हृदय बेटा! देखो, वह आध्यात्मिकवाद में भी महान था तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने इन्ही शब्दों को ले करके एक यन्त्र का निर्माण किया एक-एक रक्त के बिन्दु को जानने के लिए बेटा! हमारा वेद क्या कहता हैं अरे, वेद तो विज्ञान के वांगमय में ले जा रहा हैं, वेद मानो तुम्हें परमात्मा के विज्ञान में आध्यात्मिकवाद में ले जा रहा हैं, परन्तु देखो, वेद का वही पाण्डितव होता हैं, जो आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान का दोनों का समन्वय करने वाला हैं, और देखो, जिस काल में भौतिक विज्ञान अपने में मानो देखो, विचित्र बन जाता हैं, और भौतिक विज्ञान परा गति पर आ जाता हैं, उस भौतिक विज्ञान का जब दुरूपयोग होना प्रारम्भ हो जाता हैं, मानो वही देखो, दुरूपयोग होना

भौतिक विज्ञान का को मानो देखो, समाज के लिए हानिप्रद होता हैं। इसीलिए विज्ञान के हम विरोधी नही हैं, परन्तु विज्ञान होना चाहिए, विज्ञान मानो देखो, उसका सदुपयोग होना चाहिए, जैसे महर्षि भारद्वाज मुनि के विद्यालय में जब बेटा! ऋषि-मुनि गमन करते तो बेटा! एक यन्त्र उनके द्वारा था उस यन्त्र में मानो देखो, यज्ञमान यज्ञमान और देखो, यज्ञशाला का चित्र बन करके द्यौ लोक में जाता हुआ दृष्टिपात आता था। तो बेटा! वह दृष्टिपात करते थे, उससे यह जानकारी हुई, क्या वह द्यौ लोक में जाने वाला जो शब्द हैं, वह दर्शनों से गुथा हुआ जितना शब्द होगा, हृदय का जितना भी पवित्रतम होगा, उतना ही वह शब्द द्यौ लोक में प्रवेश हो जाएगा, और जितने शब्दों में मिथ्यावाद होता हैं। अशुद्धवाद होता हैं, वही शब्द मानो देखो, भू लोक में रह करके इस वायुमण्डल को दूषित कर देता हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, उन्ही शब्दों में इन्ही ध्वनियों में जो वह शिक्षा कहलाती है, बेटा! वह समाज को लाभप्रद होती है, परन्तु देखो, यहाँ इस प्रकार की यन्त्र विद्यमान थे, जो तीनों प्रकार के शब्दों का अन्वेषण करते रहते हैं, मेरे पुत्रों! देखो, एक उनकी प्रतिभा एक मानव के चित्र, यन्त्र में दृष्टिपात आते रहते थे। और भी मेरे पुत्रों! उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जो मैंने तुम्हें कई कालो में तुम्हें वर्णन कराया है, क्या एक रक्त के बिन्दु से, उन्होंने कहा पुत्रं भवितां यागा वेद की कही आख्यिका उनके स्मरण आई, क्या पुत्र याग करने वाला मानो देखो, यज्ञमान, अपने गृह में देखो, पुत्र याग भी करता हैं। तो पुत्र याग के क्रियाकलापों में मानो जब ले जाते हैं तो मेरे प्यारे! देखो, पुत्र याग में भी, अप्रतं ब्रह्मा लोकां व्रणे अस्तां मेरे प्यारे! जब वह पुत्र याग में शिशु और शिशु में मानो ब्रह्माण्ड की प्रतिभा दृष्टिपात आने लगती हैं, तो मेरे प्यारे! ऋषि-मुनियों ने, ब्रह्मचारियों सुकेता और ब्रह्मचारी कवन्धि ने यही तो विचारा था, क्या उन्होंने भारद्वाज से कहा कि हे प्रभु! आपका वेदमन्त्र कुछ कह रहा हैं, हम इसके ऊपर एक यन्त्र का निर्माण करना चाहते हैं, मेरे प्यारे! उन्होंने कहा क्या कह रहा हैं? उन्होंने कहा कि माता के गर्भ में, मानो जब पितर यागी, पितर याग करते हैं, तो पितर याग को हम भी यन्त्रों के द्वारा करना चाहते हैं, उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। मेरे प्यारे! उन्होने इसी वेदमन्त्र को ले करके, याग प्रारम्भ किया। उसमे से तरंगों को यन्त्रों में लेना प्रारम्भ किया, और यन्त्रों में ले करके मुनिवरों! देखो, उन्होंने एक ऐसी चित्रावली का निर्माण किया था, क्या मानो देखो, यन्त्र में, एक रक्त के बिन्दु को प्रवेश करो और रक्त के बिन्दु से ही जिस मानव का, वह रक्त का बिन्दु हैं, मुनिवरों! देखो, उसका चित्र साक्षात्कार दृष्टिपात आता हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, जब ब्रह्मचारी कवन्धि और सुकेता ने इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया, वेद के एक-एक शब्द को ले करके, उन्होंने बेटा! अपने यहाँ नाना प्रकार की आभाओं में नियुक्त हो करके, तो मेरे प्यारे! देखो, इसके आँगन ब्रह्मा कृतं वाचस्वति मेरे प्यारे! देखो, उसमें एक ही रक्त का बिन्दु, रक्त के बिन्दु में चित्र दृष्टिपात आते रहते थे। तो मेरे प्यारे! देखो, विचार-विनिमय क्या कितने मानव का कैसा विचित्र यह उस मेरे प्यारे प्रभु का अनुपम जगत हैं, हमें विचारना यह है कि कैसा अनूठा जगत हैं, प्रभु की रचना का, बेटा! एक-एक तरंग में एक-एक मानो रक्त के बिन्दु में, मानव का चित्र समाहित हैं। और मुनिवरों! देखो, एक-एक वायु की तरंगों में, मानो देखो, मानव का शब्द में मुनिवरों! देखो, शब्द में ही मानव का चित्र विद्यमान अन्तरिक्ष में विद्यमान रहता हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था, क्या ऐसे-ऐसे ऋषि हमारे यहाँ हुए हैं जिन्होंने अपने सौंवे महापिताओं के शब्दों को दृष्टिपात किया उनका जो क्रियाकलाप होता रहा है अन्तरिक्ष में दृष्टिपात किया। तो बेटा! मैं विज्ञान के युग में तो तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ, विचार केवल यह कि बेटा! हमारे मन का यह सुन्दर भाव बना हुआ हैं, क्या वह ज्ञान और विज्ञान की मानो देखो, दोनों प्रकार से जानना चाहता हैं इस संसार को और परमात्मा को उसमें निहित दृष्टिपात करना चाहता हैं तो मुनिवरों! देखो, महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम की कुछ चर्चाएं मैंने प्रगट की, हमारे यहाँ याग का एक प्रकरण

चला रहता हैं। मानो याग का प्रकरण चला रहता हैं, हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक क्रियाकलापों को बेटा! याग माना हैं। जितने भी क्रियाकलाप हैं, जितने भी कर्तव्यवाद हैं राष्ट्र को भी एक याग माना हैं विद्यालय में आचार्य शिक्षा देता है। वह भी याग हैं। मेरे प्यारी माता अपने पुत्र का पालन कर रही हैं, वह भी याग हैं, मेरे पुत्रों! ये सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक याग के ओत-प्रोत, मुझे दृष्टिपात आता रहता हैं।

तो आओ, मेरे पुत्रों! याग का अभिप्रायः जहाँ सुमति हो जहाँ सुविचार हो मेरे प्यारे! सुहृदय हों वही तो याग की प्रतिभा में निहित रहते हैं बेटा! जब मुझे यह दृष्टिपात आता हैं क्या प्रभु ने यह कैसा अनुपम बनाया हैं एक दूसरा प्राणी एक दूसरे का सहायक बना हुआ हैं मानो एक दूसरे में ओत-प्रोत होता हुआ और माला के सदृश्य यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता रहता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, उस माला को हमें प्रायः धारण करना चाहिए जिस माला की चर्चाएं मानो हम समय-समय पर उद्गीत रूप में गाते रहते हैं मेरे प्यारे! देखो, उस माला को कौन धारण करता है? विज्ञान के युग में वैज्ञानिक करता हैं और देखो, वह यागेश्वर करता हैं जो योगाभ्यास में परिणत हो जाता हैं यह व्यष्टि और समष्टि को अपने में मानो पिरोना जानता हैं तो मुनिवरों! देखो, यह अपने हृदय की आभा में रत्त रहना हैं क्योंकि हृदय में ही तो समाहित हो जाता हैं मुनिवरों! जब संसार को दृष्टिपात करता हुआ मानव अपने हृदय रूपी यज्ञशाला में को याग करता है तो इन्द्रियों के साकल्य को ले करके तो वह सब साकल्य मानो ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म हो करके बेटा! हृदय में समाहित हो जाता है। तो आओ, मेरे पुत्रों! आज मैं विशेष चर्चा प्रगट करना नही चाहता हूँ क्योंकि समय अपना-अपना कृतियों में रत्त होता रहता हैं अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः- ओ३म् यशाः ब्रह्म व्रत्यं देवाः। अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ रहे थें, और याग की भी बड़ी विचित्र वे उड़ान उड़ते रहते हैं, और जिस स्थली पर हमारी यह वाणी जा रही हैं, वहाँ मैं एक याग का दर्शन कर रहे हैं, मेरा तो एक महान, अपना व्यक्तव्य देने नही आया हूँ, क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव का ऐसा महान, जो विचार हैं उन विचारों के आगे कोई विचार देना मुझे सुशोभनीय नही हैं। परन्तु केवल यह, क्या आज का मानो यह समय और याग का मानो आधुनिक जो काल हैं ये वाममार्ग का काल हैं, इसमें वाममार्ग की प्रवृत्तियां विशेष हैं, इसमें दार्शनिक और देवताओं की प्रवृत्तियां, मानव के हृदय में सूक्ष्म हैं, जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भारद्वाज क्या और भी अपने पूर्व काल की चर्चाओं को प्रगट कर रहे थे, परन्तु जब मैं आधुनिक काल की चर्चाएं, या वर्तमान के मानव की चर्चा करने लगता हूँ तो यह मुझे वाममार्ग काल प्रतीत होता हैं क्योंकि रावण के राष्ट्र में राजा रावण का जो अन्तिम भाग था राष्ट्र का उसमें भी वाममार्ग की प्रवृत्ति आई, और यही प्रवृत्ति आज मैं दृष्टिपात कर रहा हूँ। क्योंकि प्रत्येक मानव का आहार और व्यवहार दोनो अशुद्ध हो गएं हैं, क्योंकि आहार अशुद्ध हो गएं हैं क्यों अशुद्ध हो गएं हैं? क्योंकि दूसरे के गर्भ को दूसरे के रक्त को पान करने में, वह अपना मानो देखो, अपने में ऊर्ध्वा में जाना अपने में स्वीकार करते रहते हैं। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय कराता हूँ, क्या महाभारत के काल के पश्चात, जब याग का तिरस्कार होना प्रारम्भ हुआ, तो याग के तिरस्कार होने से ही यह वाममार्ग की प्रवृत्तियां आनी प्रारम्भ हो गई। क्योंकि याग का तिरस्कार किसने किया? याग का तिरस्कार वाममार्ग ने ही किया क्या यागों में मांस की आहुति देना, बलि देना, पशुओं की बलि देना, यह मानो देखो, यह वाममार्ग कहा गया हैं। अब वह मानो देखो, यागों की बलि तो समाप्त हो गई हैं, अब तो मानव अपने उदर में उस बलि को प्रदान कर रहा हैं, वह बलि तो समाप्त हो गई क्योंकि वह तो कहीं-कहीं पर्वतीय क्षेत्रों में रह गई हैं पृथ्वी मण्डल पर, परन्तु देखो, वह यागों का चलन, तो उनसे लुप्त हो गया हैं। परन्तु जब मैं यह विचारता हूँ, कि वह जो बलियां हैं याग देवता तो अग्नि तो अपने में शान्त हो गई हैं वह देवता तो शान्त हो गएं हैं

जिन देवताओं मे एक मानो अहिंसामयी उन्हें अशुद्ध किया गया, उस याग की वेदी को अशुद्ध किया गया और देखो, अप्रतं ब्रह्म लोकां ब्रहे मानो देखो, वह तो अपने उदर में उसकी बलि देना प्रारम्भ कर दिया। हे मानव! तू कैसा बन गया है? हे राष्ट्र! तू कैसा बन गया हैं? मानो देखो, तू अपने राष्ट्र में देखो, बलि प्रथा, यज्ञों की समाप्त होने लगी हैं। परन्तु मानव अपनी रसना के लिए, बलि प्रदान कर रहा हैं। आज मानो यह एक बड़ा वाममार्गी यह समाज प्रतीत होता हैं। मानो देखो, यह कहता है, कि इसमें ऊर्ज्वा हैं, इसमें शक्ति हैं, आज मैं इस वाक् को उच्चारण करने नही आया हूँ, कि इसके मूल में जो दोषी है इसके मूल में जो मानो देखो, राष्ट्रीय प्रणाली के भ्रष्ट होने का यह एक मूल कारण मुझे दृष्टिपात आता हैं। इसीलिए राष्ट्रीय प्रणाली को, मानो विचित्र बनाना चाहिए, मैं वेद के विद्वानों से यह कहता रहता हूँ, हे वेद का आचरण करने वालों! तुम जाओ, राजा से यह प्रार्थना करो, क्या तुम अपने आहार को पवित्र बना लो, यदि तुम्हारा आहार पवित्र हो गया तुम्हारा व्यवहार पवित्र हो गया तो यह राष्ट्र और हमारा जन जीवन पवित्र बन जाएगा, उससे यह मत कहो कि तुम मानो देखो, अहिंसा प्रवृत्ति को शान्त कर दें अहिंसा मानो देखो, ऐसे शान्त नही होती ये प्रार्थना करो कि हे राजन! मानो देखो, तुम अपने हृदय से मानो देखो, अहिंसा को त्याग करके अहिंसामयी बन जाओ तुम मानो देखो, वेद की आभा को प्रगट करोगे और राजा यदि एको ब्रह्मे देखो, जब वह स्वयं शोधन कर जाता है तो समाज का एक शुद्धिकरण हो जाता हैं।

आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि हे यज्ञमानों! मैं तुम्हें देखो, सदैव याग में देखो, यज्ञमान के साथ मेरा हृदय रहता हैं, और मैं यह कहता रहता हूँ हे यज्ञमान! तुम्हारा सौभाग्य मानो अखण्ड बना रहें, तुम्हारे यज्ञमानं ब्रह्मे तुम्हारे जीवन की प्रतिभा महान बनी रहें, अब तुम अपने आहार और व्यवहार में मानो देखो, यह बड़ा तुम्हारे द्रव्य का सदुपयोग हो जाएं, यह बडी प्रियता मुझे दृष्टिपात आती रहती हैं। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक् निर्णय देना नही चाहता हूँ, मानो मेरा तो एक ही मन्तव्य रहता हैं कि प्रत्येक मानव के हृदय में, अहिंसा परामोधर्म आ जाएं, तो प्रेम आ जाएगा, प्रीति आ जाएं, परन्तु मानो देखो, जब तब यह एक दूसरे के रक्त को पान करता रहेगा, और विज्ञान का दुरूपयोग जो इस काल में हो रहा हैं, तब तक मानो देखो, यह समाज ऊँचा नही बन पाएगा, मैंने बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था क्या इसमें किसी का रूपं ब्रहे नही हैं, परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता हैं, क्या विज्ञान का जितना भी दुरूपयोग होगा, उतना ही मानव अधिकार का पुकार रहा हैं, अधिकार को चाहता हैं, अधिकार ही अधिकार रह जाता है, तो अधिकार में मानो देखो, रक्तभरी क्रान्तियां हुआ करती हैं, और जहाँ कर्तव्यवाद होता हैं वहाँ रक्त भरी क्रान्तियों का दमन हो जाता हैं। इसीलिए मेरा तो यह अन्तिम विचार रहता हैं, समाज के लिए, क्या कर्तव्य का पालन करो और देखो, कर्तव्य की वेदी पर जब निहित हो जाओगे मानो देखो, तुम्हें अधिकार की पुकार नही रहेगी और जितना अधिकार ही अधिकार रह जाएगा वह अधिकार ही मानो देखो, राष्ट्रीयता में परिणत हो करके वह रक्त भरी क्रान्ति का एक मूल कारण बन जाता हैं तो आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यही निर्णय देना अपना विचार देने के लिए आया हूँ हे यज्ञमान! सदैव मेरे हृदय में कामना हैं तुम्हारे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहें क्योंकि गृह में द्रव्य का सदुपयोग होना बहुत अनिवार्य हैं गृहों में द्रव्यों का दुरूपयोग नही होना चाहिए दुरूपयोग जितना द्रव्य का होता हैं वही द्रव्य उसकी अन्तरात्मा को नष्ट कर देता हैं और वह यदि सदुपयोग होता हैं वही द्रव्य उसकी आत्मा को ऊँचा बना देता हैं तो आज का विचार मानो मैं यह देने आया हूँ कि मेरा हृदय तुम्हारे समीप रहता हैं कहता रहता हूँ क्या तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहें पवित्र बना रहे तो इन वाक्यों के साथ मैं अपने वाक्यों को समाप्त कर रहा हूं।

पूज्यपाद गुरुदेवः- मेरे प्यारे ऋषिवर! महानन्द जी ने अपने विचारों को व्यक्त किया, इनके विचार बड़े मार्मिक होते रहते हैं, विज्ञान के दुरूपयोग की इन्होंने चर्चाएं की और इन्होंने एक वाक् बड़ा प्रिय उच्चारण किया हैं,

क्या यह जो द्रव्य हैं यह भौतिक काल में मानवीयता के लिए बहुत अनिवार्य हैं परन्तु इस द्रव्य का सदुपयोग होता रहे तो यह द्रव्य मां बन करके मानव का कल्याण कर देता हैं, उसकी रक्षा करती है। और जब यह द्रव्य का दुरूपयोग होना प्रारम्भ होता हैं वह द्रव्य अश्लीलता में परिणत हो जाता हैं जिस द्रव्य से मेरी पुत्रियों के चरित्रों को हनन किया जाता हों, वह द्रव्य मानो देखो, एक उग्र रूप धारण करके उसी मानव को नष्ट कर देता हैं तो यह वाक् इन्होंने बहुत प्रिय कहा हैं यह बहुत काल से दृष्टिपात कर रहे हैं और यह प्रियता में परिणत होता रहता हैं इसीलिए प्रत्येक मानव को देखो, याग की सुगन्धि में अपने विचारों की सुगन्धि में द्रव्य का सदुपयोग करना अग्नि के मुखारबिन्दु में अपने विचारों की अग्नि का समन्वय करना, मानो देखो, यह याग का अभिप्रायः है मानो देखो, यह आज का विचार समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा। ओ३म् देवाः आभ्यां रथं वाचन गतौ सर्वा आभ्यां दधि वाचन्नमाः ओ३म् सर्वाणि गतो मां गताः अच्छा भगवन्! सरोजिनी नगर नई दिल्ली।

४ अहिंसा २५-१०-१९८६

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहारी वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वेदों का उद्गीत चलता है। आज का हमारा वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन कर रहा है जिसकी आभा में सदैव वह चैतन्य देव रहता है। जब हम चेतना के ऊपर विचार करते हैं तो संसार की नवीन से नवीन वस्तुएं हमारे समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं और हम क्रियाकलापों में परिणित होकर के अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करते है।

आओ, मेरे पुत्रो! मैं विशेष विवेचना तो तुम्हें देने नहीं आया हूँ। हमें उस आभा में रत्त होता है जहाँ हमारे जीवन की एक भूमिका बनती है और उस भूमिका के आंगन में जब हम विद्यमान हो जाते हैं तो एक आनन्दमय स्रोत की हमें अनुभूति होने लगती है। आज का हमारा वेदमन्त्र नाना प्रकार की उड़ाने उड़ने के लिए बाध्य कर रहा है, आभाओं में रत्त हो करके मानव उसकी भी कल्पना कर लेता हैं उस याग क प्रारम्भ है जिस याग का एक रथ बन जाता है, ऐसे याग में हम सब विद्यमान हैं। मेरे प्यारे! यागाम् भविताम् लोकेः वह जो नाना प्रकार के स्वरूपों में याग हो रहा है, वह बड़ा विचित्र प्रतीत होता है परन्तु मैं यागों की चर्चाएं विशेषता में परिणित नही करा रहा हूँ। केवल जो विचार हमारे समीप आते रहते हैं, उन्हीं विचारों को बाह्य जगत में उद्बुद्ध कर देते हैं।

इससे पूर्व काल में ऐसे याग का वर्णन कराया जा रहा था, जिस याग में प्रजा और राजा दोनों सुखद होते हैं, मेरे पुत्रो! मैंने कई काल में प्रकट करते हुए कहा है कि हम संसार की प्रतिभा में मानव को प्रतिभाषित हो जाना चाहिए जिससे जीवन में एक नवीन मार्ग प्राप्त हो। संसार में जो ज्ञान और विज्ञान है इसमें वृद्धपन नहीं आता है। यह सदैव एक रस रहने वाली एक अनुपम चेतना है और उस चेतना के गर्भ में ही हम सब विद्यमान रहते हैं। याग के कर्मकाण्डों की चर्चा प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में होती रहती हैं। आज बेटा! हमें अपने में विचित्र बनने के लिए, अपनी मौलिकता को ऊंचा बनाने के लिए अनुसंधान करना है, ऊंची- ऊंची उड़ाने उड़ता है। याग के कर्मकाण्ड में हमारे यहाँ ऐसा माना जाता है कि यज्ञशाला में जो ब्रह्मा निर्वाचन करता है, उस निर्वाचन के आधार पर मानवीय प्रतिक्रिया बड़ी विचित्र चला करती है कर्मकाण्ड की प्रतिभा में हम सदैव रत्त रहते हैं। कोई भी संसार का प्राणी ऐसा नहीं है जो कर्मकाण्ड से विमुख हो जाए। जो भी जिसका क्रियाकलाप है, उसे वह विशुद्ध रूप से करता है। यह सब क्यों हो रहा है? इसलिए कि वह अपने जीवन में कर्त्तव्य की प्रतिभा में निष्पक्ष निहित रहते हैं। कर्त्तव्य ही मानवीय जीवन का प्राण है और पुरूषार्थ उस सूत्र के मनके हैं।

मेखला

बेटा! मैंने तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि मानव को याज्ञिक हो जाना चाहिए। सब वस्तुओं का निराकरण वेद के वांग्मय में हो जाता है, वेद की प्रतिभा में हो जाता है। आज का हमारा वेदमन्त्र जल प्रोक्षण के सम्बन्ध में वर्णन कर रहा है। जब यज्ञ की मेखला के समीप यज्ञमान जाता है तो कहता है कि हे मेखला! अब मैं तेरे रास्ते से गमन कर रहा हूँ। यह मेखला अवृत्ति कहलाती है, जैसे परमपिता परमात्मा ने मेखला के स्वरूप का वर्णन किया है। पूर्व दिशा में मानव जल को प्रोक्षण करता है तो वह दक्षिणायण से उत्तरायण को गमन करता है, वह दक्षिणायण से उत्तरायण को गमन करता है ऐसा क्यों है? इस प्रकार की उसकी क्रियाएं क्यों चल रही हैं? वह अपने में क्यों प्रसन्न हो रहा है? मुनिवरों! यह वाता प्रारम्भिक रूपों में प्रकट हो रही थी परन्तु इसके गर्भ में क्या नहीं है? क्योंकि संसार मेंज्ञान सदैव नवीन ही नवीन रहता हैं सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान काल तक जितनी गणना

करोगे, वह नवीन रहती है, ज्ञान में वृद्धपन नहीं आता। ज्ञान चाहे सूर्य मण्डल में जाने यानों के निर्माण करने वाला है, चाहे वह पृथ्वी और समुद्रों की आभा में खनिज इत्यादि कोई भी विज्ञान हो परन्तु वह सदैव नवीन रहता है, उसमें वृद्धपन नहीं आता। जो यह कहता है कि यह धर्म वृद्ध बन गयाहै, वह वृद्ध नहीं बना है, उसका विच्छेद होना है क्योंकि यह संसार अपनी-अपनी आभा में परिवर्तित हो गया है।

परम्परागतों से ही, ज्ञान तो नवीन है, उसमें वृद्धपन नहीं आता। मानव के अकर्मण्य बनने के कारण शरीर में वृद्धपन आ जाता है क्योंकि वह कर्मों से विमुख हो गया है परन्तु आत्मा में वृद्धपन नहीं आता। जल, अग्नि, तेज, वायु यह सब सदैव नवीन के नवीन रहते हैं तो इसी प्रकार भगवान का जो विज्ञान और ज्ञान है, वह अनूठा है, वह सदैव नवीन का नवीन है। जैसे प्रकाश है, वह सदैव नवीन रहता है। प्रकाश के साथ-साथ जो क्रियाकलाप करता है, वह भी सत्य है, वह अपने में नवीन है। वृद्धपन कोई भी वस्तु नहीं होती। वृद्धपन उसका समय और काल होता है, वृद्धपन उसका दूसरी प्रवत्तियों में प्रवेश होना है।

हमारे यहाँ पुरातन काल में अश्वमेध याग की वार्त्ता चल रही थी। प्रोक्षण का वर्णन हो रहा था। यज्ञमान दक्षिणायण से उत्तरायण को प्रोक्षण करता है और दक्षिणायण से से पुनः उत्तरायण को वह ईषाण कोण में समाप्तम् ब्रहे। हमारे यहाँ मेखला के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न याज्ञिक पुरूषों के विचार हैं। उन विचारों को प्रकट करने के लिए हम सदैव उद्यत रहते हैं। मेखला सुवृणत कहलाती हैं। बुद्धिमानों ने कल्पना की है कि जैसे परमपिता परमात्मा ने पृथ्वी रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया तो समुद्र उसकी मेखला बनाई, जो भी पृथ्वी पर विष उगलता है वही वह ग्रहा कर लेता है, उसका अपने में समन्वय कर लेता है। तो विचार क्याकि यज्ञमान अपनी प्रदक्षिणा क्यों कर रहा है? हे अग्नि! तू ज्योतिवान है, कहीं तेरे में विकृत्तता न आ जाए इसलिए आपो की आवश्यकता है, आपो तेरे लिए है।

राजा जब अश्वमेध याग करता है तो अश्वमेध याग में जो ब्राह्मण अथवा पुरोहित का निर्वाचन किया और उस ब्राह्मण का स्थान नीचा होता है। इसमें प्रसंग आता है ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि ब्राह्मण प्रजा है और राजा अश्व है। ब्राह्मण प्रजा में निहित होता है। यदि ब्राह्मण नियम और संयम से अपने को न बना सका तो राजा उसे दंडित भी कर सकता है। इसलिए अश्वमेध याग की यज्ञशाला में ब्राह्मण का स्थान नीचे हो जाता है और राजा ऊर्ध्वा में विराजमान हो आसन ग्रहण करता है। अश्वमेध याग के कर्मकाण्ड में ईषाण कोण में जो जल है, उसमें वह स्नान करता है, अबृत स्नान करने के पश्चात् वह पुनः यज्ञशाला में सबके स्वागतार्थ उपस्थित होता है। याग का जो कर्मकाण्ड है वह एक ही समान है परन्तु उसकी क्रियायें भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। मुझे वह काल स्मरण है जब राम ने अयोध्या में याग कियातो ऋषि-मुनि सब उनके कथनानुसार पधारे। महर्षि भारद्वाज, महात्मा जमदग्नि और भी नाना ऋषिवर विद्यमान हुए जो याज्ञिक थे, अश्वमेध याग के कर्मकाण्ड के ज्ञानी थे।

हिंसा

जिस समय राजा अपने राष्ट्र में शिक्षा प्रणाली के लिए सर्वांग विद्यादेने के लिए तत्पर हो जाते हैं तो वह शिक्षा प्रणाली ऊंची बन जाती है, परन्तु उसमें हिंसा नहीं होनी चाहिए। याग वह होते हैं, जिनमें हिंसा नहीं होती, अहिंसा होती है, अहिंसा परमोधर्म होता है। मानव जब अपने में विचारता है कि मैं हिंसा करूं न करूं तो हिंसा का प्रारम्भ दर्शनकारों ने प्रायः मानव के विचारों से वर्णन किया है। तीन प्रकार से हिंसा होती है मनसा, वाचः और कर्मणां मन में विचार आया और वाणी में आया तथा वाणी के पश्चात् क्रिया में जाता है परन्तु विचार में आना ही हिंसा की कृतिका प्रारम्भ हो जाती है।

एक शासक अपने में अनुशासित है, और प्रजा को अनुशासन में लाना चाहता हैं, परन्तु यदि प्रजा यह

कहती है कि हे राजन! यह कार्य इस प्रकार नही, तो हिंसा प्रारम्भ हो गयी। विपरीतता में ही हिंसा का प्रादुर्भाव हो जाता है। जब हम यह विचारते हैं कि हिंसा का प्रारम्भ कहाँ से होता है, तो विचार आता है कि मन से हिंसा कहाँ हो गयी? आत्मा के समीप जाने वाला हिंसक बन गया हैं। मनसा पाप कर्म करना भी एक हिंसा माना गया है, राष्ट्र के लिए विपरीत माना गया है। राजा जब मानव की रक्षा करता है, समाज की रक्षा में लग जाता है, तो हिंसक प्राणी को कहीं-कहीं दंडित करने के विचार इसलिए दे रहा हूँ कि हमारे यहाँ हिंसा कहाँ से प्रारम्भ होती है? आन्तरिक विचार हिंसा के नहीं रहने चाहिए। वाह्य और आन्तरिक विचार एक ही तुल्य होने चाहिए।

मुझे तो कहीं-कहीं विज्ञान की बहुत-सी वार्त्ताएं उपलब्ध हो जाती हैं। जब हम अन्तरिक्ष में हिंसा की ऊर्ध्वा प्रवृत्ति बना करके उद्बुद्ध करते हैं, तो क्रोधाग्नि बना करके वायुमण्डल में सात्विक परमाणुओं को समाप्त कर देना भी हिंसा मानी गई है। एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में यह निर्णय हो रहा था कि हिंसा क्या है? महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज के द्वार पर पहुंचे। नाना ऋषि-मुनियों का एक समाज एकत्रित था और उन्होंने यह प्रश्न किया कि विज्ञान के वांग्मय में हिंसा का प्रादुर्भाव कहाँ से होता है? तो महर्षि भारद्वाज मुनि ने यह कहा कि यदि तुम जानना चाहते हो तो मानव के मस्तिष्क से हिंसा की उपलब्धि होती है। मन की इच्छा पूर्ण न होने से क्रोधाग्नि का जागरूक होना ही हिंसा कहलाती है। उन्होंने अपने यन्त्रों में इन वाक्यों को ले करके दृष्टिपात कराया। विज्ञान के वांग्मय में जब यह प्रस्तुत किया जाताहै कि यह अन्तरिक्ष परमाणुओं का समूह है, इसमें मानव जब अपवाद करता है, अशुद्ध वाणी उच्चारण कर रहा है तो वह उस समय वायुमण्डल में भरण हो जाता है। उससे वायुमण्डल दूषित हो गया है और दूषित हो जाने से हिंसा बन गई है।

हिंसा एक बड़ी विचित्र धारा है, जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण कर रहा है, विचार रहा है। माता-पिता गृह में वास करते हैं। वनस्पतियों के रस पथ के द्वारा हमारे शरीर में गतियां कर रहे हैं। जिन परमाणुओं से हमें ब्रह्म को प्राप्त करना था उन परमाणुओं की हम ध्रुवागति बना करके और संसार के अभ्रतों में परिणित हो रहे हैं, तो वह भी हिंसा कहलाती है। माता-पिता, पुत्र याग करते हैं। पति-पत्नी की इच्छा हुई कि हम पुत्र याग करें। पुत्र याग हो गया, पुत्र याग के पश्चात ऊर्ज्वा प्रतिभा को समाप्त करना भी हिंसा कहलाती है। आज मैं बहुत गम्भीरता में तुम्हें ले जा रहा हूँ जिससे समाज, वायुमण्डल और गृह में शुद्ध परमाणुओं का जन्म होता है। विचारों में शुद्धिकरण आना ही वायुमण्डल को पवित्र बनाना है। द्रव्य का दुरूपयोग करना भी हिंसा कहलाती है। द्रव्य का सदुपयोग हो, जैसे यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान हो करके द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है। वह अग्नि के मुखारबिन्दु में साकल्य प्रदान कर रहा है, और यज्ञमान को प्रतीत नहीं होता वह साकल्य कहाँ जाएगा। वह यही विचारता है कि मेरा जो स्वाहाः है, वह द्यौ लोक में जाना चाहिए। परन्तु इसके लिए हृदय पवित्र होना चाहिए, हृदय में वह महानता स्वाहाः देते समय हो तो उसका स्वाहाः द्यौ लोक में चला जाता है। वही शब्द रथ पर विद्यमान हो करके द्यौ लोक में प्रवेश हो जाता है, द्यौ लोक से सूर्य उस ऊर्ज्वा को अपने में ग्रहण करता है। उसी ऊर्ज्वा के द्वारा वही स्वाहाः का परमाणु यज्ञमान को प्राप्त होता रहता है।

मेरे पुत्रो! विचारों से ही यह गृह और समाज ऊंचे बनते हैं, जब प्रत्येक मानव यह विचारता है कि हम तो प्रभु! के आंगन में, प्रभु के राष्ट्र में आए हैं। एक मानव द्रव्य का दुरूपयोग करता है तो दूसरा प्राणी दुखित हो रहा है। वह क्यों हो रहा है? वह यह विचारता है कि हम सब एक ही सूत्र के मनके हैं, परमपिता परमात्मा का वह सूत्र है जिसके हम सब प्राणी मनके हैं। माला का एक मनका अशुद्ध हो गया, मानव का विचार अशुद्ध हो गया तो जब तक वह मनका माला से नहीं चला जाता, तब तक माला को पवित्र नहीं स्वीकार कर सकते। इसी प्रकार हमारा मानवीय जगत है। परमपिता परमात्मा सूत्र है, हम सब मनके हैं, उसमें पिरोए हुए हैं, माला बनी हुई है।

उस माला का एक भी हमारा मनका अपवित्र नहीं होना चाहिए। यदि हम वेद के मर्म को जानना चाहते हैं, वेद की आभा में रत्त होना चाहते हैं तो वेद हमें यह कहता है कि हे मानव! तू हिंसक मत बन, तू अहिंसा परमोधर्मः वाला बन।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय यह प्रकट कराया कि यागों में हिंसा का प्रादुर्भाव हुआ। मानव ने याग को जाना नहीं, अर्थो का अनर्थ कर दिया है, कहाँ तक हिंसा की चर्चा करूंगा। एक ब्राह्मण अपने स्वार्थ के कारण एक पोथी में स्वार्थ को वर्णित कर देता है, तो सर्वत्र पोथी अशुद्ध बन गई है और वह हिंसक बन गया है। एक वेद का अलंकार है, उस अलंकार को यदि बुद्धिमत्ता से विशुद्ध रूप नहीं दे सकता, वही अंलकार साहित्य में लाना प्रारम्भ कर देता है, तो भविष्य के लिए एक हिंसा का एक मूल बनता है। हमें यह विचारना है कि हम जब लेखनीयां बद्ध करें तो लेखनियों में वह शब्द होने चाहिएं। जो शब्द वेद के मर्म के आधार पर हो, वेद और प्रकाश पर आधारित होने चाहिएं। मैंने ऐसा समय दृष्टिपात किया है, जहाँ अग्नि के कांड हो गए हैं।

मुझे स्मरण आता रहा है, एक समय बहुत पुरातन काल की वार्त्ता है कि भारद्वाज मुनि के यहाँ ब्रह्मचारियों में संघर्ष किसको लेकर हुआ? एक वेदमन्त्र का अध्ययन किया गया, उस अध्ययन में कहीं सूर्य को चन्द्रमा से और चन्द्रमा को समुद्रों से और समुद्रों को पृथ्वी से और पृथ्वी को सूर्य मण्डल से, और सूर्य मण्डलों के बृहस्पति से और बृहस्पति को आरुणि मण्डल सें, इन सब मण्डलों को मिल करके आकाश गंगा से मिलान कराया तो कुछ ब्रह्मचारियों ने इसको साहित्यक रूप दे दिया, परन्तु यह था अलंकार। अलंकार उसे कहते हैं जिसका मिलान मिलाने से कोई वार्त्ता विशुद्ध रूप से हम जान सकें। कोई भी वेदमन्त्र ऐसा नहीं है जिसमें अलंकार न हो। अंलकार को यदि साहित्य में लाना चाहते हैं तो वही अलंकार साहित्य का विनाश करके एक हिंसा बन जाती है। वह हिंसक बन गया हैं आगे आने वाला समाज उस पोथी के, वेद के अलंकार को यदि साहित्यिक बनाना चाहता है तो साहित्य भ्रष्ट हो जाएगा, साहित्य की प्रतिभा समाप्त हो जाएगी और नाना प्रकार की रूढ़ियों में यह समाज परिवर्तित हो जाएगा। वह नाना प्रकार की रूढ़ि भी राष्ट्र और मानव समाज के लिए हिंसा मानी गई है। वह रूढ़ियाँ भी नहीं होनी चाहिएं।

अहिंसा

विचार विनिमय क्या कि हम हिंसक न बनें, अहिंसा परमोधर्मी बनें। अहिंसा परमोधर्मः क्या है? अब प्रश्न यह आता है कि जब हम सभी वस्तु हिंसा में परिवर्तित कर रहे है, तो फिर अहिंसा क्या है? अहिंसा वह है जो मानव को बुद्धियुक्त विचार में नहीं आ रहा है। जो एक दूसरे बुद्धिमान से उसका परामर्श होना चाहिए। निष्पन्न हो करके यदि वह मानवता से न आए तो यौगिकता में पहुंच जाओ और यौगिकता का संघर्ष किया हुआ जो चिन्तन है, वह महान होता है, पवित्र होता है। विचारों में अन्तर्मुखी हो जाओ, अन्तर्हृदय से जानकारी लों अन्तर्हृदय की वार्त्ता को किसी बुद्धिमान के समीप पहुंचाओ तो विचार होगा, संघर्ष होगा और उसमें विज्ञान की प्रतिभा और यौगिक पुट जब लग जाती है तो वही शब्द अकाट्य बन जाता है, उसको कोई नष्ट नहीं कर सकता।

मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन कराया था कि वेदमन्त्र के तीन-तीन भाव हमारे समीप आते हैं। एक लौकिक भाव आता है कि हमें संसार में किस प्रकार विचार करना चाहिए, किस प्रकार क्रियाकलापों में रत्त रहना चाहिए, हमारा व्यवहार कैसा हो? याग में सबसे प्रथम व्यवहार की चर्चा आती है कि सबसे प्रथम हम जल की पूजा करें, हम अग्नि की कैसे पूजा करें? यह सब एक व्यवहार है, परन्तु उस व्यवहार को हम यौगिकता में लाना चाहते हैं। यौगिकता कैसे कि आपोमयी ज्योति का पूजन कर रहे हैं। हम एकान्तस्थली पर विद्यमान हो करके अपने शरीर के ऊपर विचारें कि यह जो अन्न है, यह प्राण का सूचक हैं, प्राण का प्रतिनिधि है, वह मन का भी प्रतिनिधि कहलाया

गया है क्योंकि अन्न प्रकृति का है, मन प्रकृति का है। अन्न से मन की प्रतिभा का जन्म होता है।

मैं आज एक और वाक्य उच्चारण करना चाहता हूँ। वेद का वाक्य कहता है कि पाप से कमाया हुआ अन्न भी हिंसा कहलाती है। वह मन की प्रतिभा को नष्ट कर देता है। वह मन की तरंगों में चंचलता लाएगा, वही चंचलता हिंसा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। मुझे पुरातन काल की वार्त्ता स्मरण हैं। एक समय ऋषि-मुनियों का समाज महाराजा अश्वपति के यहाँ पहुंचा। अश्वपति ने ऋषि-मुनियों का स्वागत किया। वह महर्षि वैशम्पायन की अध्यक्षता वाला समाज था। उनके गृह में सूचना हो गई कि आज तपस्वियों का आगमन हुआ है, तो राजलक्ष्मी ने उनका भोज बनाया। राजा ने कहाकि आईए भगवन! मेरे यहाँ अन्न पान कीजिए। सभी ऋषि-मुनियों ने एक स्वर में कहा कि हम राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नहीं करते हैं, क्योंकि राष्ट्र का अन्न दूषित होता है, वह ऊंची तरंगों वाला नहीं होता। हमारा मन प्रकृति के रूप में तरंग है, और अन्न से ही उसकी प्रतिभा का जन्म होता है और अन्न का मिलान प्राण से होता है। प्राण और मन दोनों मिलन करते हैं। दूषित अन्न से उनका क्रियाकलाप अशुद्ध हो जाता है, हमारी यौगिकता नष्ट हो जाएगी।

मेरे प्यारे! जब ऋषियों ने यह कहा तो महाराजा अश्वपति ने नत-मस्तक हो करके कहा कि-प्रभु! मैं स्वयं की कला-कृतियों में रत्त रहता हूँ। प्रातःकाल मैं माता वसुन्धरा से उद्यम करता हूँ। उसके द्वारा अन्नाद की उत्पत्ति होती है, उसको मैं पान करता हूँ। जो राजा स्वयं क्रियाकलाप करता है, वह राष्ट्र को विशुद्ध बना सकता है। मुझे स्मरण आ रहा है कि उनकी पत्नी को यह प्रतीत हुआ कि ऋषिवर तेरे यहाँ से बिना आतिथ्य के चले जाएंगे, तो उसने ऋषि-मुनियों से कहा कि-प्रभु! हम प्रार्थना कर रहे हैं, मैने गायत्राणि छन्दों के द्वारा अन्न की उपलब्धि की है, अन्न को अग्नि में तपाया है। ऋषियों ने उसके पश्चात उस अन्न को ग्रहण किया। देखो, अन्न से मानव के मन की प्रवृत्ति अशुद्ध हो जाती है, तो यौगिकवाद समाप्त हो जाता है। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने इसी वाक्य को ले करके नाना प्रकार की वार्त्ताएं प्रकट कीं। उन्होंने कहा कि हम व्यवहार से यौगिकवाद में जाना चाहते हैं, तो वेद का भाष्य करने वालों, वेद के वांग्मय में जाने वालों का व्यवहार और अन्न पवित्र हो।

वेद में तीन प्रकार की प्रतिभा कहलाती है। एक व्यवहार है, एक विज्ञान है और तृतीय यौगिकवाद है। जो मानव व्यवहार को जानता है, वह विज्ञान की प्रतिभा में जाने के लिए तत्पर हो जाता है, और जो विज्ञान और व्यवहार को जानता है, वह यौगिकवाद में प्रवेश कर जाता है। वेद का एक-एक अक्षर मानव के हृदय में समाहित हो जाता है। एक मानव ने व्यवहारिक उसका अर्थ लिया है, एक मानव ने उसके वैज्ञानिक लिया है, एक मानव ने उसे यौगिकवाद में परिणित किया है। तीनों का स्वरूप एक ही रूप में परिणित हो रहा है। यदि व्यवहार में ज्ञान और विवेक नहीं है तो वह व्यवहार अशुद्ध हो जाता है। यदि विज्ञान में क्रिया नहीं है या ईश्वरवाद नहीं है, यौगिकवाद नहीं है तो विज्ञान राष्ट्र और प्रजा को निगलता चला जाएगा, विज्ञान का दुरूपयोग हो जाता है और यदि उस विज्ञान में विवेक निहित रहता है, यौगिकवाद रहता है तो वही विज्ञान कर्त्तव्य की प्रतिभा में आ करके, सार्थक बन करके समाज को ऊंचा बना सकता है और राष्ट्र की पद्धति को महान बना सकता है।

आज का हमारा वाक्य यह कहता है कि हे मानव! तेरे यहाँ ज्ञान, विज्ञान और व्यवहार एक तुल्य रहते चाहिए, एक समान रहने चाहिए और यदि इनमें अन्तर्द्वन्द्व आ गया है तो राष्ट्र उसका दोषी बन जाता है। इसीलिए राजा प्रजा को सुखद बनाने के लिए, व्यवहार हो उत्तम बनाने के लिए अश्वमेध याग करता है क्योंकि उसमें क्रियात्मकता है, यौगिकता है। मेरे पुत्रो! विचार केवल यह है कि व्यवहार विज्ञान और विवेक जिसे यौगिकवाद कहते हैं, वह मानव के समीप होते हैं क्योंकि बिना व्यवहार के विज्ञान की उपलब्धि नहीं होती और विज्ञान में यदि विवेक की पुट नहीं लगती तो वह विज्ञान मानव का हनन कर देता है, समाज को निगल जाता है। परिणाम क्या

कि आज हम अपने जीवन को ऊंचा बनाने के लिए उस आभा में हिंसा और अहिंसा दोनों का विचारने वाले बनें। हिंसा के शब्दों के कारण भयंकर से भयंकर यातनाएं मानव के शरीरों का प्राणान्त कर देती हैं।

तुम्हें स्मरण होगा, मैं महाभारत काल की या राम के काल की चर्चा करता रहता हूँ और भी चर्चाएं होती रहती हैं। एक शब्द के कारण ही सीता ने बारह वर्ष वन में बिताए वह हिंसा का शब्द था। जो माता स्वीकार कर रहा है, जो चरणों की वंदना कर रहा है, आज उसके प्रति यदि हमें मनसा पाप है तो वह हिंसा हैं। माता सीता ने अपने जीवन को कितनी तपस्या से व्यतीत किया परन्तु उसी हिंसा के शब्द ने उनको रावण के कारागार में डाल दिया। देखो, हिंसा का एक शब्द मानव को कहाँ से कहाँ ले जाता है। हिंसा शब्द का प्रारम्भ मानव के हृदय से होता है, इसीलिए मानव का हृदय और मनस्तव दोनों महान चिन्तन वाले होने चाहिएं।

आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष चचा्र प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मैं हिंसा की चर्चा करने लगूं तो कई समय व्यतीत हो जाएंगे। मैं इसका संक्षिप्त परिचय दिया करता हूँ कि हिंसा नहीं होनी चाहिए। मानव के अन्तर्हृदय में अन्न और व्यवहार से हिंसा का प्रारम्भ होता है। इसीलिए व्यवहार को परिवर्तन कर लिया जाए तो वही विशुद्ध रूप बन जाता है, उसी को प्राप्त हो जाता है। आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिता का गुणगान गाते हुए जीवन व्यतीत करें। हम कर्मकाण्ड की शेष चर्चा तो कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा। माडल टाऊन, दिल्ली २५-१०-१९८६

५ ब्रह्मचर्य व्रत ०३ ०३ १९८७

जीते रहो, देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहारी वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे गुणगान मानवीय हृदय से गाता रहता है, तो मानव का हृदय अगम्य बन जाता है, और वह अपने में यह अनुभव करने लगता है कि मैं प्रभु के आनन्दमयी जगत में विद्यमान हूँ। क्योंकि जब वह अपने मनस्तव, सान्तवना, आभा को ले करके और उन तरंगों में वह रमण करने लगता है तो उनमें तरंगित हो करके वह अपने को द्यौ-लोक में पहुंचा देता है।

राष्ट्रपिता परमात्मा

तो मुनिवरों! आज हम वेदों की उस आभा में, अपने को ले जाते चले जा रहे थे, जहाँ परमपिता परमात्मा की महिमा का, प्रायः गुणगान गाया जाता है, और परमपिता परमात्मा की जो आनन्दमयी, मानो जो प्रतिभा कहलाती है, वह प्रायः उस महानता का दिग्दर्शन है, जिन दर्शनों में जाने के पश्चात, परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसकी रचना के ऊपर हमारा विचार विनिमय होता रहता है। वे परमपिता परमात्मा कितना रचयिता है और वह कितना मानो राष्ट्रपिता है प्रायः मानो देखो, राष्ट्रपिता वह कहलाता है जो संसार रूपी मानो राष्ट्र को अपने में धारण कर रहा है, और इस ब्रह्माण्ड को जो संचालन करने वाला है। तो मेरे पुत्रों! आज हम परमपिता परमात्मा को यह स्वीकार करते हैं, कि राष्ट्रपिता तो वे परमपिता परमात्मा है वह मानो देखो, विष्णु बन करके, इस संसार रूपी राष्ट्र का संचालन कर रहा है। मानो जब वे प्रत्येक वस्तु मे उस का भान करने लगते है तो वही तो अनुशासन में रहने वाला है। तो मुनिवरों! देखो, वे परमपिता परमात्मा राष्ट्रपिता है।

मानव आकार का शब्द आकार

जो नाना प्रकार के मानो इस ब्रह्माण्ड में ये क्रियाकलाप हो रहे हैं, चाहे वह शब्दों के द्वारा हो रहे हैं, चाहे वह मौन हो करके हो रहे हैं, चाहे वह शब्दों के आकार के रूप में परमाणु, एक दूसरे में रत्त हो रहा है, मानो देखो, उनको अनुशासन में बनाने वाला, वह राष्ट्रपिता कहलाता है। एक मानव के मुखारबिन्दु से एक शब्द का उच्चारण होता है, परन्तु वह शब्द का आकार इतने आकार वाला है, जितना मानव का यह शरीर कहलाता है और उतने आकारों में वह परमाणुवाद भ्रमण करता हुआ, मानो उसी आकार के रूप का मुनिवरों! देखो, वह अन्तरिक्ष में रमण करता है वह शब्द अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो जाता है और विद्यमान हो करके उसी आकार का वह शब्द है और उसी आकार के शब्द में मानो देखो, चित्र विद्यमान हैं और उसी आकार का वह चित्र कहलाता है। तो मुनिवरों! देखो, कोई न कोई तो इसका विज्ञानवेत्ता है, मानो जो यह विज्ञान, जो प्रत्यक्षवाद में नहीं था, मानो था परन्तु देखो, उसका निर्माणवेत्ता तो वह मेरा देव ही कहलाता है।

मेरे प्यारे! यह कैसा अनुशासन में जितना उसका क्रियाकलाप होता है और उतनी ही मानो देखो, वह गतियों में रत्त होता रहता है, तो वह कौन है ऐसा? वह कौन कर रहा है? मानो वही तो वह मेरा देव परमपिता परमात्मा कहलाता है मेरे प्यारे! नाना प्रकार की वनस्पतियों का रस है जो नाना प्रकार के मानो देखो, अन्नाद में विद्यमान है। वह चाहे मानव हो, चाहे कोई भी प्राणी मात्र हो, परन्तु देखो, इनमें सबमें एक ही रूप का वनस्पतियों के रस का निर्माण होता रहता है, और उन्हीं रसों के द्वारा मानो देखो, इस संसार की रचना होती रहती है। वह मेरा प्यारा प्रभु कितना विज्ञानवेत्ता है अथवा वह नियन्त्रण में है और उसी गति से वह गतिवान है, मानो देखो, उसी प्रकार से उसका क्रियाकलाप हो रहा है, तो वह निर्माणवेत्ता निर्माण कर रहा है परन्तु देखो, उस परमपिता

परमात्मा को कोई उद्गीत गाने लगे, तो बेटा! गाया नहीं जाता। वह इतना अनूठा है, इतना विचित्र है कि उसके गान गाने में मानव की वाणी मौन हो जाती है, नेत्र दृष्टिपात करना शान्त कर देते हैं, श्रोत्र बेटा! शब्दों से वंचित हो जाता हैं। तो विचार क्या, मानो देखो, ऐसा अनुपम, ऐसा भव्य यह जगत है जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से बेटा! अन्वेषण, अनुसन्धान करता रहता है।

गौ नाम का स्वरूप

मेरे प्यारे! आओ, मैं तुम्हें इसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ बेटा! महर्षि पिप्पलाद मुनि के द्वारा जिज्ञासु जाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब वे जिज्ञासु जब मानो देखो, उन्होंने एक निर्णय कर लिया, एक अनुसन्धान करते हुए, और परमपिता परमात्मा को राष्ट्रवेत्ता स्वीकार करते हुए, यह स्वीकार कर लिया कि ब्रह्म है, तो बेटा! देखो, उन्होंने कहा कि हमें एक वर्ष तक मानो देखो, गऊओं का हमें पालन करना है। बेटा! यहाँ गऊओं के दो अर्थ माने जाते हैं। एक गौ नाम का पशु होता है, मेरे प्यारे! देखो, एक गौ नाम का पशु है, और एक गौ नाम इन्द्रियों का है मानो देखो, गौ नाम पृथ्वी को भी कहा जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने यह विचारा, कि हमे गौ की रक्षा, गौ सेवा करनी है, जब मेरे प्यारे! जिज्ञासुओं को निर्देश प्राप्त हो गया कि तुम्हें गऊओं का पालन करना है, तो वह गऊओं का पालन करने लगे। तो मानो देखो, इन्द्रियों को संयम करते हुए, और आश्रम में जो गौ नाम का पशु है, उस पशु के द्वारा मानो देखो, का दुग्ध आहार करते हुए, उनकी भी वह सेवा करते थे। इन्द्रियों के ऊपर संयम का नाम उसकी सेवा है। और पशु की सेवा करने का नाम मानो देखो, गौ सेवा कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, पृथ्वी के विज्ञान को जानने का नाम मानो देखो, वह गौ सेवा कहलाती है मेरे पुत्रों देखो, ब्रह्मा वाचन्नमं ब्रह्मा व्रतम् तो मुनिवरों! देखो, गौ नाम पशु को कहा जाता है, तो मानो देखो, यहाँ प्रकरण यह कहता है, क्या गौ नाम पशु का तो होता ही है, परन्तु गौ नाम यहाँ इन्द्रियों को माना गया है। मेरे प्यारे! ऋषि ने यह कहा था कि ब्रह्मचर्य से हमे रहना है, जब ब्रह्म जिज्ञासु है तो क्या वे ब्रह्मचारी नहीं थे? परन्तु वे ब्रह्मचारी भी थे, उसके पश्चात भी मानो देखो, ब्रह्मचारी और उसे पूर्ण आदेश प्राप्त होता है कि तुम्हें गऊओं की सेवा करनी है, क्या गौ नाम जब इन्द्रियों का है, ब्रह्मचर्य से रहना है।

ब्रह्मचर्य का अभिप्रायः

तो मेरे पुत्रो! देखो, ब्रह्मचर्य का अभिप्राय यह है मैंने तुम्हे कि जो कई काल में वर्णन किया है, और यह कहा है कि गौ नाम मानो इन्द्रियों का माना है, ब्रह्मचर्य व्रत वह कहलाता है जो मानो देखो, अपने में ब्रह्म और चरि दोनों को, प्रत्येक श्वांस एक सूत्र में पिरोना है, एक सूत्र में सूत्रित करता है और माला बना करके, ब्रह्मरूपी मानो जो सुमेरू है, अथवा उसी को तो हमें एक प्रतिष्ठा में पहुंचाना है, उसी की हमें प्रतिष्ठा करनी है। तो मेरे पुत्रो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता है, इनके जीवन कालों से अथवा उनके आश्रमों से यह दृष्टिपात हुआ, कि ब्रह्म की जिज्ञासा कितनी विशाल होती है और ब्रह्म की जिज्ञासा कितनी महान मानवीयता की उग्रता में परिणीत होती रही है। तो मेरे प्यारे! देखो, बेटा! एक समय वह सभी जिज्ञासु रात्रि के मध्यकाल में अपनी स्थली पर विद्यमान हो कर विचारने लगे कि हमें जो आचार्य ने यह उपदेश दिया है, कि तुम ब्रह्मचारी रहो परन्तु हमने ये कहा कि ब्रह्म की तो निष्ठा हो गई है, तो क्या हम ब्रह्मचारी नहीं हैं? तो मुनिवरों! देखो, वे ये विचारने लगे कि ब्रह्मचरिष्यम् ब्रह्मा, मेरे प्यारे! देखो वह अपने में निर्णय करने लगे, कि आचार्य ने हमें ब्रह्मचर्यव्रत के लिए क्यों कहा है। जब इतना समय हमें मानो देखो, गृह का वास किए हुए हो गए हैं, ब्रह्म की जिज्ञासा के लिए, हमने बारह-बारह वर्ष के तीन अनुष्ठान किए हैं और उसके पश्चात भी आचार्य कहता है कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो, तो यह ब्रह्मचर्य क्या है, इसके ऊपर भी तो विचारना है।

तो वह विचारने लगे, मेरे प्यारे! देखो, इतने में गार्गे ने कहा कि मेरे विचारों में तो ब्रह्मचर्य तो मानव के मन की प्रवृत्ति है। वह प्रवृत्ति प्राण में तल्लीन हो जाए या प्राण में मन तल्लीन हो जाए तो ऐसा मानो कि वह ब्रह्मचारी है। इसके पश्चात उन्होंने कहा कि हम यह भी स्वीकार कर सकते हैं परन्तु इसीलिए नहीं किया जाता कि ये प्राण भी और मन भी, यह तो एक ही सूत्र के दोनों मनके हैं। उसके पश्चात भी मन और प्राण को एकाग्र करते हुए ब्रह्म की जिज्ञासा में हमने ब्रह्म को जाना है, परन्तु ब्रह्म पिपासा में तल्लीन रहे है तो आज इस वाक् को हम कैसे स्वीकार करें? इसमें ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि आचार्य ने इसलिए कहा है कि तुम्हारा जो यह मानो यह शरीर है, यह मानो देखो, ब्रह्मचर्य से जकड़ी एक आकृत्ति कहलाता है। ब्रह्मचर्य से और प्रकृति के सन्निधान का नाम ही मानो ब्रह्मवर्चोसि कहलाता है, इसीलिए दोनों को जानना है, दोनो को जानने का नाम उन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत कहा है। मेरे प्यारे! देखो, इतने में सुनीति बोले कि नहीं, भगवन! यह भी विचार हमारे आंगन में नहीं आया है, क्योंकि ये तो दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। उन्होंने अपना निर्णय दिया कि मेरे विचार में तो यह है कि हम इस ब्रह्माण्ड को जान लें, और जान करके ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों को जान करके दोनों का हम समन्वय कर दे तो उसका नाम ब्रह्मचरिष्यामि कहलाता है।

मेरे प्यारे! ये भी वाक् उनके आंगन में नहीं आया। विचारा कि जैसे राष्ट्र और प्रजा दोनों मानो देखो, सम्मिलित हो करके, राष्ट्र का संचालन करते हैं। प्रजा के बिना राष्ट्र शून्य है और राजा के बिना प्रजा शून्य कहलाती है। इसी प्रकार दोनों का मानो देखो, समावेश और संचालन हो रहा है। ऐसे ही मानो देखो, ब्रह्म इसमें पिरोया हुआ है, उस ब्रह्म को स्वीकार करना ही हमारा ब्रह्मचर्यत्व कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् पान करते हुए मुनिवरों! देखो, महर्षि अरवेतु ऋषि ने कहा कि ये भी विचार हमारे में नहीं आ रहा है, क्योंकि यह तो स्वतः हो रहा है। आचार्य ने ये सब तो हम जानते हैं, परन्तु उसके पश्चात भी आचार्य ने ब्रह्मवर्चोसि कहा है।

तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि जैसे ऊर्ध्वा और ध्रुवा में प्रकृति में ये गतियां हो रही हैं, इन गतियों को ऊर्ध्वा और ध्रुवा दोनों में जानने का नाम मानो देखो, ब्रह्मचर्य व्रत कहलाता है। ऊर्ध्वा और ध्रुवा में जितनी भी गतियां हो रही हैं, जितना भी वर्णन हो रहा है मानो देखो, यह ब्रह्मचर्य व्रत कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, अन्तिम जिज्ञासु ने कहा कि नहीं ऐसा नहीं है। मेरे विचार में यह आता है कि जो श्वास पर श्वास अपनी ध्वनियां कर रहा है, मानो देखो, जैसे प्रातःकाल में सूर्य की ऊर्ज्वा आती हैं, सूर्य की किरणें आती हैं और वह सूर्य की किरणें पृथ्वी को तपायमान करती हैं और पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाती है, नाना प्रकार की वनस्पतियों में नवीन ऊर्ज्वा वाला प्राण आ जाता है तो इससे मुझे यह प्रतीत होता है कि इसी प्रकार जैसे ऊर्ज्वा किरण आयी और गति कर गयी, किरण आयी फिर गति कर गई फिर आयी, पुनः गति कर गयी, ऐसे ही मानव का स्वाभाविक श्वास गति कर रहा है। मानो इस श्वास में ब्रह्म को मध्यस्थ बना करके प्राण और मन के साथ में दोनों का चिन्तन करना, मनका बनाना और मनका बना करके मानो देखो, ब्रह्मसूत्र में पिरोने का नाम ब्रह्मचर्य कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, अन्तिम निर्णय दिया, कि संसार में ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? उसमें जो अपने श्वास की गति को जान करके, ब्रह्म को मध्यस्थ बना करके जो श्वासों के मनके बनाता है, और मनके बना करके, उसकी माला बनाता है ब्रह्म को सुमेरू बना करके माला बना देता है, मुनिवरों! देखो, वह ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! वह नाना वह बाह्य जगत में भी मनकों का निर्माण करता है।

मुनिवरों! बाह्य जगत में कैसे निर्माण हो रहा है? मेरे प्यारे! देखो, बाह्य जगत में यह जो ब्रह्माण्ड है, यह जो ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ रहा है इसके मानो तथ्यों को जान करके, विज्ञान के वांग्मय में प्रवेश करते हुए मुनिवरों! देखो, अपने में जो पिरोना जानता है, प्रत्येक तरंग को मुनिवरों! वैज्ञानिक जिस प्रकार तरंगों को जान करके, मानो

उसके अणु और परमाणु को जान करके, यन्त्रों को निर्माण कर देता है तो वह कहता है कि ब्रह्म के रचनामयी तथ्यों को एकत्रित करके मैंने यन्त्रों का निर्माण किया है। मानो देखो, वह जो यन्त्रों का जो निर्माण किया है, यन्त्रशाला में जो यन्त्रों का निर्माण किया है तो मैंने ब्रह्मसूत्र में एक मनका बनाया है। वह मनका तो कहलाता है जब वैज्ञानिक यह स्वीकार करता है कि यह मनका परमात्मा की एक धरोहर है और वायुमण्डल में एक एक तरंग धरोहर विद्यमान है, उस धरोहर को हमने कुछ जाना है, बाह्य जगत में उनका प्रदर्शन कर दिया है, मानो उसका जो रचयिता है वह ब्रह्म कहलाता है, वही आभा में निहित हो रहा है।

मेरे पुत्रो! जब इस प्रकार का विचार वैदिक आचार्य ने दिया, उस समय ऋषियों का अन्तरात्मा गद्-गद् हो गया। अब्रहे कृतं लोकाम् मेरे प्यारे! देखो, यह विचार होता रहा और अन्त में यह निर्णय, हो गया कि प्रत्येक श्वास का मनका बना करके मुनिवरों! देखो, ब्रह्मसूत्र में पिरोने का नाम ब्रह्मचारी कहलाता है और वह ब्रह्मचारी अपने में ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, मैं बहूत दूर चला गया हूँ, अपनी बहुत गम्भीर मुद्रा में चला गया हूँ। बहुत गम्भीर मुद्रा है। वैदिक साहित्य में इस प्रकार के जैसे यज्ञमान मानो देखो, अपना मनका बनाता है, एक समय बेटा! देखो, एक रात्रि तो समाप्त हो गई द्वितीय रात्रि आई, अध्वर्यु, उदगाता, यज्ञमान और ब्रह्मा इत्यादि यज्ञशाला के समीप विद्यमान हो गये, और विद्यमान हो करके और मेरे पुत्रों! देखो, वह जिज्ञासु बन करके यज्ञमान के समीप पंहुचें यज्ञमान ने उसका स्वागत किया। उन्होंने कहा कि भगवन!। हम इसलिए आए हैं यज्ञमान! क्या तुम जो मानो अन्न के रूप में विद्यमान हो, हम यज्ञमान के आशय को जानना चाहते हैं कि तुम यज्ञमान क्यों बने हो? ब्रह्मचारी सुनीति मुनि जो यज्ञमान बने हुए थे, उन्होंने कहा कि मैं यज्ञमान, यज्ञमान तो प्रभु! हैं जो इस संसार रूपी यज्ञशाला का निधित्व करने वाला है। मैं भी मानो देखो, अपना भौतिक याग रचा रहा हूँ। मैं आध्यात्मिक याग में प्रवेश होने के लिए, और संसार के ऋणों से उऋण होने के लिए मैं मानो देखो, यज्ञशाला में विद्यमान हूँ। उन्होंने कहा कि-प्रभु! आप यज्ञ क्यों कर रहे हैं? जो यज्ञमान कहता है कि मैं याग इसलिए कर रहा हूँ कि यह जो संसार है मानो वह परमात्मा से प्रतिष्ठित हो रहा है परमात्मा की इस संसार रूपी प्राण-प्रतिष्ठा का प्रतिनिधित्व करने वाला है। जैसे राजा राष्ट्र की आभा में अपने चरित्र की प्रतिष्ठा करता है और चरित्र की प्रतिष्ठा करता हुआ, प्रजा अपने चरित्र की प्रतिष्ठा करता हुआ राजा के चरित्र से मानो बन करके, एक राष्ट्रीय माला बना देते हैं, राष्ट्र उसी माला को ले करके मुनिवरों! देखो, प्रतिष्ठित हो जाता है।

मेरे प्यारे! देखो, विचार क्या विचार ये कि यज्ञमान कहता है, याग ब्रहे मैं यज्ञशाला में विद्यमान हूँ। जो भी तरंगे इस यज्ञ में, से साकल्य के द्वारा जो भी तरंगें मेरी भावना के साथ, साकल्य में प्रविष्ट हो करके, वायुमण्डल में जा रही है, मैं भी मानो, परोक्ष रूप में, उन देवताओं के समीप जाना चाहता हूँ, जो देवत्तमयी, श्वास लेते हैं, जो देवत्तमयी विचारते हैं, देवता तुल्य वह अपने को बना करके देवताओं की सभा में सुशोभनीय हो जाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब यज्ञमान ने यह कहा तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा धन्य है भगवन! यज्ञमान कहता है भगवन! मानो सबका प्रतिनिधित्व तो परमपिता परमात्मा कहलाता है, मैं ऐसे रथ को निर्धारित करना चाहता हूँ जिस रथ में विद्यमान हो करके, मैं द्यौ लोक में जा सकूं। उस रथ के जो अरे हैं वह मेरा आचरण है। मानो रथ का जो वाहन ऊर्ध्वा में गति करेगा तो वह मेरा स्वाहाः है, क्योंकि स्वाहा को इसीलिए याग का प्राण माना गया है। बेटा! देखो, यज्ञशाला में जब स्वाहा उच्चारण करता है मानो देखो, वह याग का प्राण माना गया है जिसे प्राणों की प्रतिष्ठा में, मैं प्राणो की प्रतिष्ठा उसमें मानों देखो, उसमें प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, वेद का ऋषि, इस प्रकार अपने उद्गार देता हुआ कहता है कि मेरा तो यही मन्तव्य रहा है, कि मेरे संसार के समन्वय में कोई स्वार्थपरता

नहीं है। मैं तो यह चाहता हूँ कि वह जो प्रकृति का भाग है, ये चेतना मेरी भावना रूपी वृत्तियों में परिणीत हो करके, वह द्यौ लोक में छा जाए, जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाए।

मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने एक वाक्य और बड़ा महत्वपूर्ण कहा कि जब मानव यज्ञ में स्वाहाः उच्चारण करता है और वह तरंगें, भावना के साथ और साकल्य श्रद्धामयी घृत के साथ जब वायुमण्डल में प्रवेश होती हैं तो जितना दूषित वायुमण्डल है, जितना दूषित परमाणुवाद है, मानो देखो, उस परमाणु को वह निगलता रहता है उस परमाणु को वह निगलता रहता है और अपनी प्रतिभा को चौमुखी बना करके मानो देखो, वायुमण्डल में वह छा जाता है। तो मेरे प्यारे! विचार क्या इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा है कि राजा को अश्वमेध याग करना चाहिए। गौमेध, नाना प्रकार के यागों में परिणत रहना चाहिए। मेरे पुत्रो! देखो, यज्ञमान की पत्नी कहती है कि मेरा वायुमण्डल, मेरा अन्तर्हृदय, अर्न्तमुखी, जो आकाश है वह इतना महान बन जाए, कि जिससे मैं इस संसार में अपने कर्तव्यवाद में परिणत हो सकूं, और कर्तव्यवाद अपनी आभा में रत्त रहने वाला है।

तो मेरे प्यारे! विचार क्या, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूं। मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हे देने नहीं आया हूं, केवल विचार क्या कि छह जिज्ञासु, पिप्पलाद मुनि आश्रम में, मध्यरात्रि के पश्चात निद्रा से तल्लीन, मानो देखो, निद्रा से परे अकृतियों में रत्त होते हुए, वह अपने में इस प्रकार का विचार विनिमय करते रहते थे। विचार क्या था मुनिवरों! देखो, प्रातःकालीन याग करना, याग करने के पश्चात मानो पुनः छह जिज्ञासु अपनी स्थलियों पर विद्यमान होकर के, अपने-अपने विचार व्यक्त करने लगे। उन्होंनें कहा महाराज! यह जो याग हमने किया है, इस याग को हमारे आध्यात्मिकवाद से क्या समन्वय है? तो उसमें बेटा! कवन्धि ने कहा कि ये मानो देखो, आध्यात्मिकवादी प्राणी जब आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है तो वह अपने वातावरण को, अपने वायुमण्डल को अनुकूल बनाता है, जिससे मैं इन तरंगों में विद्यमान हो करके, अपनी तरंगों को तरंगित करके मानो मैं उस लक्ष्य पर पहुंच सके, जो लक्ष्य उसने बनाया है। मानो, देखो, मैं ब्रह्म को जानना चाहता हूँ या विज्ञान में प्रवेश करना चाहता हूं या मैं राष्ट्रीयवाद में प्रवेश करना चाहता हूँ मेरी विचारधारा उसके अनुकूल और चरित्र की प्रतिभा में रत्त हो जाए। तो मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी कबन्धि ने यह अपना वक्तव्य दिया, कि क्या मानो देखो, आध्यात्मिकवाद जब हमारा बाह्य जगत पवित्र बन जाता है, तो वही आध्यात्मिकवाद में सहायक बन करके यही, विज्ञान में प्रवेश हो करके परमात्मा के राष्ट्र को अच्छी प्रकार, समष्टि रूप में जान सकेगें। जब उन्होंने यह वाक् कहा तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए।

मेरे प्यारे! देखो, सुनीति ने कहा कि मैं यज्ञमान बना हूँ, मानो, प्रभु इस संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माणवेत्ता है, मानो वह निर्माण कर रहा है, वह यज्ञ का रचयिता है, वह यज्ञमान है परन्तु हम तो केवल निमित्त कहलाते हैं। परन्तु आध्यात्मिकवाद तो हमारा जीवन है। जब परमपिता परमात्मा का और हमारे क्रियाकलापों का, दोनों का समन्वय हो जाता है तो मानो देखो, हम परमपिता परमात्मा के चैतन्यमयी, प्रकाशमयी राष्ट्र में अथवा उसके राज्य में जब अपने को स्वीकार करते हैं, तो वही हमारा आध्यात्मिकवाद है क्योंकि बाह्य जगत से उपरामता को चले गए हैं, देखो, हमारा आध्यात्मिकवाद एक लक्ष्य से मानो हम उस मार्ग के पथिक बनने जा रहे हैं, जिस मार्ग में जा करके हम सान्त्वना को प्राप्त हो सकें।

मेरे प्यारे! तृतीय जिज्ञासु ब्रह्मचारी ने कहा कि हमारे इस याग का आध्यात्मिकवाद से क्या समन्वय रहता है कि हम अनुष्ठान करते हैं, हमारा हृदय पवित्र हो जाता है और हमारे बाह्य जगत में जो देवता है, पंचीकरण जो हो रहा है वही पंचीकरण हमारे हृदय में विद्यमान है, वही हमारे शरीरों में विद्यमान हैं जब मानो बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों का समन्वय हो जाता है, दोनों से विजातीय पदार्थ नष्ट हो जाते हैं जैसे मानो देखो, प्राण चिकित्सा वाला, जब प्राण चिकित्सा करता है, तो विजातीय प्राण अथवा जो विजातीय वायु श्वास के साथ में प्रवेश

कर गया है प्राणायाम करने से मानो उसका शुद्धिकरण हो जाता हैं और वह रुग्णो को, वह विजातीय को नष्ट कर देता है, स्वच्छता को प्रदान कर देता है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! हम जो याग कर रहे हैं, इसका आध्यात्मिकवाद यह है कि हम अपने में शुद्धिकरण करते हुए और उसी शुद्धिकरण में मानो देखो अपने में शुद्धिकरण होता हुआ, हमारे आन्तरिक जगत में जो देवता क्रियाकलाप कर रहे हैं, उनका शुद्धिकरण और प्रसन्नता वास हो जाता है, विजातीयता नष्ट हो जाती है। तो बाह्य देवता और आन्तरिक देवता दोनों के मध्य में से, विजातीय नष्ट हो गया है और सजातीय हो करके हम मानो मानो बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों जगत का समन्वय कर लेते हैं।

मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार, जब ऋषियों ने अपना-अपना निर्णय देना प्रारम्भ किया, तो चतुर्थ जिज्ञासु ने कहा कि हम जो अपने में विद्यमान हैं, वह आध्यात्मिकवाद के लिए नहीं, हम इसलिए उसमें विद्यमान हैं कि हम सर्वत्र जगत को जान करके, ब्रह्म का दर्शन करना चाहते हैं। मानो देखो, जैसे हम निःस्वार्थ हो करके, अग्नाध्यान करके अग्नि में जब हम स्वाहाः कहते हैं, स्वाहाः यज्ञ का आत्मा बन करके और हमारी अन्तरात्मा का उद्गार उत्पन्न हो करके बाह्य जगत की प्रसन्नता और आन्तरिक जगत की प्रसन्नता दोनों मिलान करके, मानो एक ब्रह्म की आभा का जन्म हो करके हम द्यौ-लोक को प्राप्त हो जाते हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषियों ने इस प्रकार अपना गम्भीर वाक् प्रारम्भ किया, तो इसमें उनका अवरोध होने लगा, मानो अपने में परिणीत हो गये, मानो देखो, उस याग का आध्यात्मिक और भौतिकवाद दोनों का समन्वय हो करके, हम ब्रह्मसूत्र में अपने को पिरो करके और ब्रह्म को सुमेरू बना करके बेटा! हम उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त कर सकें। ऐसा सदैव हमारा मन्तव्य रहता है जिसमें देखो, भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान और दर्शन विद्यमान रहता है।

मेरे प्यारे! देखो, राजा, इसलिए राष्ट्र का निर्माण करता है कि मैं अपनी प्रजा का शुद्धिकरण कर सकूं, परन्तु देखो, राजा जब अपना शुद्धिकरण कर लेता है आहार में, व्यवहार में तो प्रजा भी आहार और व्यवहार में अपना शुद्धिकरण करके राष्ट्रीयता को सजातीय बना करके आध्यात्मिकवादी और बुद्धिजीवी बन करके, मानो देखो, उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को जान करके इस सागर से पार हो जाए, यह हमारा सदैव मन्तव्य रहता है। मेरे प्यारे! देखो, मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि हम जब ऋषि-मुनियों के क्षेत्रों में अथवा उनकी वार्त्ताओं में परिणत होते हैं तो हमारा जीवन प्रबल होने लगता हैं। हम अपने में यह स्वीकार करते हैं कि यह उनकी कितनी महान देन है, उनके महान उद्गीतों में, हमें मानो देखो, कितना उपदेश प्राप्त होता है जिससे हम, परमपिता परमात्मा, जो महान देव है, उस राजा के राष्ट्र में हम प्रवेश हो जाएं, विष्णु बन करके हम अपना कल्याण कर सकें और जो पालन करने वाला देव है, जो हमारे अंग-संग रहता है, उसे हम जान सकें। यह हमारा मन्तव्य रहा है। विचार विनिमय क्या, हो रहा है आज का विचार क्या कह रहा है बेटा! छह के, छह जिज्ञासु अपना-अपना मन्तव्य दे रहे हैं, अपने-अपने विचार और इन्द्रियों का पालन कर रहे हैं।

बेटा! आज का विचार यह, कि हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, उस महान, जो जनजीवन को उद्गीत दे रहा है, मानो प्रबल बना रहा है, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, अपने में निश्चय कर लें बेटा! जो साधक जन होते हैं साधक वही होता है जो बेटा देखो, परमपिता परमात्मा के अनुशासन से अपने विचारों को गूंथ देता है, अपने विचारों की माला बना देता है। जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में मानो देखो, स्वाहाः की माला बना देता है, प्रत्येक वेदमन्त्र के साथ में जो ज्ञान और विज्ञान है, उन तरंगों के साथ में स्वाहाः कह करके परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में प्रवेश करना चाहता है।

तो आओ मेरे प्यारे! आज का विचार क्या? आज के विचार उच्चारण करने का अभिप्राय ये, कि जब तक

मानव यह स्वीकार नहीं करेगा, कि मैं परमात्मा के राष्ट्र में हूँ, परमात्मा राष्ट्रपिता है, मानो सर्वत्र प्राणी उसकी प्रजा हैं, जब तक यह स्वीकार नहीं करेगा, तब तक कोई भी साधक संसार में अपनी साधना को पूर्ण नहीं कर सकता। जब तक प्राण और मन का मनका बन करके, ब्रह्मसूत्र में श्वास के साथ में मनका नहीं पिरोया जाता, तब तक मानव की वाणी का, विचारो का शुद्धिकरण नहीं होगा और जब तक शुद्धिकरण नहीं होगा तो बेटा! ब्रह्म को कैसे प्राप्त करेंगे।

आज का विचार हमारा यह कह रहा है कि हम स्वीकार करें कि परमपिता परमात्मा राष्ट्रपिता है और वह मानो देखो, जन-जन में विद्यमान रहता है, वह कण-कण में विद्यमान है, वह जल-आपों की तरंगों में, वायु तरंगों में, एक-एक शब्द के रूप में अनुशासन कर रहा है और वह अनुशासनवेत्ता है। उसका अनुशासन बड़ा विशाल है, बड़ा अनुपम है, बड़ा गम्भीर कहलाता है। इसके ऊपर हम प्रायः विचार विनिमय करते रहते हैं। आज का विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। इन जिज्ञासुओं को विचार करते-करते एक वर्ष बीत जाएगा तो यह विचार कल प्रकट करेंगे। परन्तु देखो, पिप्लाद मुनि से जो चर्चा हुई तो वह कल प्रगट करेंगें। आज का वाक् समाप्त, अब समाप्त होने जा रहा है शेष चर्चा कल प्रगट करेंगें आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन। लाक्षागृह, बरनावा ०३-०३-१९८७

६ ऋत और सत् ०४-०३-१९८७

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना, मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महान है। मानो उसकी महानता इस संसार रूपी राष्ट्रवाद की प्रतिभा में निहित रहती है। क्योंकि हमारे, यहाँ एक-एक वेदमन्त्र में राष्ट्रवाद की चर्चाएं होती रहती है और भिन्न-भिन्न प्रकार के राष्ट्रों में अथवा राष्ट्रों की जो भिन्न-भिन्न प्रणाली हैं अथवा मानव के मस्तिष्कों की जो उपज है, वह वेद के वांग्मय में निहित रहती है। तो इसीलिए वे परमपिता परमात्मा राष्ट्रपिता हैं मानव इस नाना प्रकार के मार्ग से होता हुआ, जब वह परमपिता परमात्मा के सर्वमार्ग में प्रवेश करता है अथवा उसमें ओतप्रोत हो जाता है, तो उसे यह अनुभूति होती है कि मैं ऐसे राष्ट्रपिता के राष्ट्र में आ गया हूँ, जैसे माता का बालक, क्षुधा से पीड़ित हो करके माता की लोरियों में प्रवेश करता है तो उसकी नाना रूप में जो क्षुधा जागरूक हो रही थी वह शान्त हो जाती है।

तो इसी प्रकार जब हम परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में विद्यमान हो जाते हैं, तो परमात्मा का जो राष्ट्र है, एक अनूठा है, मानो उसमें जाने मे पश्चात, मानव इस नाना प्रकार के बन्धनों को जो जगत है, इससे वह मानव उपराम हो जाता है, और वह सर्वत्र उसी में अपने को प्रवेश कर देता है। अथवा समर्पित कर देता है तो मेरे प्यारे! हम यह विचारने लगे, कि जब प्रत्येक मानव ये विचारने लगेगा कि यह परमात्मा का राष्ट्र है और सब हम उस परमात्मा के राष्ट्र में उसके अनुशासन में अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए। परन्तु जब वह उसके जीवन में और परमात्मा की जो जीवन सत्ता है, उसके मध्य से मानो अन्तर्द्वन्द्व प्रतिपादित रहे, मानो उनका बहिष्कार कर देता है तो बेटा! सजातीय विचार रह जाते हैं, सजातीय क्रियाकलाप रह जाता है और जिन सजातीय क्रियाकलापों में प्रवेश हो करके, मानव अपने में ऊंची-ऊंची कल्पनाएं, ऊर्ध्वा में कल्पना करने लगता हैं, तो आओ, मेरे पुत्रो! मैं तुम्हे विशेष विवेचना तो देने नहीं आया हूं, आज मैं तुम्हे ये विचार देने के लिए आया हूं कि मानव को, अपने को परमात्मा के राष्ट्र में स्वीकार करना चाहिए। जिस प्रकार अबोध बाल्य, माता की लोरियों को, उसकी आभा को अपना राष्ट्र स्वीकार करता है, इसी प्रकार ज्ञान और विज्ञान के मार्ग से गमन करता हुआ, वे मुनिवरों! देखो, परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में अपने को स्वीकार कर लेना चाहिए।

तो आज में पुत्रो! विशेष विवेचना न देता हुआ, विचार यह दे रहा हूं मैं तुम्हें वहीं ले जा रहा हूँ मानो जहाँ छह जिज्ञासुओ को ऋषि पिप्पलाद ने यह आज्ञा दी कि तुम जाओ और ब्रह्मचर्य व्रत से रहो और एक वर्ष तक गऊओं का पालन करो। तो मानो अपने-अपने विचार व्यक्त करते हुए उनका एक वर्ष व्यतीत हो गया। बेटा! एक वर्ष पूर्व के अन्त माह में एक समय बेटा! छह जिज्ञासु विद्यमान हो गए और यह मनन-चिन्तन करने लगे, कि आचार्य ने हमसे पूर्व एक शब्द कहा था, मानो उसका एक वर्ष होने को है और उन्होंने यह कहा कि ब्रह्मचारियों! तुम व्रत से रहो और मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ। परन्तु द्वितीय विचारों में उन्होंने यह कहा, कि मैं जानता होऊंगा तो अवश्य उत्तर दूंगा। मुनिवरों! ऋषि-मुनियों की जो बुद्धि है, वह बड़ी तपोमयी कहलाती है और वह मेधा में, जब प्रवेश कर जाते हैं, तो वह प्रत्येक वाक् को और प्रत्येक शब्द को, वह बड़ा चिन्तनमयी बना करके, मानो अपनी बुद्धि और मेधा में प्रवेश हो करके, उसके स्वरूप को अपने अन्तर्हृदय में, एक विषय बना लेते हैं। तो बेटा! उन्होंने पिप्पलाद जी के इस वाक् को ले करके, अपना एक चिन्तन का विषय बनाया।

उन्होंने कहा कि ये उसमें ब्रह्मचारी कबन्धि ने यह कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि ऋषि ने यह

कहा है कि मैं जानता होऊंगा तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूंगा। तो मानो उन्होंने यह क्यों कहा? क्योंकि ऋषि-मुनियों में अभिमान नहीं होता, और वह जो भी शब्द उद्गीत रूप में गाते हैं, मानो वह उपराम हो करके गाते हैं और उसमें निष्काम कर्म होता है, हमारे यहां निष्काम कर्म की बड़ी विवेचना मानी गई है। बेटा! आदि ऋषियों ने निष्कर्म अपने को बनाया और राष्ट्र को भी यह उपदेश दिया और परमात्मा के राष्ट्र में रहने के लिए परमात्मा का उद्गीत गाया और यह कहा कि परमपिता परमात्मा किसे प्राप्त होते हैं? परमात्मा उसे प्राप्त होते हैं जो निष्कर्मवादी होता है, जो निष्कर्म करने वाला होता है। निष्कर्म कौन करता है? निष्कर्म वह महान पुरूष करते हैं जिनके हृदयों में एक विशाल, ज्ञान रूपी अग्नि जागरूक होती है और वह दूसरों के प्रति जागरूक रह करके, अपने को जगाते रहते हैं। दूसरों को जागरूक बनाना और अपने में स्वतः सतर्क रहना है, अपने में मानो जगाना और अपने में जागना है, अपने में यागाम ब्रह्मः वो जगाना है। दुसरे को जागरूक करना, अपने को जगाना है, जो अपने को नहीं जगाता है, वह दूसरों को भी नहीं जगा सकता, मेरे प्यारे! वह दूसरों को जागरूक नहीं बना सकता। इसीलिए प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने को जागरूक बनाए, दूसरों को जागरूक बनाने से पूर्व अपने में जागरूक बने।

तो मुनिवरों! देखो, ऋषि-मुनियों का एक बड़ा विशाल विचार रहा है। उन्होंने कहा कि आचार्य ने हमें जागरूक बनाया है। इसलिए कहा है कि तुम उस समय गऊओं का पालन करने लगे, इस प्रकार का पालन करो, जिससे तुम्हे जिससे अभिमान न आ जाए। मानो देखो, मैं जानता हूँ और मैं जानता होऊंगा, तो उत्तर दूंगा, ये दो वाक् हो गए। मानो देखो, जैसे उनका तप और अध्ययन था, उसके अनुसार तो आचार्य जानते थे परन्तु वे यह उच्चारण करना कि मैं जानता होऊंगा तो उत्तर दूंगा, उसका अभिप्राय यह है कि वह उस वाक् को इसलिए उद्गीत रूपों में गाते रहते थे, कि मैं मानो देखो, परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में हूँ, मैं उसकी प्रजा हूँ, और वह मेरा स्वामी है, मेरी रक्षा करने वाला है, मानो हो सकता है, कि मैं तुम्हारें प्रश्नों का उत्तर न दे सकूं। मेरी बुद्धि भ्रमित हो जाए, मैं सुषुप्ति में चला जाऊं, जागरूक न रह सकूं, तो इसलिए मानो देखो, मैं जानता होऊंगा, तो तुम्हारें प्रश्नों का उत्तर दे सकूंगा।

मेरे प्यारे! इसका अभिप्राय यह हुआ, कि मानव को अभिमान नहीं करना चाहिए। ज्ञान हो, ज्ञान के साथ में विवेक हो, विवेक के साथ में तप हो। तप, ज्ञान और विवेक यह तीनों एक ही सूत्र के मनके कहलाते हैं। उन्होंने यह वाक् इसलिए कहा कि ऋषि और तपस्वी जो होते हैं वे निरभिमानी होते हैं, वे परमात्मा के विषयों को, ऐसे अपने में ओझल कर देते हैं, जैसे मानो देखो, मेघों में विद्युत अपना प्रकाश देती है, मेघों को तपाती है परन्तु मेघों में अपने को ओझल कर लेती है। इसी प्रकार देखो, मानव परमात्मा के विषय में अपने को ओझल कर लेते हैं। तो विचार-विनिमय क्या? पुत्रों! एक वर्ष तक मौन विचार चलता रहा और ये ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि वास्तव में आचार्य सुयोग्य हैं, यह पूज्य हैं, मानो निरभिमानी हैं।

मेरे प्यारे! देखो, जब एक वर्ष समाप्त होने वाला था, सब जिज्ञासुओं ने अपनी यह विचारधारा बनायी कि कैसे वे हमें जागरूक बनाएगें भी तो गऊओं का पालन करते हुए, गऊओं को अपने में धारयामि बनाते हुए, उनका दुग्धाहार करते हुए, हमारे यहां बेटा! दो प्रकार का दुग्ध आहार होता है एक तो भौतिक होता है, जिससे शरीर की पालना-पोषणा होती है, मानो वह तो पशु माना गया है। उस गौ नाम के पशु की रक्षा करना है। मानो देखो, एक है जो इन्द्रियों का जो रक्षक है, इन्द्रियों की रक्षा करनी है। रक्षा का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय का जो विषय है, मानो देखो, उसका जितना भी ज्ञान है, विज्ञान है, उस ज्ञान और विज्ञान को जान करके, हमें क्रियाशील बनाना है और उनका एक साकल्य बनाना है, एक साकल्य बना करके और मानो देखो, यज्ञशाला में उसकी

आहुति देनी है, मेरे प्यारे! देखो, स्वाहाः कहना है। जैसे यज्ञशाला में यज्ञमान, नाना प्रकार के साकल्य को एकत्रित करता है, श्रद्धामयी घृत को ले करके, मानो देखो, वह अपने अन्तर्हृदय से उसको स्वाहाः उच्चारण करता है तो उस यज्ञमान की माला बन करके रहती है। मेरे प्यारे! जैसे मानव चक्षु प्रकाश के आश्रित रहता है, मेरे प्यारे! देखो, रसना स्वादों के रसों के आश्रित रहती है, त्वचा प्रेम और स्पर्श की आभा बन करके रहती है, इसी प्रकार, प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है, उन सबका समावेश हृदय में माना गया है। हृदय में यह केन्द्रित हो जाते हैं और सबका साकल्य बन करके हृदय ही उनका कोष कहलाता है। मानो हृदय ही, उनमें समाहित हो जाता है, और हृदय में वह साकल्य समाहित हो करके, मेरे प्यारे! देखो, यज्ञमान इस प्रकार अपने हृदय को बना करके आहुति देता है स्वाहाः रूपी शब्द पर, साकल्य की तरंगें बन करके, अग्नि को अपना स्वाहा बना करके, द्यौ लोक को प्राप्त हो जाते हैं और द्यौ लोक से जो यज्ञमान चाहता है, हम देवताओं से वही प्राप्त कर लेता है। मेरे प्यारे! वही उन्हीं को प्राप्त होता है।

राम द्वारा वाजपेयी याग

हमारे यहाँ नाना प्रकार के यागों में, मुझे बहुत-सा काल स्मरण आता रहता है। हम तुम्हें ले जाना नहीं चाहते हैं, जब हम साहित्य में जाते हैं, तो राष्ट्र का राजा, जब अपने यहाँ याग करता है तो उसमें महानता की एक प्रतीति होने लगती है। मुझे स्मरण आता रहता है, भगवान राम ने त्रेता के काल की यह वार्त्ता है। भगवान राम ने जब लंका को विजय करके अयोध्या में प्रवेश किया तो उसके पश्चात बारह वर्ष का उन्होंने तप किया और तप करने के पश्चात राष्ट्रपिता बने, जब राष्ट्रवेत्ता बने तो कुछ समय तक वह राष्ट्र का पालन करते रहे परन्तु कुछ समय के पश्चात उनके राष्ट्र में एक अकाल पड़ गया जल प्लावन आ गया और वह भयंकर अकाल था। प्रजा मानो देखो, वह कैसा पण अकाल पडा सब ओर जल प्लावन आ गया। तो मुनिवरो! राम ने यह विचारा, कि अब मैं क्या करूं? मानो देखो, माता अरून्धती और वशिष्ठ दोनों विद्यालय में ब्रह्मचारियों को अध्ययन कराते रहते थे, मेरे प्यारे! देखो, ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ाते रहते। राम और मुनिवरों! देखो, उनकी देवी सीता, दोनों ने भ्रमण करते हुए मेरे प्यारे! देखो, आचार्यकुल में प्रवेश किया। माता अरून्धती और वशिष्ठ ने उनका आदर किया उन्होंने कहो भगवन! तो राम ने कहा कि-प्रभु! आपको प्रतीत नहीं है कि हमारे राष्ट्र में अकाल हो रहा है। उन्होंने कहा कि बहुत प्रिय राम! तुम क्या चाहते हो? राम ने कहा यह अकाल नहीं रहना चाहिए, यह पण अकाल समाप्त होना चाहिए। उन्होंने कहा बहुत प्रिय।

मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने ये वार्त्ता प्रकट करते हुए यह कहा था सम्भवं ब्रह्मा ऋतं देवा मानो देखो, ये कहा कि तुम एक याग करो। मानो उन्होंने अग्निष्टोम याग को त्याग करके वाजपेयी याग किया और ऋषि ने पन्द्रह दिवस तक उनके हृदय को हृदयग्राही बनाया। राम और सीता, दोनों ने अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके पन्द्रह दिवस तक उन्होंने विद्या का अध्ययन किया, और उस अन्न को पान किया, जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं था। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, कि राम जैसे महापुरूष इस पृथ्वी के गर्भ ने नाना प्रकार के अन्न को उत्पन्न करके पान करते थे। एक गऊ थी जो महात्मा वशिष्ठ से उन्हें प्राप्त हुई। वह कामधेनु गऊ का, दुग्ध आहार करते थे और उस अन्न को पान करते, जो स्वयं मानो पुरूषार्थ करके उस अन्न का पान करना मेरे प्यारे! उसके पश्चात उन्होंने वाजपेयी याग किया। वाजपेयी याग करने के पश्चात मेरे प्यारे! देखो, मेघ समाप्त हो गए। वायुमण्डल में क्या, उनका विचार, उनका क्रियाकलाप स्वाहाः के साथ, द्यौ लोक में चला गया।

मेरे प्यारे! देखो, तीन प्रकार के शब्दों की मैंने तुम्हें विवेचना की है, एक शब्द भूः, भुवः, स्वः मानो भूः से मध्य लोक को ऊंचा बनाना, भुवः में रहना, निचले पृथ्वी तल को ऊंचा बनाना और मुनिवरों! देखो, स्वः लोक में

जाना जहाँ यह तीनों समाहित हो जाते हैं। तो विचार क्या? यह जो स्वः है, यह द्यौ मण्डल कहलाता है। द्यौ उसे कहते हैं मुनिवरों! देखो, जहाँ सर्वस्व प्रभु का भण्डार विद्यमान हो जाता है, अथवा स्थिर हो जाता है। वही तरंगों का भण्डार, अतिवृष्टि, अनावृष्टि के रूप में, सूर्य की किरण के साथ में, पृथ्वी की आभा, गुरूतव को ले करके मानो देखो, इसे जलमग्न करता रहता है या उष्णता में परिणत करता रहता है। तो परिणाम यह कि वह पण अकाल समाप्त हो गया। राम का अन्तर्हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। बेटा! हमारे विचारों का अभिप्रायः यह है विचारों का तारतम्य यह है मानव का विचार यह है कि यज्ञमान जब यज्ञशाला में विद्यमान हो तो उसे अपने विचार कैसे बनाने है। यदि वह चाहता है कि अग्निष्टोम याग के द्वारा मैं, पण अकाल को समाप्त करूं और वाजपेयी याग और उदगाता का हृदय से अग्निष्टोम के द्वारा मानो देखो, वृष्टि का संचार हो जाएं तो प्रायः वह जो हृदय है, यज्ञमान का हृदय, उदगाता का हृदय, अध्वर्यु और ब्रह्मा के हृदय से मिलान करता है उदगाता जब वेद मन्त्रों की ध्वनि को गाता है तो वह द्यौ लोक में छा जाती है। वही द्यौ लोक तो इस संसार का मानो देखो, केन्द्र माना गया है। जैसे मानव के कण्ठ का भाग, शरीर का केन्द्र माना गया है, इसी प्रकार वह भी केन्द्र माना गया है। तो विचार क्या मुनिवरों! देखो, भगवान राम ने इसी प्रकार का याग किया और यागों का कर्मकाण्ड बड़ा विचित्र है।

आज मैं विशेषता में नहीं, बेटा! बहुत दूरी चला गया हूं, मैं साहित्य में जाना नही चाहता हूं। हम उत्कृष्ट रूपों से ऋषि-मुनियों की वार्ता प्रगट कर रहे थें और विचार यह चल रहा था मुनिवरों! देखो, कि छह जिज्ञासु कल्पना कर रहे थे, वह उच्चारण कर रहे थे कि हृदय अगम्य है और मानव का हृदय, यज्ञमान का हृदय का परमात्मा के हृदय से जब मिलान होता है तो वह अपने प्रभु से जो वह अपने हृदय से चाहता है, वही उसे प्राप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! वह इतना गम्भीर, इतना उद्गत और अद्वितीय विचारों वाला बन जाता है कि परमपिता परमात्मा की अमूल्यता को प्राप्त कर लेता है। तो मेरे पुत्रो! विचार देता हुआ मैं इतनी दूर चला आया हूँ गम्भीर विचारों से, मैं साहित्यों में चला गया हूं विचार यह चल रहा था कि ऋषि-मुनि अपने में अध्ययन करते हुए, वह एक समय बेटा! मध्यरात्रि के अन्तिम पहर में, महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज के कक्ष में पहुंचे। महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज जागरूक थे और अपने प्रभु से वन्दना कर रहे थे, और यह उच्चारण कर रहे थे कि हे प्रभु! तू तो वेदज्ञ है, स्वतः प्रकाश है, स्वतः मानो याग है, आध्यात्मिक हो, चाहे भौतिक हो। मानो वह इस प्रकार वह अपने प्रभु से एकान्त स्थली में, शान्त वायुमण्डल में, प्रभु के हृदय से अपने हृदय का मिलान कर रहे थे। मानो समन्वय हो करके, मानो संसार की आभा को त्याग करके मानो देखो, शून्य बिन्दु की तरंगों में अपने को शान्त करना चाह रहे थे। मेरे प्यारे! देखो, जब छह जिज्ञासुओं ने इस प्रकार ऋषि के कौतुक को दृष्टिपात किया तो बेटा! वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि ऋषि बड़े विचित्र हैं, यह सदैव चिन्तन में लगे रहते हैं और प्रभु के सान्निध्य में मानो अपने को समर्पित कर रहे हैं। इसी प्रकार हमने भी अपने को समर्पित कर दिया है।

मेरे प्यारे! देखो, इसी विचार में एक वर्ष हो गया। जब अन्तिम दिवस आया, तो छह जिज्ञासु, उस गौ-शाला को, उस गौ-स्थलि को त्याग करके मुनिवरों! देखो, ऋषि पिप्पलाद के द्वार पर पहुंचे। पिप्पलाद मुनि ने कहा, आओ, ब्रह्मचारी विराजो। वह ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हो गए। सबसे प्रथम ब्रह्मचारी कबन्धि ने यह कहा कि महाराज! हम आपसे कुछ प्रश्न करना चाहते हैं? पिप्पलाद मुनि ने कहा, कीजिए भगवन! ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि-प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं, पिप्लाद मुनि ने कहा कीजिए भगवन्! ब्रह्मचारी कवन्धी ने कहा प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि ऋत् और सत् किसे कहा जाता है? ऋषि ने उसका उत्तर दिया कि प्रकृति को ऋत् कहते हैं और ब्रह्म को सत् कहते हैं। सत् का ऋत् में पिरोना और ऋत् का सत् में पिरोने का नाम, मानो यह जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है। मेरे प्यारे! देखो, यदि ऋत् और सत् नहीं होंगे, तो प्रकृति नहीं होगी, ब्रह्म की ब्रह्म

होगा, तो मानो देखो, यह रचना दृष्टिपात नहीं आएगी। हम भी तो ऋत् और सत् में पिरोए हुए हैं। मानो देखो, हम जैसे शिशु हम भी तो ऋत और सत् में पिरोएं हुए हैं माता के गर्भ में ऋत् और सत् का दोनों का समन्वय होता है। तभी तो माता अपने महान पुत्र को जन्म देती है। मानो देखो, उन्होंने अपना यह एक विचार दिया।

ब्रह्मचारी कबन्धि मौन होने लगे, तो मौन होते-होते कबन्धि ने कहा कि-प्रभु! यह जो हमने ऋत्यं ब्रह्मा यह ऋत् और सत्यमयी जगत है? उन्होंने कहा सर्वत्र जगत ऋत् और सत् में है। मानव हृदय से सकंल्प करता है और हृदय में ही वह सकंल्प समाहित हो करके, वह वाह्य रूप में आता है। और बाह्य रूप में उस संकल्प का साकार रूप बनता है और साकार रूप बन करके मानो देखो, वह उसकी क्रिया में आता है। तो आज हमें विचारना है क्या हम ऋत् और सत् को जान करके अपने विचारों को क्रिया में लाना चाहते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा क्या क्रिया तो उसी समय हो गई जब संकल्प जागरूक हो गया है और संकल्प का बाह्य रूप हो जाना यह हृदय के आन्तरिक उद्गार होते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है कि यह संसार की भी मानवीय सृष्टि का वर्णन है और यह प्रभु की सृष्टि का वर्णन है और ऋत् और सत् में यह प्रभु की सृष्टि का वर्णन है, मानो ब्रह्म का वर्णन है। यह मानवीय सृष्टि का जितना संकल्प है, इनका समन्वय बेटा! ऋत् और सत् से होता है। मेरे प्यारे! देखो, पिप्पलाद मुनि ने यह उत्तर दिया तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए।

द्वितीय सुनीति ब्रह्मचारी ने कहा कि हे प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं, कि मानव किस के आश्रित रहता है? मानव किस के आधार पर मानो देखो, अपने जीवन को, व्यतीत करता है? तो ऋषि ने कहा कि मानव अपने जीवन का जो मानव अपने जीवन को निर्धारित कर रहा है, अपने को स्वीकार कर रहा है। जाने-अनजाने में मानो वह प्राण है यह प्राण ही सखा है जो संसार को निगलता रहता है। बेटा! मानव नाना प्रकार का आहार करता है। आहार के पश्चात प्राण ही व्यवहार करता हैं क्योंकि उसमें क्रिया है, क्रिया के बिना मानो देखो, व्यवहार अथवा वह अपने में गतिशील नहीं होता तो इसीलिए वही प्राणं ब्रह्मे मेरे प्यारे वही प्राण संसार की प्रत्येक वस्तु का निगल रहा है, वही मानो उसे सूक्ष्म बनाता है, मुनिवरों! देखो, वही पृथ्वी पर आ करके, पृथ्वी से समन्वय करके दूसरे रूप में परमाणु विद्यमान हो जाते हैं। यह प्राण ही तो सखा है जो गाता रहता है, उद्गीत गाता है। यह प्राण सखा है, जो आहार कर रहा है। आहारों से गतियां चल रही हैं, परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में गमन कर रहे हैं। शब्दों की प्रतिभा में ध्वनि मानो देखो, ध्वनित हो करके द्यौ लोक में प्रवेश कर रही है, भू-लोक में प्रवेश कर रही है। मानो देखो, यह प्राण सखा श्वास के साथ में परमाणुओं को ले करके वही क्षुधा के मूल में विद्यमान है। पृथ्वी के गर्भ में वही मानो देखो, आपो प्राण शक्ति देता है, नाना प्रकार की वनस्पतियां उपज जाती हैं और वही वनस्पति मानव के किसी रूग्ण में, आहार के रूप में विद्यमान रहती है।

ब्रह्म का हृदय

मेरे प्यारे! कैसा अनूठा जगत है? आज मैं इसके वर्णन करने में असमर्थ हो जाता हूँ, ऐसा यह विचित्र जगत है। बेटा! एक-एक वस्तु पर विचार विनिमय करो, तो तुम्हारी वाणी मौन हो जाएगी, वाणी मानो देखो, क्रियाकलाप त्याग देगी। तो इसलिए विचारने से प्रतीत होता है कि मुनिवरों! देखो, यह प्राणसत्ता कहीं वायु के साथ रहती है, कहीं आपो-जल के साथ रहती है। कहीं यही प्राणसत्ता अग्नि के साथ रहती है, कहीं यही प्राणसत्ता अन्तरिक्ष के गर्भ में ओतप्रोत रहती है। मेरे प्यारे! जितनी भी क्रियाएं हैं, यह सब ऋत् और सत् से गुथी हुई हैं। जैसे मेरे प्यारे! मानव के हृदय में जितना संसार का भौतिक या आध्यात्मिक विज्ञान हमें दृष्टिपात आ रहा है, ये भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान ये मानव के हृदय से गुथा हुआ है और मानव का हृदय ऋत् और सत् से गुथा हुआ है। ऋत् और सत् का ब्रह्मव्रतो ज्ञान है, वह ब्रह्म का हृदय माना गया है। बेटा! मैं कहाँ चला गया हूँ,

यह विचार बड़े विचित्र हैं। दर्शनों में या वेदमन्त्रों के वांग्मय में जब हम जाते हैं तो वह अगाध समुद्र कहलाता है, वह ब्रह्म का समुद्र है। जो यह कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ, मानो देखो वह ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म तो एक अनूठा है, अरे, मानव तो मानव ही रहेगा।

परन्तु देखो, महर्षियों ने तो यह कहा है बेटा! एक समय मैंने च्यवन ऋषि के विचारों को ग्रहण किया था। जब च्यवन ऋषि की २००० वर्ष की आयु हो गयी, वह ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करते ही रहते थे। एक समय वह यह उच्चारण करने लगे कि हे प्रभु! यदि मैं ऋत् और सत् के सम्बन्ध में जानता रहूँ तो मेरी सहस्त्रों वर्ष की आयु होनी चाहिए और इसके पश्चात भी मैं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं आपके सम्बन्ध में सर्वत्रता को जान सकता हूं या नहीं। मेरे प्यारे! ऋषि-मुनियों का जो निरभिमानी, जो निर्भय विचार है, वह बड़ा विचित्र रहा है, वह बड़ा अनूठा रहा है। मानव के ज्ञान और विज्ञान में एक तीव्रता होनी चाहिए, महानता का दर्शन होना चाहिए, जिससे वह ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ सकेगा।

मुनिवरों! देखो, महर्षि पिप्पलाद मुनि ने ये उत्तर दिया कि यह प्राण ही तो आहार करता है। प्राणसत्ता ही आपो के रूप में मानो देखो, पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिजों का निर्माण कर देती है। मानो देखो, वही निर्माण मानव किन्हीं न किन्हीं रूपों में भोगता रहता है, विचारता रहता है, सूक्ष्म बनाता रहता है। वह प्राण रूपी वस्तुओं को का वहीं ले करके उस ऋत् में उसको पिरो देता है। मेरे प्यारे देखो, जैसे स्वर्ण है, स्वर्ण का परमाणु बन गया है, परमाणु बन करके नाना रूपों में परिणत हो जाता है और फिर उसी परमाणु के रूप में प्रवेश हो जाता हैं। कोई वस्तु न कहीं जाती है और न कहीं से आती है, मानो यह एक ऐसा क्रियाकलाप बना हुआ है कि अपनी-अपनी क्रियाओं में अणु, परमाणु रत्त रह करके अपने रूपों में प्रवेश कर जाते हैं। अपने रूप में बन करके बेटा! वह आध्यात्मिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान के रूप में प्रवेश करके, बेटा! वह योगी बन करके, वह योग में अपने में प्रयोग कर लेता है। राजा के यहाँ वैज्ञानिक, उसी वस्तु में विज्ञान में रत्त हो जाते हैं। उन्हीं का यन्त्र बना करके, उन्हीं तरंगों का, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में गमन करने लगते हैं। तो मानो देखो, यह प्राण, अपने में मानो अनूठा है, यही आहार करता है, यही त्यागता है, यही मानव को अकृत बना देता है। तो विचार पिप्पलाद यह कह करके मौन हो गए द्वितीय उन्होंने कहा कि महाराज यह सृष्टि का चक्र बड़ा विचित्र है।

मेरे प्यारे! उन्होंने दस प्राणो की विवेचना की। मेरे पुत्रों! एक-एक प्राण की विवेचना, में विशेषता में तो जाना नहीं चाहूंगा। आज का विचार हमें क्या कह रहा है आज का वाक् हमें क्या प्रेरणा दे रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना और उसके ज्ञान को जानते हुए, अपने में महान बनते चले जाएं। मेरे पुत्रो! ऋषि मुनि सब मौन हो गए, तो पिप्पलाद ने उन्हें यह उपदेश दिया, कि ऋत् में मन और सत् में प्राण है। यह उन्होंने अपने वाक्यों में सिद्ध किया इसीलिए मुनिवरों! सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान जितना भी साधक वर्ग हुआ है, जितना भी साधक हुआ है वह सब अपने जीवन का तारतम्य बनाता है ईश्वर का, परमात्मा के मिलन करने का एक ही रूप बनाता है क्योंकि उन दोनों का विभाजन हो गया है। ऋत् का विभाजन हो गया है, सत् का विभाजन हो गया है। उस विभक्त क्रिया को एक सूत्र में लाना चाहता है साधक। वह कैसे लाता है? वह प्राण को ऋत् में पिरो देता है और ऋत् को सत् में पिरो करके उन दोनों का समन्वय हो करके एक पिण्ड बन जाता है, एक धारा बन जाती है, मानो एक तारतम्य बन जाता है, एक माला बन जाती है और उस माला को धारण करके बेटा! साधक उस ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

ये है बेटा आज का हमारा वाक् बेटा! आज के वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः क्या आज मं, तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूं ये तो विचारों का मुनिवरों! देखो, वन है, इस वन को लेता हुआ बेटा!

मैं तुम्हे गम्भीरता में तुम्हें ले जाना नही चाहता हूं। केवल विचार यह कि हम, परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस संसार से पार हो जायें बेटा! वेद का ऋषि, अपना उदगार देता हुआ, अपने विचार व्यक्त करता हुआ इस संसार सागर से पार होने की कल्पना करता है। महानता में जाने की कल्पना करता है और यह चाहता है कि मेरे अन्तर्हृदय में शान्ति आ जाए, मैं मृत्युंजय बन जाऊं, मानो मैं अन्धकार में न रहूँ, प्रकाश में चला जाऊं। तो मानव को प्रभु के राष्ट्र में जाने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। आज का विचार, अब समाप्त होने जा रहा है, आज के विचारों का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस संसार से पार हो जाएं। कल मुझे समय मिलेगा तो मेरे प्यारे महानन्द जी, अपने विचारों को व्यक्त करने में तत्पर रहते हैं कई समय जिनकी धीमी-धीमी प्रेरणा आती रहती है, कल उनका विचार व्यक्त किया जा सकेगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन। ओ३म् देवाः लाक्षागृह, बरनावा ०४-०३-१९८७

७ स्थूल और सूक्ष्म शरीर ३०-०७-१९८७

जीते रहो, देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा पुरोहित है, मानो वही हमारा वरणीय देव है। वह हमारा पुरोहित है, हम उसे अपना पुरोहित स्वीकार करते हैं। तो हमारे हृदयों में एक प्रकाश उत्पन्न होता है, क्या वह हमारा वरणीय देव पुरोहित हैं, वही वरणीय देव हैं जो भी मानव उसे अपना वरूण बना लेता है अथवा उसे वर लेता है, वह प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसके आनन्दमयी स्रोत की चर्चा कर रहे है।

हमारे वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार का ज्ञान और विज्ञान प्रायः हमारे यहां आता रहता है। परम्परागतों से ही, मानव ज्ञान और विज्ञान की ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ता रहा है। क्योंकि ये तो मानव का स्वाभाविक गुण कहलाया गया है। क्या वह अपने प्यारे प्रभु-सखा को जानना चाहता है। जैसे हमारे यहाँ वेदों का गान जब मानव स्वर और व्यंजनों के सहित, जब वेदों का गान गाना प्रारम्भ करता हैं। तो वह हृदय से गाता हैं। और जब हृदय से गान गाता है, कोई हृदय वाला प्राणी ऐसा नहीं है, जो अपने सखा की प्रसन्नता, उसकी महानता को न श्रवण करने वाला हो। बेटा! मानव सामगान गाता है तो ऐसे स्वरों से साम गान गाता है, कि हिंसक प्राणी भी उस गान को श्रवण करने के लिए तत्पर हो जाता है। तो प्राणी मात्र इस ध्वनि को श्रवण करके मौन हो जाता हैं। जब यह विचार आता है कि गान विद्या में गान का गाना ही हमारे लिए, उस प्रभु के समीप जाना है। क्योंकि जो मानव गान गाना जानता है, वह मानव स्वर सहित अपने को पंचीकरण में ले जाता है, और वह जो पंचीकरण हो रहा हैं॰ वह मानो देखो, पंचवृत्तियों में रत्त रहता है। तो हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार का गान गाया जाता है॰ जैसे जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त और अनुदात्त में गाता रहता है।

तो मेरे पुत्रों! आज मैं विशेष गान के सम्बन्ध में या स्वर और व्यंजनों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही दूंगा, केवल विचार यह कि मानव को जब प्रभु का गान गाना चाहिए, तो अपने हृदय से गाना चाहिए। क्योंकि परमपिता परमात्मा का जो हृदय और मानव का जो हृदय, दोनों का जब समावेश हो जाता है, अथवा दोनों का मिलन हो जाता है, तो इससे आगे संसार में कोई प्रसंग भी नहीं रहता, शेष नहीं रहता। वे परमपिता परमात्मा के ही, मानो हृदय से हृदय अगम्य ज्योति को प्राप्त हो जाता है।

तो मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेदमन्त्र, परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार करने के लिए, उद्घोष कर रहा है कि हे मानव! तू परमपिता को अपना पुरोहित स्वीकार कर, क्योंकि वह वरणीय है, और उसको वरना ही हमारा कर्त्तव्य है। जब यज्ञशाला में यज्ञमान याग करता है, तो अपना वह वरण बनाता है, उसे वरता है, मानो वरने के पश्चात उसको अग्नि स्वरूप में वरता है। हे अग्ने! तू गार्हपथ्य ही नहीं, तू मानो देखो, वैश्वानर नाम की अग्नि बन करके हमारा कल्याण करती है। तू विश्व को प्रकाशित करने वाली है, तू मानो देखो, द्यौ में रमण करने वाली है, और द्यौ से तेरी ऊर्ज्वा, तेरे प्रकाश को ले करके, सूर्य प्रकाशित हो जाता है। वह सूर्य प्रकाश देने वाला है। हमारे वैदिक साहित्य में बेटा! उसे भास्कर कहा है। वह भासता रहता है, मग्न रहता हैं। वैदिक साहित्य में बेटा! उसे आदित्य भी कहा है। वह आदित्य जैसे ब्रह्मचारी आदित्य ब्रह्म में रमण करता है इसी प्रकार वह द्यौ लोक में रमण करता हुआ, मानो देखो, वह प्रकाश देता रहता है। हे अग्नि! तू वैश्नावर नाम की अग्नि बन करके, हमें प्रकाश में ले चल और हमें अन्धकार हमारे समीप न आएं क्योंकि यदि अन्धकार आ गया तो हमारे जीवन का

जो अमूल्य रहस्य है, वह समाप्त हो जाएगा। तो मेरे प्यारे! आज हम उस परमपिता परमात्मा को अपना उपास्य देव स्वीकार करते हुए सूर्य नाना प्रकार की ऊर्ज्वा से मानव को प्रकाशमान बनाता है। मेरे प्यारे! वह तेजोमयी बनाने वाला है। नाना प्रकार की वनस्पतियों को परिपक्व बनाता है। पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खनिज पदार्थो को वह प्रकाश देता है, तथा उन्हें परिपक्व बनाता है। मानो देखो, विज्ञानवेत्ता उससे वैज्ञानिक बन जाते हैं।

स्वाहा से वायुमण्डल का शोधन

तो आओ, मेरे पुत्रों! मैं विशेष विवेचना न करता हुआ केवल बेटा! परमपिता परमात्मा हमारा वरणीय है। हम जब उसे वर लेते हैं तो उसी को प्राप्त हो जाते हैं जैसे माता का पुत्र मानो क्षुधा से पीड़ित हो रहा है, और क्षुधा से पीड़ित होता हुआ माता उसे लोरियों से आलिंगन कर लेती हैं। तो बेटा! बाल्य अपनी क्षुधा से मानो तृप्त होकर आनन्दमयी लोरियों का पान करता हुआ वह माता का पुत्र माता को ही प्राप्त होता रहता है। मेरे पुत्रों! देखो, माता का ममतव पुत्र से होता है। माता का जितना भी संसार का व्यापार है, वह माता मानो देखो, अपने पुत्र के प्रति अपने हृदय की वृत्तियों में प्राप्त करा देती है।

तो आओ, मेरे पुत्रों! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, उसी विद्यालय में ले जाना चाहता हूँ, जिस विद्यालय बेटा! में ब्रह्मचारी और आचार्यजन बेटा! अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके मानो वह नाना नाना प्रकार के प्रश्नों में रत्त रहते। और उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्नों में यह पाया जैसे इससे पूर्व काल में यह प्रगट करा रहे थे, क्या मानव को साधना में परिणत हो जाना चाहिए। और वह साधना क्या है? कि अपने को समर्पित करने का नाम साधना है। प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बना करके, जैसे यज्ञमान अपने नाना प्रकार के द्रव्यों को एकत्रित करके जिसमें सुगन्धित, पौष्टिक, रोगनाशक जितने भी साकल्य होते हैं, उनको एकत्रित करके मेरे प्यारे! देखो, उन्हें अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणत कर देता है। अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है। यज्ञमान जब अग्नि के मुखारबिन्दु में आहुति देने वाला है तो सर्वत्र देवता उससे तृप्त रहते हैं। तो इसी प्रकार मेरे पुत्रों! देखो, मानव जब अपने जीवन में प्रत्येक इन्द्रियों का आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता जब बेटा! अपनी प्रत्येक इन्द्रियों के साकल्य अपनी इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बना करके, वह हृदय रूपी यज्ञशाला में, जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है, ज्ञान रूपी अग्नि है, उस अग्नि में वह स्वाहा कह रहा है, स्वाहा इसीलिए कह रहा है क्योंकि उसकी ध्वनि वह अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके, वह द्यौ लोक में स्थिर हो जाती है। वहाँ स्थिर हो करके वह स्वाहा शब्द जो वेदमन्त्रों से गुथा हुआ है, साकल्य से गुथा हुआ है, वह मुनिवरों! देखो, वायुमण्डल का शोधन करता चला जाता है।

आज बेटा! आज मैं विशेष विवेचना न देता हुआ आज मैं तुम्हें उन वाक्यों में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ब्रह्मचारीजन आचार्यों के समीप विद्यमान हो करके नाना प्रकार की वह चर्चाएं करते रहते थे। मेरे पुत्रों! देखो, एक ब्रह्मचारी यज्ञमान बना, एक ब्रह्मचारी उद्गाता बना, एक ब्रह्मचारी उसी में अध्वर्यु बनकर, अपने आचार्य से यह प्रश्नकर रहे थे कि हे प्रभु! यज्ञमान याग करना चाहता है याचक बन करके जानने चाहते हैं कितने होताओं से यज्ञमान याग करनेवाला बने। मेरे पुत्रों! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम कहाँ विद्यमान हो? ब्रह्मचारियों ने कहा कि-प्रभु! हम इस विद्यालय में विद्यमान हैं, जहाँ मानवीयता की चर्चाएं और महानता का प्रकाश होता रहता है। उसी महानता की अमूल्य अमृतमयी ज्योति का पान करते हुए, हम यह प्रश्न कर रहे हैं जिससे हम भी अमृत बन जाएं, जिससे हम भी याज्ञिक बन करके, याग के मानो हम देवताओं के समीप जोने के लिए तत्पर हो जाएं। मेरे पुत्रों! देखो, ब्रह्मचारियों ने ऋषि से जब यह कहा तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। ऋषि ने कहा कि आगे तुम क्या जानना चाहते हो? मैंने तुम्हें कहा है कि चौबीस होता होने चाहिएं और चौबीस

होताओं के द्वारा याग होना चाहिए। परन्तु उसमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चतुष अन्तःकरण कहलाता हैं। मानो देखो, उसमें पांच कर्मेन्द्रियाँ है, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ है, पांच प्राण हैं और पांच उपप्राण कहलाते हैं। मानो देखो, इन्द्रियों के ऊपर हमें संयम करते हुए, अपने को परमात्मा को समर्पित कर देना है। हमें याज्ञिक बनना है। याग का अभिप्राय यह है कि हम सबसे प्रथम यज्ञशाला के रूप को जान लें कि यज्ञशाला में क्या-क्या वस्तु हैं, क्या-क्या इसकी नियमावली है, ऊपर हम अपने को समर्पित कर सकें।

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार जब वाक्य प्रकट कराया, तो ब्रह्मचारियों ने कहा कि-प्रभु! आपने हमे मानो देखो, ये जब वर्णन कराया इससे पूर्व हम यह प्रश्न करना चाहते हैं कि यज्ञमान याग करना चाहता है, कितने होता होने चाहिएं। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि ने कहा कि याग में सत्रह होता होने चाहिए। चौबीस से सत्रह में आ जाना ब्रह्मचारियों के लिए बड़ा आश्चर्य है कि यह सत्रह होता कौन से होते हैं? ऋषि ने कहा कि इसमें दस प्राण होते हैं, और प्रकृति के, पंच महाभूतों की वासनाए होती हैं, और मन, बुद्धि इन सत्रह तत्त्वों का यह मानव शरीर कहलाता है। जिसे हमारे यहाँ कृतं यज्ञशाला भी कहा जाता है। इतने होता यज्ञशाला में विद्यमान होने चाहिएं। जिसे हम जान सकें मेरे पुत्रों! ऋषि ने कहा कि चौबीस तत्त्व का यह स्थूल शरीर माना गया है। मानो सत्रह तत्त्व का हमारा सूक्ष्म शरीर की अव्ययता का वर्णन किया गया है। ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि ये सत्रह होताओ द्वारा हम याग करने वाले बनें। ब्रह्मणे स्वाहाः ऐसा उच्चारण करते हुए विष्णु की याचना करते हुए, ब्रह्म की आराधना करते हुए, ब्रह्मः, पुनरूक्तियों में आहुति देने वाले बनें। जिससे हमारा जीवन एक महानता की ज्योति में परिणत हो जाएं। हम अपने में इतनी ऊर्ध्वा में क्रियाकलाप करने वाले बनें जिन क्रियाकलापों के द्वारा हमारे जीवन की प्रतिभा एक महानता में परिणत हो जाएं।

मन

मेरे पुत्रों! देखो, उसमें मन बुद्धि रह जाते हैं मन बुद्धि ये मन क्या है? देखो, मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु होता है। आज यदि कोई मानव मन को जानना चाहता है और मन को हम कही लगाना चाहते है तो आहार पवित्र होना चाहिए, क्योंकि आहार में जब तक पवित्रता नही आती क्योंकि आहार ही मन को पवित्र बनाता है। यही देवताओं की सभा में वृख बनता है। यही मानो देखो, जब मनस्तव ऊंचा बनता है, तो यह देवतव को प्राप्त करता हुआ, संसार को देवता बना देता है। देवतव बना देता है तो इसीलिए हमारा अन्न पवित्र होना चाहिए। देखो, जब अन्न पवित्र होता है, तो अन्न के पवित्र होने से मन की धाराओं का जन्म होता है। मन की धाराओं का जन्म हो करके क्योंकि वह प्रकृति का जब मानव ने मन्थन प्रारम्भ किया तो बेटा! प्रकृति के नाना अव्यवयों को मुनिवरों! मन्थन करते-करते, उस ऊर्ध्वा में चले गएं जहाँ उन्होंने मन को सबसे सूक्ष्म तन्तु माना है। यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु है। यह ऊर्ध्वा में कैसे जाता है? जब तक हम प्रकृति के ऊर्ध्वामयी पदार्थों को विशुद्ध रूप से ग्रहण नहीं करेंगे तब तक मन की पवित्रता या मन को ऊर्ध्वा बनाना यह मानव के लिए असम्भव हो जाता है।

मेरे पुत्रों! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में ऋषि-मुनियों बेटा! देखो, शिलस्थ अन्न को ग्रहण करते हुए, शिलस्थ अन्न को ग्रहण करते हुए और भी नाना प्रकार की आभा में रत्त होने लगे, मेरे पुत्रों! देखो, उस आभा में ले गए रहते। अन्न ऐसा होना चाहिए जिस पर किसी का अधिकार न हो। और वह जब निराधिकार अन्न को जब ग्रहण किया जाता है तो मुनिवरों! देखो, मन अवश्य पवित्र बन जाता है। इसीलिए हमारा यह विचार है, ऋषि-मुनियों की यह साधना रही है, कि उन्होंने बेटा! देखो, भयंकर वनों में जाकर पत्र और पुष्पों का आहार करते हुए, मेरे पुत्रों! देखो, उस पर किसी का अधिकार नही, जिस पर किसी का अधिकार नहीं, उन आहारों को ग्रहण करते हुए अपने मन को पवित्र बनाया है। मुझे स्मरण आता रहता है महाराजा अश्वपति का

जीवन स्मरण आता रहता है। महाराजा अश्वपति स्वयं कृषि में रत्त होते। कृषि में जो अन्न उत्पन्न होता था उसे पान करना और राष्ट्र का पालन करना, समाज को कर्त्तव्यवाद में लाने के लिए तत्पर रहते थे। मेरे पुत्रों! देखो, जो राष्ट्र दूसरों के श्रृंगार या दूसरों के द्रव्यों का वैभव करने वाला हो, वह ऐश्वर्य में परिणत हो जाएगा, मेरे पुत्रों! वह अपनी प्रजा को ऊंचा नहीं बना सकता। महापुरुष जैसे साधक को वह अन्न ग्रहण करना है जिस पर किसी का अधिकार न हो। वही साधक ऊंचा बनता है।

महाराजा नहूष

महाराजा नयूष बेटा! एक समय अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज दे करके, उन्होंने यह विचारा कि अब मुझे भंयकर वनों में जाना है, तप करना है, मुझे तपस्वी बनना है, साधना में परिणत होना हैं। मेरे पुत्रों! देखो, पुत्र ने बड़ी हर्ष ध्वनि करते हुए कहा कि हे भगवन! यह तो हमारा बड़ा सौभाग्य है, हम बड़े सौभाग्यशाली हैं कि आप मानो देखो, तप करने जा रहे हैं, यह हमारे राष्ट्र का सौभाग्य है। मेरे पुत्रों! जब उन्होंने ऐसा कहा तो महाराजा नयूष ने वहाँ से गमन किया और भयंकर वनों में आ गए। वनों में बेटा! महापुरूषों से उनका मिलन होने लगा। महापुरुषों से एक ही वाक् पाया उन्होंने पाया कि भयंकर वनों के कोई महापुरूष वायु का सेवन कर रहा है, कोई उस अन्न को ग्रहण कर रहा है जिसे हम शिलस्थ अन्न कहते हैं। कोई मानो देखो, उस अन्न को ग्रहण कर रहा जो स्वयं पुरूषार्थ करके उस अन्न का पान कर रहा है। महाराजा नयूष ने भी इसी प्रकार अपने को तपाया और तपाने के पश्चात मुनिवरों! देखो, बारह-बारह वर्ष के नाना अनुष्ठान किए। अनुष्ठानों का अभिप्राय यह है कि जिस आभा में हम रत्त हो जाएं, उसको हम अच्छी प्रकार मानो तपों में ले जाएं, अपने मन को विशुद्ध बनाते हुए, मेरे पुत्रों! देखो, मनस्त्व की आभा में रत्त हो जाएं। आओ, मेरे पुत्रों! देखो, मैं तुम्हें विशेष विवेचना तो देने नही आया, आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ, कि प्रत्येक मानव को अपनी मानवीयता की आभा में रत्त होना है, मेरे पुत्रों! यह जो मनस्त्व है, इस मनस्त्व को ऊंचा बनाना है।

मुनि

महाराजा नयूष मुनिवरों! देखो, एक सौ पांच वर्ष तक भयंकर वनों में बेटा! अनुष्ठान करते हुए, अपने जीवन को व्यतीत करते रहे थे। कुछ वायु का सेवन करते, कुछ पत्र-पुष्प का सेवन करते, मेरे प्यारे! कुछ अन्नादि का पान करते मुनिवरों! वह राजा से ऋषि की कोटि को प्राप्त हो गए, मुनि बन गये। एक ऋषि होता हैं, एक मुनि होता है। मुनि उसे कहते हैं? जैसे माता के आंगन में एक बाल्य क्रीड़ा कर रहा है, परन्तु उसे संसार का भान नहीं है। मेरे पुत्रों! देखा माता की लोरियों में क्रीड़ा कर रहा हैं न उसे माता के अंग प्रत्यंगो का ज्ञान है, केवल वह मुनि कोटि को प्राप्त हो रहा है। तो इसी प्रकार महाराजा नयूष मुनि कोटि को प्राप्त हो गए। भयंकर वनों में जाकर उन्होंने अपने जीवन को साधक के एक सौ पांच वर्ष तक उन्होंने मुनिवरों! रूप में अनुष्ठानित बनाते हुए महान बनाने का प्रयास किया।

तो आओ मेरे पुत्रों! में विशेष विवेचना न देता हुआ, आज मैं तुम्हे ये उच्चारण कर रहा हूं, कि याज्ञिक बनने के नाते हमें याग करता हैं तो याग में चौबीस होता हैं। मेरे पुत्रों! मनस्तव को जाना बुद्धि को जाना, मन, बुद्धि का वर्णन करते हुए कहा था कि बुद्धि मेधावी कहलाती है, ऋतम्भरा, प्रज्ञा कहलाती हैं। बुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गएं हैं, परन्तु देखो, यह जो पंच महाभूतो की वासना में गुरूतव है, तरलतव है, तेजोमयी है, ये तीन प्रकार के परमाणु कहलाते हैं। चाहे वह परमाणु यौगिक क्षेत्र में हो, चाहे यह वैज्ञानिक क्षेत्र में हों चाहे आध्यात्मिकवादी के द्वारा हों, चाहे वह भौतिक विज्ञान के द्वारा हों, मेरे पुत्रों! देखो, इन्ही तीन प्रकार के परमाणुओं से मानव अपने जीवन में गति कर रहा है। मुनिवरों! देखो, साधक या योगी जब तीन प्रकार के परमाणुओं को

जान लेता है तो जितने परमाणु मानो गुरूतव वाले परमाणु होते हैं, और गुरूतव वाले जितने लोक-लोकान्तर हैं, उन सबकी जानकारी उसे हो जाती है। तरलतव वाली जो परमाणु है उसे जब जान लेता है, उसके आंगन में प्रवेश कर जाता है तो जितने भी तरलतव वाले लोक-लोकान्तर हैं, उनमें बेटा! देखो, वह विचरण करते लगता है। इसी प्रकार जितने तेजामयी अग्नि प्रधान वाले लोक लोकान्तर हैं, तेजोमयी को जान करके, परमाणु को जान करके अपने को तेजस्वी बनाता हुआ जितने भी तेजोमयी मण्डल हैं, लोक-लोकान्तर हैं उनमें वह गति करने लगता है। इस प्रकार वह इस संसार को, इस परमात्मा के रचाए हुए ब्रह्माण्ड को वह अच्छी प्रकार जान लेता है और जानता हुआ मुनिवरों! अपने को ही अपने में मानो दृष्टिपात करते लगता है।

मेरे पुत्रों! देखो, यह विचित्र साधना है, यह विचित्र आभा है जिससे ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता है। पिंड को ब्रह्माण्ड में योगी दृष्टिपात करने लगता है। मेरे पुत्रों! यह तीन प्रकार के परमाणु हैं। वायु इन परमाणुओं को गति देता है, और अन्तरिक्ष में बेटा! देखो, वह समाहित हो जाते हैं, उनमें गतिवान होते हैं। मेरे पुत्रों! देखो, यह पंचमहावृत्तियां कहलाती हैं। मानो देखो, मेरे पुत्रों! देखो, यज्ञमान जब सत्रह होताओं के द्वारा याग करता है, तो यह पंचवृत्तियां वासना के रूप में विद्यमान होती हैं। इसके पश्चात यह दस प्राण कहलाते हैं, मेरे पुत्रों! देखो, प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, देवदत्त, धन्नंजय, कूर्म, कृकल मुनिवरों! देखो, यह दस प्राण होते हैं। इन दसों प्राणों में ये सर्वत्र ब्रह्माण्ड समाहित हो रहा है। तो इसीलिए हमारे आचार्यों की यह देन रही है क्या उन्होंने पिण्ड को ब्राह्मण्ड में और ब्रह्माण्ड को पिण्ड में दृष्टिपात किया है। मेरे पुत्रों! देखो, जितना भी यह संसार हमें दृष्टिपात आ रहा हैं, चाहे वह लोक-लोकान्तरों की माला हैं, चाहे वह मुनिवरों! देखो, पदार्थों की माला हैं उस माला का अप्रतं मानो देखो, उस माला में जो सूत्र है वह प्रणव कहलाया गया हैं वह ब्रह्म ही कहलाया गया है। परन्तु देखो, ये जो जब वह एक ही प्राण के दस भाग माने गएं हैं, इनका जब योगेश्वर अपने में मानो देखो, साकल्य बना लेता हैं, एकोकीकरण कर लेता है, एक दूसरें में समाहित हो जाता हैं, तो बेटा! यह पिण्ड ब्रह्माण्ड में समाहित हो करके, और यह पिण्ड ब्रह्माण्ड में समाहित हो करके तो वह पिण्ड ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन करने लगता हैं।

आओ, मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नही जा रहा हूँ, यह मुनिवरों! देखो, ये सत्रह होताओं वाला जो याग हैं बेटा! वह स्थूल है वह सूक्ष्म कहलाता हैं, यह सूक्ष्म हमारे यहाँ शरीर वाला मेरे प्यारे! देखो, जैसे हमारे यहाँ इस आत्मा के तीन प्रकार के शरीर है, स्थूल, सूक्ष्म ये सूक्ष्म की विवेचना हैं बेटा! देखो, सूक्ष्म शरीर के द्वारा हम मानो अपना यातायात बना लेते हैं, मानो देखो, यातायाती बन जाते हैं, चित्त के मण्डल की चर्चाएं बेटा! इससे पूर्व काल में हो रही थी, मानो देखो, यह चित्त मण्डल में सूक्ष्म अपने में समाहित हो जाता हैं। मेरे पुत्रों! जब तक चित्त का मण्डल नही समाप्त होता, तब तक बेटा! सूक्ष्म शरीर वाले अवयों से आत्मा दूरी नही हो सकता। तो विचार आता रहता है, आज मैं बेटा! विशेष चर्चा न देता हुआ, तुम्हें यह उच्चारण करने जा रहा हूँ, क्या मुनिवरों! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, ये चर्चाएं विद्यालयों में, जब ब्रह्मचारियों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की गई, तो बेटा! ब्रह्मचारी अपने में आश्चर्य में चकित हो गए, उन्होंने कहा क्या हे तुम्हें प्रतीत हैं हे ब्रह्मचारियों! यही विचार महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के विद्यालय में होते रहते हैं, माता अरूणधति तपों की चर्चाएं कराती रहती हैं, मानो देखो, एक दूसरे में एक दूसरा जब समाहित होता हुआ, ये प्राणतव दृष्टिपात आता है, तो यह मानो देखो, ब्रह्म में समाहित होता हुआ दृष्टिपात होने लगता हैं। मेरे पुत्रों! मानव मौन हो जाता हैं और शान्त हो करके, उसको अपने में धारयामि बना लेता हैं। धारण कर लेता हैं।

तो आओ, मेरे पुत्रों! मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, विचार केवल यह कि आज हम बेटा! मनस्तव को जानते हुए, बेटा! यह मन कैसा विचित्र हैं महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, अपनी एक आख्यिका में एक वर्णन किया हैं

उन्होंने कहा है कि एक समय देवासुर संग्राम हो रहा था और देवासुर संग्राम बड़ा विशाल संग्राम हुआ, उस देवासुर संग्राम में मुनिवरों! देखो, एक समय देवताओं ने, दैत्यों को विजय कर लिया जब दैत्यों को विजय कर लिया, विजय करने के पश्चात देवताओं की सभा में जब आनन्दवत होने लगा तो देवताओं की सभा में बेटा! एक विसर्ग का जन्म हुआ, हमारे यहाँ वृख मानो देखो, वैदिक साहित्य में परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता हैं आता है वृख नाम मेरे पुत्रखें देखो, गऊ के बछड़े को भी कहा जाता हैं, वृख मन को भी कहा गया हैं। मेरे पुत्रों! देखो, प्रकरण के आधार पर यहाँ मन को मानो देखो, वृख माना गया है। मानो ब्रह्मे देवताओं ने बेटा! अपनी ध्वनि प्रदान कर दी, वह ध्वनित अपने में ध्वनित हो गया, मेरे पुत्रों! देखो, जैसे उस ध्वनि को श्रवण करता था वृख की वही देवता बनने लगा, जब यह संसार देवताओं का बनने लगा तो बेटा! देखो, वह दैत्यों को चिन्तित होने लगे। दैत्यां ने कहा कि यदि यह ध्वनि इसी प्रकार प्रसारित रही, तो मानो देखो, यह ब्रह्मणं वृत्ति देवाः यह देवताओं का बन जाएगा, हम दैत्य राजों का क्या बनेगा बेटा! शुम्भ निशुम्भ रक्त बीज यह तीनों दैत्य मेरे पुत्रों! महाराजा विरोचन के द्वारा पंहुचे। महाराजा विरोचन से प्रार्थना की कि महाराज! यहाँ तो देखो, देवताओं की सभा में देखो, एक वृख का जन्म हुआ है, और देखो, जो इसके मुखारबिन्दु से ध्वनि उत्पन्न होती हैं, जो भी इस ध्वनि को श्रवण कर लेता हैं। वही देवता बन जाता हैं। प्रभु अब हम दैत्यों का क्या बनेगा, उन्होंने कहा कृतं ब्रह्मा यह ध्वनि को छला जाएं, ध्वनि वाले को छला जाएं, मेरे पुत्रों! शुम्भ निशुम्भ रक्त बीज तीनों दैत्यों ने यह विचारा कि आज हम उसे छलेंगें मेरे पुत्रों! देखो, वह स्वार्थी तो है ही, मुनिवरों! देखो, मध्य रात्रि में जब इन तीनों ने आक्रमण किया तो वह छले गएं। मेरे पुत्रों! छलने से पूर्व उसे यह ज्ञान हो गया था कि तू दैत्यों के द्वारा छला जायेगा, उसने देवताओं की धरोहर को मुनिवरों! देखो, रेणुका को समर्पित कर दी, वह रेणुका में प्रवेश कर गई, मेरे पुत्रों! जब वृख को दैत्यों की सभा में लाया गया महाराजा विरोचन जब इसका मन्थन किया तो उसमें वह ध्वनि नही थी। जिससे यह संसार देवताओं का बन रहा था, उन्होंने कहा वह ध्वनि कहाँ चली गई, क्या वह तो रेणुका में चली गई हैं, रेणुका में समाहित हो गई हैं। मेरे पुत्रों! देखो, वह ब्रह्मणं व्रता अगला दिवस अगले दिवस उन्होंने अपना क्रियाकलाप बनाया, आज हम रेणुका को छलेंगें, मेरे पुत्रों! देखो, रेणुका को छलने का जब कर्म बनाया, रेणुका को यह ज्ञान हो गया था, आज तू दैत्यों के द्वारा छली जाएगी, मेरे पुत्रों! देखो, उसने देवताओं की धरोहर को मानो यज्ञ के दस पात्रों में समाहित कर दिया। मेरे पुत्रों! वह तो यज्ञ के दस पात्रों में समाहित हो गया, परन्तु देखो, जब दैत्यों ने मध्य रात्रि में उसे छला, तो महाराजा विरोचन के द्वारा लाया गया, महाराजा विरोचन ने उसका मन्थन किया, तो उसमें भी वह ध्वनि नही थी, उन्होंने कहा अरे, दैत्यराजों इसमें तो ध्वनि नही हैं। उन्होंने कहा महाराज! यह ध्वनि कहाँ चली गई, क्या वह ध्वनि तो यज्ञ के दस पात्रों में समाहित हो गई हैं। तुम यज्ञ के दस पात्रों में से उस ध्वनि को निकाल नही सकोगे, उसे निकास नही सकते। मेरे पुत्रों! जब उन्होंने यह कहा तो ब्रह्मणे बेटा! दैत्य मौन हो गएं, तो विचारा गया मुनिवरों! यह वृख क्या है? और रेणुका क्या है? दैत्य और देवता क्या हैं? मेरे पुत्रों! देखो, मानव जब इस संसार में आता हैं, तो संसार में आने जैसे संसार का मानो अपने संस्कार और बाह्य जगत सब सम्मिलत हो करके मानव जब जगत में आता है। तो इसमें देवासुर संग्राम प्रारम्भ हो जाता हैं। देवासुर संग्राम क्या किसी स्थली में देवप्रवृत्ति बलवती किसी काल में मानो दैत्य प्रवृत्ति बलवती हो जाती है, दैत्य और देवताओं का संग्राम होता रहता हैं। एक समय जब योगी अपनी साधना में परिपक्व हो जाता है, तो मेरे पुत्रों! वह साधना में परिपक्व हो करके वह देवतव को प्राप्त हो जाता हैं, और वह देवतव को प्राप्त हो करके देवताओं के मुखारबिन्दु से एक ध्वनि का जन्म होता हैं। जिसको बेटा! धर्म कहते हैं। जिसको धारयामि कहते हैं, जिसे हम धर्म कहते हैं। बेटा! जब वह उत्पन्न होता है, तो बेटा! वह मन हमारे यहाँ वृख नाम मन को कहा गया

हैं। क्योंकि मन में वह ध्वनि समाहित हो जाती हैं। अब जो उस मन की ध्वनि को श्रवण करता हैं, बेटा! वह देवता बन जाता हैं। अब दैत्यराज मानो काम, क्रोध, लोभ, इत्यादि तृष्णा मुनिवरों! देखो, रक्तबीज बन करके मुनिवरों! देखो, इस मन को छल लेते हैं, क्योंकि यह प्रकृति का तन्तु हैं, इसीलिए यह छला जाता हैं। जो दूसरों के आश्रित रहता है। बेटा! वह छला जाता हैं। मानो यह मन दूसरों के आश्रित रहता हैं यह तरंगों की आभाओं में निहित रहता हैं। यह छला जाता है क्योंकि इसका अपना कोई अस्तित्व नही रहता।

मेरे पुत्रों! जब यह छला गय दैत्यों के द्वारा तो मुनिवरों! रेणुका के समीप चला गया। रेणुका के द्वारा बेटा! वह ध्वनि प्रवेश हो गई, यह धर्म ध्वनि रेणुका में प्रवेश हो गई। अब बेटा! रेणुका को छला, क्योंकि रेणुका भी बुद्धि भी इसीलिए छली जाती हैं, क्योंकि यह भी दूसरों के आश्रित रहती हैं। मेरे पुत्रों! देखो, जो दूसरों के आश्रित रहता हैं मेरे पुत्रों! वह छला जाता हैं। मानो देखो, वह छलने में आता रहता हैं बारम्बार तो विचार आया, कि बुद्धि छली गई, बेटा! रेणुका हमारे वैदिक साहित्य में, रेणुका नाम बेटा! देखो, चन्द्रमा की कान्ति को भी रेणुका कहते हैं, और रेणुका नाम बुद्धि का आया हैं और रेणुका नाम मुनिवरों! रात्रि को भी कहते हैं रेणुका नाम बेटा! देखो, उत्पति का मूल बनता हैं। परिणाम यह क्या रेणुका मुनिवरों! देखो, जब वर्षा काल आता है तो बेटा! जल भी इस पृथ्वी का नाम भी बेटा! रेणुका कहा जाता हैं। तो मेरे पुत्रों! विचार यह कि रेणुका नाम यहाँ बुद्धि का हैं, जब यह ध्वनि, जब यह मन छला जाता हैं। तो बुद्धि में समाहित हो जाता है और यह बुद्धि ब्रह्मणो व्राता जब रेणुका मेरे पुत्रों! जब रेणुका छली गई तो यह ब्रह्मणं ब्रहे कृतां वाचन्नमं ध्वना बेटा! यह ध्वनि यज्ञ के दस पात्रों में समाहित हो गई। बेटा! यज्ञ के दस पात्र क्या हैं? मुनिवरों! यज्ञ के दस पात्र मुनिवरों! देखो, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ है। और पांच कर्मेन्द्रियाँ कहलाई गई है। मेरे पुत्रों! जिनमें धर्म समाहित रहता हैं। तो इसीलिए दैत्य एक-एक इन्द्रिय से धर्म को निकास नही सकते। मेरे पुत्रों! धर्म क्या है? जब यह मुनिवरों! देखो, नेत्रों से दृष्टिपात करता हैं, तो यह सुदृष्टिपात करता हैं। यह उसका धर्म हैं। मुनिवरों! प्रत्येक इन्द्रियों का जो अपना-अपना विषय है, उसको उसी रूप में दृष्टिपात करता है, तो वह धर्म उसी धर्म का साकल्य बना करके योगीजन मेरे पुत्रों! ज्ञानरूपी अग्नि में उसे स्वाहाः कहते हैं। उस साकल्य को स्वाहा कह करके, उससे बेटा! विवेक जागरूक हो जाता हैं। विवेक जब जागरूक हो जाता हैं, तो मुनिवरों! देखो, उसको संसार को वह व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश कर जाता हैं। देखो, व्यष्टि यह संसार हैं, समष्टि उस परमपिता परमात्मा का जगत हैं। जहाँ चेतना रहती हैं, जहाँ ज्ञान ही ज्ञान रहता हैं, जहाँ प्रकाश ही प्रकाश रहता हैं, और जहाँ प्रकाश रहता हैं। बेटा! मेरे पुत्रों! देखो, प्रभु का राष्ट्र कैसा विचित्र है, वहाँ प्रकाश रहता है। और जहाँ प्रकाश रहता हैं, वहाँ मानो देखो, आलस्य और प्रमाद नही होता, और आलस्य प्रमाद नही होता, तो जहाँ प्रकाश रहता है। वहाँ रात्रि नही होती बेटा! जहाँ रात्रि नही होती, जहाँ आलस्य और प्रमाद नही होता, मेरे पुत्रों! वहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता हैं। तो बेटा! वहाँ मृत्यु भी नही हुआ करती। मेरे पुत्रों! देखो, मृत्यु से मानव पार हो जाता हैं। तो विचार-विनिमय क्या वेद के आचार्य ने यह आख्यिका प्रगट करते हुए कहा, क्या हे ब्रह्मचारियों! याज्ञवल्क्य तुम मेरे इस मानो देखो, वाक् को स्मरण कर रहे हो और मैंने यह अपनी पोथी में देखो, अपने विचार व्यक्त किए हैं। आज तुम उन विचारों के साथ मे मानो विचारों के यज्ञ के दस पात्रों को जान करके मानो देखो, उसको व्यष्टि से समष्टि में तुम्हें प्रवेश होना हैं। समष्टि से व्यष्टि में नही जाना हैं। तो इसीलिए देखो, जब यह समष्टि में चला जाता है, तो पंच वासनाएं और दस प्राणों को एक दूसरे में समाहित करके इस ब्राह्माण्ड को मानो देखो, दृष्टिपात करने लगता हैं। योगेश्वर तो विचार आता रहता हैं, हे ब्रह्मचारी! सम्भवं लोकां वाचन्नं ब्रह्मा लोकां देवाः यह जो ब्रह्माण्ड हैं, इसमें वह खिलवाड़ करने लगता हैं। तो विचार आता हैं बेटा! क्या यह सूक्ष्म सा अव्वय कहलाया गया हैं, सूक्ष्म शरीर की प्रतिभा कहलाई गई हैं, मेरे पुत्रों! देखो, वेद का आचार्य कहता हैं, वेद का

ऋषि कहता हैं, क्या मानो देखो, सत्रह होताओं के द्वारा जब याज्ञिक याग करता हैं। नियमबद्ध हो करके तो मेरे पुत्रों! देखो, एक दूसरे में समावेश करता रहता हैं, विचारता रहता हैं, मेरे पुत्रों! देखो, सूक्ष्म शरीर को जान करके यह कारण लिंग में प्रवेश हो जाता हैं। जहाँ केवल ज्ञान और प्रयत्न दोनो ही प्रतिभा रहती हैं, मानो देखो, आत्मा का स्वाभाविक गुण हमारे गुणाधानं में दृष्टिपात आता रहता हैं। तो आज बेटा! मैं तुम्हें योग की चर्चाएं तो नही केवल मैं साधको की चर्चा प्रगट कर रहा हूँ। क्या साधक साधना में परिणत होने से पूर्व, अपने में मन्थन करना होगा। मेरे पुत्रों! देखो, यह दो प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, आदि ऋषियों ने स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि दो प्रकार का विज्ञान यह आध्यात्मिक विज्ञान कहलाता हैं। जिस आध्यात्मिक आत्मीय उड़ान उड़ना मनस्तव को जानना इस ब्रह्माण्ड को अपने अन्तर्जगत में दृष्टिपात करना दो प्रकार का जगत हैं। मानव के समीप बेटा! एक बाह्य जगत हैं, जो बाह्य जगत में दृष्टिपात करता रहता हैं, उस बाह्य जगत को दृष्टिपात करके जो आन्तरिक जगत में दृष्टिपात करने लगता हैं, बेटा! आन्तरिक जगत में आ करके वह देखो, अपने मे समाहित होता हुआ, अपने में दृष्टिपात करके बेटा! ब्रह्माण्ड को अपने पिण्ड में दृष्टिपात करने लगता हैं। तो यह हमारे यहाँ एक दूसरे की समावेशता मानी गई है, तो आओ, मेरे पुत्रों! मैं विशेष चर्चा न प्रगट करता हुआ, आज का विचार केवल यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम मुनिवरों! देखो, इस संसार सागर से पार हो जाएं। क्योंकि प्रत्येक मानव की यही इच्छा होती हैं, क्या मैं संसार सागर से पार हो जाऊं, जितना भी मानव संसार के पदार्थों को एकत्रित करता रहता हैं। मानो देखो, यह लक्ष्मी या संसार में या बाह्य जगत में जो दृष्टिपात करता है, अपने सुखद के लिए, मेरे पुत्रों! देखो, सुखद वहाँ प्राप्त होता हैं। जहाँ इस ब्रह्माण्ड को बाह्य जगत में न दृष्टिपात करने वाला जगत को आनतरिक जगत में दृष्टिपात करके अन्त में बेटा! मौन हो जाता हैं। ऋतम्भरावी बन जाता हैं। प्रज्ञावी बन जाता हैं। मेरे पुत्रों! देखो, वह मौन हो करके, अपने में ही अपनेपन को दृष्टिपात करता रहे। यह है बेटा! आज का वाक् आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम बेटा! इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह आज का हमारा वाक् है यह ऋषि-मुनियों का विचार हैं बेटा! मन्थन करने के पश्चात अपने संक्षिप्त विचार दिए हैं, आज का वाक् अब यह समाप्त होने जा रहा हैं, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और अपने में यह मानो देखो, यज्ञमयी सम्मिलत होते हुए याग का अभिप्रायः यह कि जिसमें आध्यात्मिक याग हम सदैव अपने में ही अपने पन का दृष्टिपात करते रहें। परन्तु परमपिता परमात्मा को वरणीय बनायें। वही हमारा वरने योग्य हैं, और जो उसे वर लेता हैं, बेटा! वह उसी को प्राप्त हो जाता हैं। यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन। आर्यसमाज, अमृतसर ३०-०७-१९८७

८ यज्ञ के ग्यारह होता ३१-०७-१९८७

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, आज के वेद के पठन-पाठन में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन आ रहा था। समव्रः सम्भव लोकाम् वायु समवर्तक स्वतातः, हमारा वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गा रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गाता रहता है, इसी प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा के गुणों का गुणवादन कर रहा है, अथवा उसका गान गा रहा है। इसीलिए हम परमपिता परमात्मा का गान गाते रहें। उसे ग्रहण करने में हम इतने तत्पर हो जाएं, जिससे हमारा बाह्य जगत हमसे दूरी हो सके और हम आन्तरिक जगत में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते रहें। और उसी में मौन हो करके उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा में हम ओतप्रोत होते चले जाएं।

बेटा! आज का हमारा वेदमन्त्र माता वसुन्धरा की याचना कर रहा था, माता वसुन्धरा के गुणों का गुणवादन कर रहा था। वैदिक साहित्य में वसुन्धरा के भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की विवेचना होती रहती है। हमारे यहाँ माता का नाम वसुन्धरा कहा जाता है, जिसके गर्भस्थल में हम सभी वशीभूत हो रहे हैं, जिसमें हम रत्त हो रहे हैं, उस माता का नाम वसुन्धरा कहा जाता है। वसुन्धरा नाम इस पृथ्वी का भी माना गया है। जब हम जैसे शिशु माता के गर्भ से पृथक होते हैं तो पृथ्वी माता की गोद में आ जाते हैं। यह नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ प्रदान करती रहती है। उसी में प्रत्येक प्राणी अपने को बसा हुआ स्वीकार करता है। विचार यह कि वसुन्धरा के गर्भस्थल में हम सब वशीभूत हैं। मानव जब यथार्थ जिज्ञासु कन करके पृथ्वी माता के गर्भ से पृथक होता है तो वह जो चैतन्य देव है, जो संसार का नियन्ता रचियता है। मानव उसकी गोद में आ जाता है, और वह अपने को यह स्वीकार करता है कि मैं परमपिता परमात्मा की आनन्दमयी लोरियों का पान कर रहा हूँ। उसी में वह रत्त हो जाता है। हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों में अथवा उसके अर्थो में माता वसुन्धरा का अभिप्राय यह कि जिसके गर्भ में हस सब वशीभूत हो रहे हैं। बेटा! आज का हमारा वेदमन्त्र हमें उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाने के लिए बाध्य कर रहा है। मानव जब स्वरों से गान गाने लगता है तो उस गान के गर्भ में संसार की सर्वत्र निधियां प्राप्त हो जाती हैं।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि जब ऋषि-मुनि अपनी स्थलियों पर विद्यमान होकर गान गाना प्रारम्भ करते थे। जब वेद का एकान्त स्थली में, वनस्पतियों के मध्य में विद्यमान होकर हृदय से गान गाना हो तो मन, प्राण और चिन्तन की एक स्वर-ध्वनि बन जानी चाहिए। जब वह गान गाता है तो अपने प्रभु को अपने में स्वीकार करता हुआ, अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाता है। बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब चाक्राणी गार्गी वेदों का गान करती थीं तो सिंहराज, मृगराज और सर्पराज उनके स्वरों को पान करतें मानव जब निष्पक्ष होकर हृदय से गान गाता है तो हिंसक प्राणी अपनी हिंसा को त्याग देता है, वह अहिंसा में परिणत हो जाता है। जब वह अहिंसावादी बन जाता है तो जानो कि हृदय से गा रहा है। वे परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में राष्ट्रीयता का गान गाता हुआ, इस संसार की प्रतिभा को जानते हुए, इस संसार से पार होने का प्रयत्न करता है। बेटा! तब प्राणी एक दूसरे में प्रतिभाषित हो जाता है, सर्वत्रता में प्रभु के निर्माण, प्रभु की प्रतिभा को दृष्टिपात करता है।

इस माता वसुन्धरा पृथ्वी के गर्भ में कहीं खाद्य पदार्थ हैं, तो कहीं खनिज पदार्थ हैं। वहाँ खनिज पदार्थ भी तप रहा है और परमाणुओं का आदान-प्रदान हो रहा है। उस आदान-प्रदान में सूर्य की नाना प्रकार की कान्तियां अथवा किरणें उनको तपाती रहती हैं। कहीं जलाशय तप रहा है, कहीं रत्नों की धातुओं का निर्माण हो रहा है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना महान् रचयिता है। इस माता वसुन्धरा के गर्भ में तूने क्या-क्या प्रदान कर दिया है। इसकी अनुकृतियों-कृतियों में कितना विज्ञान निहित रहता है। वे परमपिता परमात्मा जो वसुन्धरामयी कहलाता है, हम उसकी याचना करते हुए अपने मानवीयतव को ऊंचा बनाते हुए मृत्यु से पार होने का प्रयास करें।

बेटा! आज में तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में नाना ब्रह्मचारी आचार्य से प्रश्न कर रहे हैं, आचार्य से यह अनुग्रह कर रहे हैं कि हे प्रभु! हम याज्ञिक बनना चाहते हैं। ऋषि-मुनियों की एक बड़ी विचित्र देन रही है, कि ब्रह्माण्ड को मापा जा रहा है, पिंड को भी मापा जा रहा है, और दोनों का समन्वय करके अपने अन्तःकरण में एकोकीकरण करते हुए मानवीयतव को दीर्घता से दृष्टिपात करते रहते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज विद्यालयों में आध्यात्मिक याग करते रहे हैं, भौतिक विद्यालयों में भौतिक याग करते रहे हैं। भौतिक याग का भी उन्होंने आध्यात्मिक याग का समन्वय किया अथवा उसका निरूपण ही किया है, और यह वर्णन किया कि वास्तव में दोनों का एकोकीकरण हो जाना चाहिए। आपने हमें सत्रह होताओं का वर्णन किया है। जैसे मनस्तव है और यह मन अपनी आभा में निहित रहता है। वेद के मन्त्र को जब उद्गीत के रूप में गाया जाता है तो मन अपनी आभा में निहित हो जाता हैं। मन प्रकृति का एक महान सूक्ष्म तन्तु माना गया है। जैसे दुग्ध के मन्थन करने पर घृत की उपलब्धि हो जाती है, इसी प्रकार प्रकृति को जब मन्थन में लाया जाता है, तो मन्थन करने के पश्चात् जो घृत रूपी मनस्तव की उपलब्धि होती है, वही उपलब्धि मानव जीवन में सहायक बन करके इसी ऊर्ध्वा में गति कर देती है। इसलिए इस मनस्तव को ऊंचा बनाना है।

बेटा! मन और प्राण दो वस्तु हैं। शिव रूपी परमपिता परमात्मा ने जब तांडव नृत्य किया था और (पार्वती) ने उसमें नृत्य किया। उस तांडव मे स्वर ध्वनियां हो रही हैं। उन स्वरों में डमरू की प्रवृत्तियाँ शब्दायमान हैं, और प्रकृति वह नृत्य हो रहा है। जब नृत्य होता है तो नृतिका को नृत्य में लाते-लाते मानव कहाँ चला जाता है। यह जो हमारा मस्तिष्क है, इस मस्तिष्क में जहाँ आज्ञा चक्र है, वहीं सूचना केन्द्र है, वहीं मन वृत्तियां विद्यमान हैं। हृदय अपने में गतिशील है। समाधिष्ट मानव के मस्तिष्क में जो नाना प्रकार की गर्जना हो रही है, नाना प्रकार का जो स्वर संगम हो रहा हे, उसी स्वर संगम का हमारे यहाँ व्याकरण के रूप में परिवर्तन हो रहा है। संसार में जब शिव (परमात्मा) का तांडव नृत्य होता है और पार्वती नृत्य करने लगती है तो वह पार्वती प्रकृति के रूप में हैं परमपिता परमात्मा चेतन के रूप में, चेतना का भरण करते हुए तांडव नृत्य करने लगता है। वही नृत्य स्वर-संग्राम के रूप में बाह्य जगत में आकर व्याकरण के रूप को धारण कर लेता है, वही स्वरों की ध्वनियों के रूप में ध्वनित होने लगता है और वही शब्द माला के समान दृष्टिपात आने लगता है। विचार यह कि मनस्तव, प्राणत्व, विचारत्व में जब जिज्ञासु चला जाता है, तो इस संसार की प्रत्येक वस्तु को जान लेता है, प्रत्येक लोक-लोकान्तरों के स्वरों में स्वरसज्ञित हो जाता है।

ग्यारह होता

यज्ञमान अपने होताओं के द्वारा याग करना चाहते हैं। यह सब मनस्तव, प्राणत्व, बुद्धित्व, विचारत्व होता कहलाते हैं और यह (शरीर) सत्रह होताओं वाली यज्ञशाला है, जिस यज्ञशाला में विद्यमान हो करके भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार का याग हमें दृष्टिपात आ रहा है। बेटा! ब्रह्मचारियों ने यह प्रश्न किया कि, हे प्रभु! आपके चरणों में विद्यमान हो करके हम नाना रूप में गान गाते रहते हैं और स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों का समन्वय

करने वाले बन गएं हैं। हम याग और जानना चाहते हैं कि भगवन! यज्ञमान विद्यमान है, और वह याग करना चाहता है, कितने होता होने चाहिए? सत्रह होताओं के पश्चात ऋषि ने वर्णन किया क ग्यारह होता होने चाहिएं। ग्यारह होता कौन से हैं? बेटा! पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियाँ और ग्यारहवां मन कहलाता है।

मन

मन से प्रत्येक इन्द्रियाँ कटिबद्ध रहती हैं। जैसे एक वाहन गति कर रहा है, परन्तु वाहन का जो संचालन कर रहा है, वह उन सब गतियों को अपने में धारण करता हुआ अपने में उसे कटिबद्ध कर देता हैं। चाहे वह यान समुद्र की तरंगों में गति करने वाला हो, चाहे वह समुद्र के आन्तरिक जगत में गति करने वाला हो, चाहे वह वायुमण्डल में उड़ान उड़ने वाला हो, चाहे वह ध्रुव लोक का यात्री हो, चाहे वह मंगल का यात्री हो, चालक अपने यान की प्रतिभा को धारण करता रहता है। इसी प्रकार मानव जब यह विचारता है कि मैं अब प्रभु के समीप जाना चाहता हूँ, तो मन प्रत्येक इन्द्रियां को कटिबद्ध करता है। शरीर जैसे एक यान है, और उस यान में यात्रा करने वाला यह आत्मा माना गया हैं। यह आत्मा यात्रा कर रहा हैं। इस संसार की यात्रा करने वाला यह आत्मा ही तो है। वह प्रेरक प्रेरणा प्रदान करता रहता है, मन सारथी बनकर ही गतिवान है। यह एक याग हो रहा है। आत्मा याग करा रहा है, वह ग्यारह होता आहुति दे रहे हैं। वह कहाँ से आहुति लाते हैं, कहाँ से साकल्य लाते हैं, यह बड़ा विचारणीय प्रसंग है। परम्परागतों से ही, बुद्धिजीवी प्राणी इस सम्बन्ध में अनुसन्धान करता रहा है।

मेरे प्यारे! साकल्य क्या? नेत्र प्रकाश का, अग्नि का रूप बन करके रूप का साकल्य लाते हैं। यह श्रोत्र दिशाओं के आंगन में प्रवेश होकर शब्दों के साकल्य को एकत्रित कर लेते हैं। घ्राण पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो करके वहाँ से गन्ध-सुगन्ध के साकल्य को ला करके एकोकीकरण में प्रवेश कर जाते हैं। रसना नाना प्रकार के रसास्वादनों का साकल्य एकत्रित कर देती है। त्वचा नाना प्रकार के अव्यवों को ला करके साकल्य के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह पंचीकरण कहलाता है। यह पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, पांच कर्म इन्द्रियाँ है जो बाह्य जगत को दर्शा रही हैं, बाह्य जगत में जिसकी प्रतिभा निहित है। जैसे ध्रुवा में पृथ्वी से साकल्य को लेती है, इसी प्रकार यह चन्द्रमा का अमृत अपने में धारण करते रहते हैं। यह हस्त रूप को ले करके तो क्रियाकलाप है, उसको क्रियात्मक में लाने का प्रयास करते हैं। पृथ्वी से पगों का समन्वय हो करके, यह दस इन्द्रियां को जो साकल्य है, वह ज्ञान इन्द्रियों में और ज्ञान इन्द्रियां का जो साकल्य है, वह आत्मतत्वदर्शी के द्वारा है, और मनस्तव उसकी वितरण प्रणाली को जानता है। प्राणरूपी जो गतियां हो रहीं है, उन सब गतियों को समावेश करके जो अग्नि जागरूक हो जाती है, वह अग्न्याधान हो रहा है। हे योगेश्वर! तेरे ही इस आंचल में, तेरे ही आंगन में जो अग्न्याधान हो रहा है, उसमें वह आहूति दे रहा है, साकल्य प्रदान कर रहा है। वह याग हो रहा है।

यज्ञशाला रूपी रथ में जो विद्यमान है वह विराजमान हो करके यज्ञमान बना हुआ है। अरे, आत्मा ही तो यज्ञमान है। आत्मा की क्षुधा ही तो याग के लिए प्रेरित कर रही है क्योंकि मन नहीं चाहता कि मैं याग करूं क्योंकि वह तो जड़वत कहा जाता है। वह तो पराधीन होता है, वह सेवक की भांति रहता है और सेवा करना उसका कर्त्तव्य है परन्तु आत्मा ही तो यज्ञमान है, इन्द्रियाँ होता हैं, जिनके भिन्न-भिन्न देवता हैं। जहाँ अग्नि देवता है, जहाँ आपो भी देवता है, गुरूतव भी देवता है तो यह अपने में परिणत होकर, साकल्य रूप बन करके उनका साकल्य आत्मा के समीप जाता है। आत्म तत्त्व ब्रह्मः आहुति प्रदान हो रही है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना विज्ञानवेत्ता है, तेरे विज्ञान की कोई सीमा नहीं है। जब तूने इस मानवत्व को रचना में लाने का प्रयास किया, यह रचना में आया तो ग्यारह होता हैं, और उस यज्ञशाला रूपी रथ में द्यिमान होने वाला एक आत्मा हैं। इसी आभा को लेकर ऋषि-मुनियों ने विज्ञान के वांग्मय में जाने का प्रयास किया। वह आत्मा अपने में ब्रह्मत्व कहलाता है।

जगत पिता ने सृष्टि के प्रारम्भ में इस यज्ञशाला का निर्माण किया। यह कैसी भव्य यज्ञशाला हैं जिसमें आहुति दी जा रही है, याग हो रहा है, मानव प्रसन्न हो रहा है। इनको जान करके योगेश्वर योग के पथ पर जाना चाहता है, योगेश्वर बनना चाहता है।

यज्ञशाला का रथ

मेरे प्यारे! मुझे बहुत से काल स्मरण आते रहते हैं, जब ऋषि-मुनि एक-एक वेदमन्त्र को लेकर अनुसन्धान करते रहते थे अथवा ब्रह्माण्ड के मापते रहते थे। एक-एक वाक्य में ब्रह्माण्ड की प्रतीति होती है। इसी वाक्य को लेकर एक वेद का मन्त्र है यज्ञम भविताम, ब्रह्मेः मनस्तम् व्रहे आत्मा! रथम् वृही व्रणः वस्तति। यही वेदमन्त्र जब आध्यात्मिक और विज्ञानवेत्तओं के पास पहुंचा, महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ जब इस वेदमन्त्र के ऊपर अनुसन्धान होने लगा तो बाह्य जगत वालों ने विज्ञान को जानने का प्रयास किया। उन्होंनें इसी वाक्य को जाना। महर्षि वैशम्पायन के मस्तिष्क में जब इस मन्त्र की प्रतिभा ओतप्रोत होने लगी तो वह इस पर मनन-चिन्तन करने लगे कि यज्ञशाला का रथ बन करके अन्तरिक्ष में, द्यौ लोक में प्रवेश करता है। उसी रथ के ऊपर विचार-विनिमय करते हुए वह महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। महर्षि भारद्वाज मुनि ने इस वेदमन्त्र के ऊपर अनुसन्धान किया। ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी कबन्धि, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, महर्षि पणपेतु महाराज और ब्रह्मचारिणी शबरी ने इस वाक्य के ऊपर बड़ा अनुसन्धान किया। इसी वेदमन्त्र को लेकर अनुसन्धान करते हुए उन्होंने अपनी विज्ञानशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि जैसे मानव स्वाहा उच्चारण कर रहा है, जैसे मानव का शब्द अग्नि के ऊपर धारयामि बन रहा है, ते यन्त्र में उस यज्ञशाला का रथ बन करके, अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यौ लोक में प्रवेश करता दृष्टिपात आ रहा है। इस भौतिक विज्ञान पर वैज्ञानिकों ने बड़ा अनुसन्धान किया।

गृह स्वर्ग

यह भौतिक याग ग्यारह होताओं के द्वारा हो रहा है। आग्न्याधाम करने के लिए, अग्नि में साकल्य प्रदान करने के लिए ग्यारह होता होने चाहिए। इन ग्यारह को जब समाहित कर देते हैं ता वही द्यौ लोक का निर्माण करता है। द्यौ लोक में उनकी स्थिति बनकर, उनके वाक्यों की ध्वनियों का, उनके साकल्य का शुद्धिकरण हो करके वायुमण्डल को पवित्र बनाता रहता है। गृह में माता-पिता और बाल्य प्रातःकालीन वेदों का उद्घोष करते हैं, श्रद्धायुक्त हो करके वेदमन्त्रों के द्वारा याग करते हैं, वेदमन्त्रों का पठन-पाठन करते हैं। जिस गृह में इस प्रकार के पठन-पाठन की प्रणाली प्रचलित रहती है वह गृह स्वर्ग बन जाता है। उस गृह में उनके आन्तरिक जगत वाले विचारों के परमाणु बाह्य स्थलियों में ओतप्रोत हो जाते हैं। उन्हीं परमाणुओं से गृह पवित्र बन जाता है। तो आने वाला आगन्तुक यह अतिथि यह कहता है कि यह गृह तो बड़ा भव्य है, इसकी तरंगें बड़ी प्रियता में, हृदय को स्पर्श कर रही हैं। ऐसा जब उच्चारण करते हैं तो हृदय अगम्य होने लगता है।

न्यौदामयी याग

बेटा! एक समय महर्षि कागभुषुण्ड जी अनुष्ठान कर रहे थे। वह न्यौदामयी में भक्ति का पठन-पाठन करते थे। माता की आज्ञा का पालन करना, परमात्मा की प्रेरणा के आधार पर आत्मचिन्तन करना न्यौदामयी कहा जाता है। जब मानव अपने को महापुरूषों की शरणागत, समर्पित कर देता है ते वह न्यौदामयी कहलाता है। वह याग करता है, स्वाध्याय करता है। स्वाध्याय करके, मौन होकर उसके अन्तःकरण की तरंगों का समन्वय जब हृदय-मस्तिष्क से होता है तो वहाँ एक स्वर संगम, एक स्वर उत्पन्न होता है। वह अनहाद का जो स्वर संगम हो रहा है, उसे अपने में वह अनुभव कर रहा है। मैं अपने विचारों को वहाँ ले जा रहा हूँ जहाँ ऋषि-मुनि अपने में पवित्रतम

की आभा में परिणत रहते हैं, न्यौदामयी मन्त्रों का उद्घोष करते हुए महर्षि कागभुषुण्ड जी माता की आज्ञा पा करके अनुष्ठान करते रहते थे। भयंकर वन में जा कर नाना प्रकार का साकल्य एकत्रित करके वह नाना प्रकार का याग करते थे।

एक समय वह प्रातःकालीन याग कर रहे थे। महर्षि धुन्धी ऋषि महाराज अपने ब्रह्मचारियों से क्रूर होकर भ्रमण करते हुए जब भंयकरवन में आए ते देखा कि महर्षि कागभुषुण्ड जी याग कर रहे हैं। उनके याग में वह भी विराजमान हो गएं और वह भी साकल्य की आहुति देने लगे। महर्षि कागभुषुण्ड जी को इतना अनुभव हो गया था कि यज्ञ में से जो तरंगें अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होकर द्यौ लोक को जाती हैं, उन तरंगों में मनोमयी विचार रहता है और उनका चित्त अन्तःकरण से मिलान करता रहता था। धुन्धी ऋषि जब क्रूर होकर आए तो उनके मन में यह संकल्प-विकल्प जागरूक हो रहा था कि मैं विद्यालय में जाऊंगा तो विद्यालय का विनाश करूंगा। ऐसे विचार मन में आ रहे थे और वह साकल्य की आहुति प्रदान कर रहे थे। वह तरंगे जब महर्षि कागभुषुण्ड जी के आन्तरिक जगत को स्पर्श होने लगीं तो उन्होंने याग समाप्त कर दिया, और कहा कि हे ऋषिवर! आपका मन बड़ा क्रूर हो रहा है। आपके हृदय की तरंगें को स्पर्श कर रही हैं, मानो यह याग दूषित कर दिया। उस समय ऋषि ने यह स्वीकार कर लिया कि-प्रभु! वास्तव में मेरा अन्तर्हृदय बड़ा क्रूर हो रहा है। हे प्रभु! मैं क्षमा चाहता हूँ।

इसीलिए वेद का मन्त्र कहता है कि यज्ञम ब्रह्माः वाचन् पवित्रम ग्रहः परणम् व्रति व्रता मनः, वेद की आख्यिका यह कहती है कि जब भी याग का प्रारम्भ हो, चाहे वह आध्यात्मिक याग हो या भौतिक याग हो, उसमें मन की तरंगें इतनी महान पवित्रम होनी चाहिएं। जिससे हमारा अन्तःकरण उससे दूर न हो जाएं। उससे प्रीति करने वाला ऐसा संकल्प हो कि मैं याग में हूँ और याग प्रभु का है, प्रभु याग में है, और मैं उस याग के आश्रित हो करके प्रभु का गुणगान गाना चाहता हूँ। जब इस प्रकार की ज्योतिर्मय भावना बनी रहती है तो मानव अपने में पवित्र बनता जा रहा है, वह व्यष्टि से समष्टि में जाना चाहता है, समष्टि में प्रवेश करना चाहता है। महर्षि कागभुषुण्ड जी ने पुनः याग प्रारम्भ किया और अनुष्ठान किया। याग की तरंगों को वह समर्पित कर देते और वही समर्पित जो विचारधारा है, वही मानव को आध्यात्किवाद में, मानवीयता में परिणत कर देती है।

दूषित वायुमण्डल

बेटा! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों को याग कर वर्णन करते हुए कहा कि यह ग्यारह होता जो याग कर रहे हैं, इनमें दस होताओं का निर्णय देने वाला यह मनस्तव अपने में मानो, निध्यासन कर रहा है। विचार क्या कि बुद्धि के भिन्न-भिन्न स्वरूप बन करके, मनस्तव की भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराएं बन करके और साकल्य में मिश्रित हो करके जब द्यौ लोक को ऊंचा बनाने में तत्पर होती हैं, तो यह वायुमण्डल भी पवित्र हो जाता है। जिस भी काल में मानव के विचारों में क्रोधाभास हो जाता है, दूषित वायुमण्डल बनता है। मानव के आन्तरिक और बाह्य जगत दोनों में विचारों का समावेश तो हो नहीं पाता, दोनों में विभाजन बन जाता है और उसमें अशुद्धियां आ जाती हैं। जितना मानव का विभाजन बन जाता है उतने ही विभाजन में वायुमण्डल दूषित बनता चला जाता है, क्योंकि शब्द प्रणाली उसकी भ्रष्ट हो जाती हैं, जितनी भी शब्द प्रणाली ईर्ष्या में, द्वेष में, ध्रुवा में परिवर्तित हो जाती है, पद की लोलुपता में परिणत हो जाती है, उतना विभाजनवाद बलवती हो करके वायुमण्डल दूषित हो जाता है।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि तुम्हारा विद्यालय इतना पवित्र होना चाहिए, इतना याज्ञिक होना चाहिए जिससे तुम्हारे विद्यालय में विचारों की सुगन्धि उत्पन्न हो जाएं। यदि विचारों की सुगन्धि विद्यालयों में उत्पन्न हो जाती है। तो विद्यालय पवित्र बन जाते हैं, याज्ञिक बन जाते हैं। यदि विद्यालयों में विचारों में दूषितपन आ

जाता है, एक दूसरे को धृष्टता की दृष्टि से, एक दूसरे मानव से अमानवीयता का अभद्र व्यवहार जब प्रारम्भ हो जाता है। तो विद्यालय भ्रष्ट हो जाती है, तो राजा की विचारधारा पदों की लोलुपता और दूसरे के वैभव और श्रृंगार को अपने में ग्रहण करने वाली बन जाती है। इसलिए वायुमण्डल अशुद्ध बन जाता है। परिणाम स्वरूप मानव एक दूसरे के रक्त का पिपासु बन जाता है।

वेद का पठन-पाठन

मेरे प्यारे! विचार यह कि आध्यात्मिकवाद के द्वारा मिलान करने का प्रयत्न मानव को सदैव करना चाहिए। ग्यारह होताओं के द्वारा इन्द्रियों को संयम में लाते हुए मनस्तव उसकी धाराओं में परिणत हो रहा है, वह याज्ञिक बना हुआ है। अपने जीवन को महान बनाने के लिए हम अपने विचारों को वेद की आभा में ले जाएं। वेद ही प्रकाश है, आनन्द है। जैसे सूर्य प्रातःकाल में प्रकाश लेकर आता है और वह संसार को प्रकाश देता चला जाता है, ऊर्ज्वा देता है, सत्ता प्रदान कर देता है, इसी प्रकार वेद के पठन-पाठन करने वालों को जान लेना चाहिए कि वेद मानव का अनुपम प्रकाश है। वह वेद का जब गान गाता है तो उसके आन्तरिक जगत में प्रकाश आना प्रारम्भ हो जाता है। वह प्रकाश ही मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है। सूर्य इस साधारण प्राणी को ऊर्ज्वा में प्रकाश देता है, वेद रूपी प्रकाश मानव के अन्तःकरण को पवित्र बना देता है।

हमारे यहाँ ग्यारह होताओं के द्वारा जो याग होता है, उस यज्ञ में स्वामित्व करने वाला आत्मा है। अरे, आत्मतत्वी बनना है तो इस संसार रूपी याग में परिणत होकर अपने जीवन को ऊंचा बनाओ। क्योंकि संसार में सृष्टि के प्रारम्भ से ही वर्तमान के काल तक प्रत्येक मानव की, प्रत्येक वाणी की यह पिपासा रही है कि मैं अन्धकार में न चला जाऊं, मैं मृत्यु को न प्राप्त करूं। प्रत्येक मानव मृत्यु से दूर होना चाहता है। अरे, मानव! मृत्यु से तू जब दूरी हो जाएगा, जब तू प्रकाश को जान लेगा और जब प्रकाश को जान लेगा तो मृत्यु स्वतः नहीं आ सकेगी। जब मानव वेदरूपी ज्ञान के प्रकाश में रत्त हो जाएगा तो अन्तःकरण प्रकाशित हो जाता है और अन्धकार उसके समीप नहीं आता, वह मृत्युंजय बन जाता है, मृत्यु से पार हो जाता है।

बेटा! हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, माता वसुन्धरा की गोद में अपने को स्वीकार करें। हमें इस संसार को परमात्मा की आनन्दमयी लोरियों के समान स्वीकार करना चाहिए। जैसे माता का पुत्र रूदन कर रहा है, क्षुधा लग रही है तो माता अपनी लोरियों का पान करा देतीहै, उसकी क्षुधा समाप्त हो जाती है, तो वह पुनः पूर्व की भांति, खिलवाड़ करने लगता है। इसी प्रकार, संसार के अव्यवों में परिणत हो गया मानव अपने में व्याकुल होता हुआ जब प्रभु की आनन्दमयी, ज्ञानमयी, स्रोतमयी, प्रकाशमयी लोरियों में परिणत हो जाता है, तो वह अपने में प्रकाशमयी हो जाता है।

आज का हमारा वाक्य यह कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। हमारा संसार में आने का यही मंतव्य है। मानव संसार में नाना प्रकार के वैभव को एकत्रित करता रहता है कि मुझे सुखद प्राप्त हो जाएं, नाना प्रकार की विचित्रताओं में रत्त होता रहता है परन्तु चेतना में चेतना का मिलान यदि नहीं हो पाता तो आनन्द प्राप्त नहीं होता। वह आनन्द तभी प्राप्त होता है जब मानव सत् उस स्रोत को प्राप्त कर लेता है। आज का वाक् समाप्त, अब वेदो का पठन-पाठन होगा। आर्यसमाज, अमृतसर ३१-७-१९८७

९ गोमेध याग ०४ ०८ १९८७

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता हैं, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और उसका जो अनुपम ज्ञान हैं वह प्रत्येक आभा में निहित रहता हैं, जिसके ऊपर परम्परागतों से ही, मानव अनुसन्धान करता रहा हैं, और वह यौगिक क्षेत्रों में मानो यौगिकवाद कहलाता हैं। जिस यौगिकता के ऊपर, प्रत्येक मानव, अपने मनस्तव और प्राणतव को जानने का प्रयास करता रहा हैं, और उसको जानता हुआ, मानव ऐसी एक पगडण्डी को ग्रहण कर लेता हैं, जिसमें वह पगडण्डी पथ प्रदर्शक बन करके, इस नाना प्रकार के जो अक्षय हैं, नाना प्रकार की जो अग्रत धाराएं हैं, मानो एक आख्य हो जाता हैं। वह सब समाप्त हो जाता हैं। तो मानव अपनी पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है, जिस पथ पर चलने के पश्चात मानव को पथ की आवश्यकता नही रहती। वह उसके लिए मार्ग कहलाता हैं। जिसके ऊपर हम आचार्या जन अपना-अपना अनुसन्धान, अणुवृत्तियों में लाते रहें है।

तो आओ, मेरे पुत्रों! वेदमन्त्र, आज का वेदमन्त्र याग के ऊपर विवेचना दे रहा था। हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का वर्णन हैं। आज मैं उन यागों में तो ले जाना नही चाहता हूँ, परन्तु गो मेध याग, अपने में ऐसा एक सन्धि याग हैं, जिसके ऊपर राष्ट्र और समाज और यौगिकवाद बेटा! जिसके ऊपर निहित रहता हैं। तो इसीलिए हम परमपिता परमात्मा को, गो मेध कहते हैं। मानो वह संसार की प्रत्येक वस्तु में, तत्पर रहने वाला हैं। तो इसीलिए परमपिता परमात्मा को गो मेध नामों से वर्णन किया जाता हैं। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा हमारा वरणीय हैं, हम प्रायः उसे अपना वरुण बनाते हैं। मेरे प्यारे! जब गो मेध याग करने वाला, याज्ञिक पुरूष, जब उसमें याग में परिणत होता है, तो परमपिता परमात्मा जो यज्ञों का स्वामीतव हैं, मानो जो उसका गृह, आयतन और सदन माना गया हैं। तो मुनिवरों! देखो, हम उस परमपिता परमात्मा की महती, अथवा उसके गो मेध याग को हम चिन्तन में लाते चले जाएं। तो उसका चिन्तन करना मानव का एक कर्तव्य हैं, क्योंकि मन यह चाहता है, कि मनन किया जाएं। मानो देखो, मन की कृतियां मानी गई हैं, उसके ऊपर जितना मनन हो, वही मानो देखो, मननशीलता में इस संसार की प्रत्येक आभा से पार हो सकता हैं।

तो आओ, मेरे पुत्रों! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, आज मैं तुम्हे यह उच्चारण करना चाहता हूँ, कि हमारे यहाँ, गो मेध याग करने वाले, नाना आचार्य जन क्या, राष्ट्र गो मेध याग करता रहा हैं। गो मेध बेटा! विद्यालयों में होता हैं, आचार्य अपने विद्यालय में जैसे याग करता हैं, और वह गो मेध जैसे परमपिता परमात्मा ने, इस संसार की रचना कर दी, उस गो मेध यज्ञशाला का निर्माण किया हैं जिस यज्ञशाला में बेटा! वे परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा हैं, आत्मा इस यज्ञशाला का मानो देखो, यज्ञमान हैं, पंच महाभूत बेटा! होता हैं, और सूर्य उद्गीत गा रहा हैं, चन्द्रमा सोम की वृष्टि कर रहा हैं। मेरे पुत्रों! कैसा प्रिय याग हो रहा हैं। नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की माला बनी हुई हैं। और वह माला मानो एक दूसरे मे पिरोई हुई हैं, एक दूसरे में सहायक बनी हुई हैं, जैसे माता का पुत्र माता का सहायक हैं। और पुत्र की सहायक माता हैं, इसी प्रकार संसार बेटा! एक दूसरे में एक दूसरे का सहायक बन करके वह एक दूसरे में बेटा! ऐसा प्रतीत होता है। जैसा एक दूसरे प्राणी मात्र क्या, वह परमात्मा की रचाई हुई यज्ञशाला है बेटा! एक दूसरे में ओत-प्रोत हो रही हैं। मेरे प्यारे! कैसा विचित्र, मेरे प्यारे प्रभु का यह जगत हैं। इसके ऊपर मानो विज्ञानवेत्ता होते रहते हैं, विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार के अणुओं, परमाणुओं को जानते हुए, मानो इस संसार का दिग्दर्शन करते रहते हैं। मुझे ऐसा स्मरण आता रहता हैं, पुत्रों! ऋषि-मुनियों ने एक-एक

परमाणु मानो विभक्त करने से, उसमें सर्वत्रता का दर्शन होता हैं। मेरे प्यारे प्रभु का कैसा अनूठा विज्ञान हैं, कैसा बेटा! अनूठा यह ज्ञान मानो एक अनन्तमयी अमृतमयी कहलाता है जिसके ऊपर हमें विचार और मनन करना चाहिए।

आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नही आया, आज बेटा! मैं तुम्हें मानो उसी क्षेत्र में ले जाने के लिए आया हूँ, जहाँ ऋषि-मुनि विद्यमान हो करके अपने में अनुसन्धान करते रहते थे। अपने में विचार-विनिमय करते रहते थे, तो बेटा! गो मेध याग, एक ब्रह्मा और महर्षि भृगु के मध्य में हुआ था। जिसमें बेटा! महर्षि वैशम्पायन और महर्षि शाण्डिल्य केतु मुनि महाराज बेटा! यह सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने ब्रह्मा से यह कहा कि-प्रभु! यह गौ मेध याग क्या हैं? तो ऋषियो ने बेटा! कहा कि गौ मेधां ब्रह्मा देवप्रता मानो देखो, गो नाम तो इन्द्रियों को कहा जाता हैं, यहाँ गो के प्रकरण में गो याग बेटा! देखो, माना गया है। गो मेध याग उसे कहते है जहाँ इन्द्रियों पर संयम किया जाएं। इन्द्रियों पर संयम करके देखो, विषयों को एकत्रित करके वह योगाभ्यास में परिणत होता हैं, योग में रत्त हो जाता हैं। मेरे पुत्रों! वह गो मेध याग कर रहा हैं, उसे हमारे यहाँ गो मेध कहते हैं, परन्तु देखो, यह तो देखो, योग का विषय हुआ, परन्तु गो नाम हमारे यहाँ सूर्य की किरणों को कहा जाता हैं। मुनिवरों! देखो, सूर्य की नाना प्रकार की किरणों को जान करके, नाना रश्मियों को जान करके मानो बेटा! नाना प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण करता रहता हैं। और कैसे निर्माण करता हैं? मेरे पुत्रों! वह गो मेध याग कर रहा हैं, क्योंकि गो नाम सूर्य की किरणों को भी गो कहते हैं। मानो देखो, गो को एकत्रित करता हुआ, मेरे पुत्रों! देखो, विचार-विनिमय करता हुआ, उनको मन्थन करता हैं। और मन्थन करके जो ऊर्ज्वा का जन्म होता है, निकासता है, उसी में वह विज्ञानवेत्ता बन जाता हैं। मेरे पुत्रों! देखो, एक-एक वेदमन्त्र में, सर्वत्र मानो देखो, ब्रह्माण्ड की चर्चा आती रहती हैं। विचार क्या मुनिवरों! देखो, उसका मन्थन करना चाहिए। जैसे मुनिवरों! देखो, एक समय मुझे स्मरण हैं, मेरे पुत्रों! देखो, देवयान की आभा में निहित होने वाले, अपने विचारों जैसा मैंने पुरातन काल में भी कहा हैं जब यह पृथ्वी विष उगलने लगती है पृथ्वी विषाक्त कहलाती हैं। मेरे पुत्रों! जब यह पृथ्वी विष उगलने लगती हैं तो वहाँ गो मेध याग होता हैं। मेरे पुत्रों! गो मेध याग उस काल में होता हैं, जब पृथ्वी विष उगलने लगती हैं। यह निशाचर बन जाती है, परन्तु देखो, वही विष को पान करने वाला मानो शिव कहलाता हैं, वह शिव जब इसको पान कर लेता हैं, मेरे पुत्रों! देखो, वह विष को पान करके ही वृष्टि जहाँ प्रारम्भ होती हैं तो विष समाप्त हो जाता हैं। मेरे प्यारे! जहाँ देखो, शिव परमपिता परमात्मा को कहा गया हैं, परन्तु जहाँ परमात्मा को कहते हैं वहाँ सूर्य का नाम भी शिव कहलाता हैं। जब मुनिवरों! देखो, ये पृथ्वी विष उगलने लगती हैं, तो मानो यह सूर्य ही तो उसको अपने में धारण करता हैं। अपनी किरणों को विष को अपने में धारण करता हुआ, बेटा! देखो, मन्थन विशाल तेजोमयी बन करके वही शिव बेटा! समुद्रों से उसका समन्वय होता हैं और जब समुद्रों से उसका समन्वय होता हैं तो मुनिवरों! देखो, मेघों की उत्पति हो करके, वृष्टि प्रारम्भ हो जाती हैं।

तो विचार क्या मेरे पुत्रों! देखो, हमें शिव की उपासना करनी है तो शिव वास्तव में, गो याग करने वाला हैं, तो ब्रह्मा ने बेटा! जब इस आलांकारिक वार्ता का प्रतिपादन किया तो महात्मा भृगु ने कहा-प्रभु! संसार में सतोगुण रहना चाहिए मेरे पुत्रों देखो, शिव ने कहा कि असुतं ब्रह्मा लोकां मानो एक दूसरे का पूरक कहलाता हैं, एक दूसरे में प्रतिभाषित होने लगता हैं, तो विचार-विनिमय क्या, बेटा! हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए, शिव ने कहा हे भृगु! संसार का प्रत्येक आभा में मानो रत्त रहने वाला मानो वे परमपिता परमात्मा से कटिबद्ध रहता हैं। यह संसार जिस यज्ञशाला का, जिस पिता ने निर्माण किया है, यह बड़ा निर्माणित है, बड़ा योगनित हैं। मानो देखो, वह विज्ञान में रत्त रहने वाला हैं, इस गो मेध याग को वह पूर्ण करा रहा हैं। मानो गो मेध याग बेटा! राजा

भी करता हैं, जहाँ गो मेध याग मानो परमपिता परमात्मा करता है, वहाँ राजा भी, गो मेध याग करता हैं। बेटा! गो मेध याग राजा तो करता हैं, जिस राजा के राष्ट्र में, गो नाम के पशु की रक्षा होती हों। गो नाम के पशु की सेवा होती हैं, तो यह गो नाम पशु का माना हैं। मेरे पुत्रों! देखो, दुग्ध देने वाला, जितना भी धेनु हैं, वह मानो देखो, गो कहा जाता हैं, उसी गो मेधा जैसे गो! तू मेधा से देने वाली हैं। हे गो! तेरे द्वार पर आ करके हम तुझे दुहते हैं, अपनी इन्द्रियों को वर्चोसि बनाते हैं, हे ब्रह्मे ब्रह्मणा मेरे पुत्रों! उन्होंने कहा कि इसे गो मेध याग राजा करता हैं, जिससे आयुर्वेद के कथनानुसार, मानो आयुर्वेदाचार्यों ने उसे औषध के रूप में मानो परिणत किया है, उसे औषध कहा हैं। तो इसीलिए हमें गो मेध याग करना चाहिए। गो मेध बेटा! देखो, योगी कर रहा हैं, गो मेध परमात्मा रचयिता है, और गो मेध राजा अपने राष्ट्र सुखद के लिए मानो गो मेध याग करता हैं। मेरे पुत्रों! देखो, जिस राजा के राष्ट्र में गो का ह्रास हो जाता है गो मेध याग नही होते, वह राजा आज नही कल अवश्य नष्ट हो जाएगा। ऐसा बेटा! देखो, वेद का वाक् कहता है। मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय बहुत पुरातन काल हुआ, जब गो पशु का ह्रास हुआ, राजा के राष्ट्र में, तो राजा के राष्ट्र में अग्नि प्रदीप्त हो गई। मानो देखो, जिस प्रकार, हमने गो मेध याग कर लिया, मेरे पुत्रों! देखो, महर्षि भृगु और ब्रह्मा इत्यादि ऋषिवर गो मेध याग के ऊपर विचार-विनिमय करने लगे। गो मेध याग बेटा! देखो, गो किसे कहते हैं बेटा! जहाँ इन्द्रियां का नाम गो हैं, पशु का नाम गो हैं, सूर्य की किरणों का नाम गो हैं, चन्द्रमा की कान्ति का नाम भी गो कहा जाता हैं, जो रात्रि को अपने में धारण करने वाली हो, मेरे प्यारे! देखो, गो मेध उसे भी कहते हैं, गो नाम बेटा! गो प्रकाशं ब्रह्मणा देखो, गो प्रकाश है और तम नाम प्रकाश है आचार्य ने अपने विद्यालय में गो मेध याग करता हैं, गो मेध याग का अभिप्रायः यह है कि ब्रह्मचारियों को, सुमार्ग पर ले जाने वाला, ब्रह्मचारियों को तू सुशिक्षा देने वाला योग में परिणत करने वाला, मेरे पुत्रों! देखो, गो मेध याग कर रहा हैं, क्योंकि बालक ब्रह्मचारी जो होता है, वह बाल्य देखो, पशु के तुल्य होता हैं। और वह मानो देखो, गो कहलाता हैं, उसे जब मेध में परिणत करा दिया जाता हैं, मेध नाम बेटा! विद्या का हैं, जब विद्या में परिणत करा दिया जाता हैं, तो ब्रह्मचारी विचित्र बन करके, महान बन करके, मृत्यु को विजय कर लेता हैं। मेरे पुत्रों! वह गो मेध राजा नही बेटा! आचार्य अपने विद्यालय में, गो मेध याग कर रहा हैं। जब बेटा! देखो, ऋषि गो मेध याग करता हैं, योगीजन करते हैं तो मुनिवरों! वह सूक्ष्म सूक्ष्म चित्त की तरंगों को, चित्त की वृत्तियों को वह एकाग्र कटिबद्ध करके बेटा! वह मानो संग्रहित कर लेता है, वह हृदय में, जब समाहित हो जाती हैं, मन के आश्रित हो जाती हैं, मेरे पुत्रों! देखो, मन और प्राणवृत्तियों में रत्त हो करके, मेरे पुत्रों! देखो, प्राणेश्वर के समीप जाने के लिए जब पथ को अपनाता हैं, तो वह भी गो मेध याग कर रहा हैं। तो मेरे पुत्रों! मैं गो मेध के सम्बन्ध में, विशेष विचार देने नही आया हूँ, विचार क्या बेटा! मैं तुम्हें वही ले जाना चाहता हूँ तुम्हें त्रेता के काल में जहाँ वशिष्ठ मुनि महाराज का विद्यालय, जहाँ बेटा! महाराजा वशिष्ठ इत्यादि ने यह आज्ञा दी, महाराजा विश्वामित्र को, और भी नाना ऋषि-मुनियों ने क्या बेटा! तुम उन राजकुमारों को तुम धनुर्विद्या प्रदान कराओ तो मेरे प्यारे! देखो, दण्डक वन में जा करके, उन्होंने धनुर्याग किया धनुर्याग करने के पश्चात उन्होंने बेटा! लगभग चार वर्ष तक उन्हें धनुर्याग का अध्ययन कराया, और परीक्षा कराई मेरे पुत्रों! देखो, वह अपने-अपने आश्रम को, अपने गृह को उन्होंने प्रस्थान किया। ब्रह्मचारी जन बेटा! चार वर्षों तक उन्होंने धनुर्विद्या पान कराया। पान कराते हुए मेरे पुत्रों! देखो, महाराजा विश्वामित्र मुनि ने महर्षि वशिष्ठ मुनि आश्रम में प्रवेश हुए, और वशिष्ठ मुनि महाराज से, वशिष्ठ से यह कहा कि कहो भगवन! तुमने क्या किया? उन्होंने कहा-प्रभु! आपके विद्यालय के ब्रह्मचारी, इक्कतर ब्रह्मचारी, मेरे यहाँ देखो, धनुर्विद्या को देखो, उन्होंने पान किया हैं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम मेरे पुत्रों! वशिष्ठ ने कहा महात्मा वशिष्ठ ने कहा हे विश्वामित्र! तुमने कुछ काल में मानो इनकी परीक्षा करनी हैं, मैं एक वाक् जानना

चाहता हूँ, क्या दशरथ के चारों पुत्रों ने कौन-कौन-सी विद्या का उन्होंने अध्ययन की हैं। उसे मुझे निर्णय कराईए। मेरे पुत्रों! महर्षि विश्वामित्र बोले क्या चारों राजकुमारों ने इतने मानो पारायण हैं, धनुर्विद्या में वह राम और लक्ष्मण दोनों हैं। परन्तु देखो, वे दोनो हैं परन्तु वह दोनो मेरे पुत्रों! मानो, वह ब्रह्म विद्या में मानो वह दूसरों की आज्ञा पान करने में विशेष कहलाते हैं, उनका जो कर्मकाण्ड हैं, वह कर्मकाण्ड जो शत्रुघ्न का जो कर्मकाण्ड है, वह भी आज्ञा में रहता हैं। परन्तु भरत के द्वारा भी इसी प्रकार रहता है परन्तु भरत के द्वारा एक विशेषता मुझे प्राप्त हुई हैं, क्या भरत जो वह राष्ट्र में राष्ट्र के पालन करने में, और मानो देखो, त्याग में बड़े पारायण हैं, उनकी त्याग प्रवृत्ति रही हैं, और देखो, मैंने इसके मस्तिष्क का जो अध्ययन किया हैं, उससे मुझे यह प्रतीत हुआ हैं, क्या वह संग्राम के वह संग्राम के वह सुयोग्य नही है मानो देखो, जो शत्रुघ्न हैं वह धनुर्विद्या में मानो देखो, पृथ्वी के मापदण्ड में, वह मानो देखो, विशेष माने गएं हैं। मेरे पुत्रों! उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। आपने अच्छी प्रकार उनके मस्तिष्कों का अध्ययन किया हैं। तो बेटा! वेद के ऋषि ऐसा कहते हैं क्या आचार्य जिस विद्यालय में हो, उसे आयुर्वेद का ज्ञान होना चाहिए। क्योंकि आयुर्वेद की विद्या में, इस प्रकार की मानो कृतिका आती रहती हैं, क्या तो मस्तिष्क को दृष्टिपात करते हुए, मानो उसका निर्णय ले लेते हैं। क्या यह इस योग्य है, यह विषय बन सकता हैं। तो मानो देखो, उन्होने आयुर्वेद के सब अध्ययन करने वाले थे, क्योंकि आयुर्वेद में बेटा! महर्षि भारद्वाज बड़े पारायण थे, और मुनिवरों! देखो, महर्षि विश्वामित्र राष्ट्रीय क्रियाकलापों में मानो देखो, वह पारायण थे, धनुर्विद्या में भी पारायण थे, और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, बेटा! उनका सबसे प्रथम जो विषय रहा है, वह ब्रह्म का रहा हैं, और ब्रह्मवेत्ता हो करके ही, ज्ञान पूर्वक रहना और नम्रता से अपने जीवन को व्यतीत करना, बेटा! देखो, अध्यापन का क्रियाकलाप करते थे। वह ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे। मैंने बेटा! इससे पूर्व काल में तुम्हें निर्णय दिया था, क्या ब्रह्मवेत्ता वह होता है, जो ब्रह्म में जिसकी प्रवृत्ति मानो देखो, स्थिर रहती हैं, और वह स्थिर रह करके ब्रह्म में निहित रहती हैं, और वह ब्रह्म के आश्रित विचार करता हैं। क्या मैं तो ब्रह्म में हूँ, और ब्रह्म मेरे में हैं। तो इसीलिए मुझे अभिमान नही करना हैं। मुझे मानो द्रव्यपति भी नही बनना हैं, तो वह द्रव्यों का स्वामी मेरा सखा हैं। जब मेरा स्वामी द्रव्यों का सखा है, तो मुझे द्रव्यपति भी नही रहना चाहिए, मैं परमपिता परमात्मा का आश्रित बन जाऊं, मेरे पुत्रों! वह क्रोध को भी, क्रोधाग्नि को जानने वाला, उग्र रूप चित्त के मण्डल का निर्माण करने वाला, वह करू है, तो मुझे क्रोध की आवश्यकता नही क्योंकि वह तो स्वयं तेजोमयी हैं, उग्र क्रिया वाला हैं, इस उग्र क्रिया में ही मानो देखो, संसार ने जन्म लिया हैं, सृष्टि का निर्माण हुआ हैं, उग्र क्रिया से ही सृष्टि का निर्माण होता हैं। तो उग्रता की आवश्यकता नही हैं। तो ऐसे जो महान वशिष्ठ मुनि महाराज थे, जो ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे। तो मानो देखो, जिनका मार्ग जिनका पथ बेटा! ज्ञान और प्रयत्न मे रत्त रहते थे। तो मेरे प्यारे! महात्मा विश्वामित्र अपने में महान, अपने में बेटा! वशिष्ठ महान और माता अरूणधती कैसी प्रिय माता मानो देखो, जो ऋषि की रक्षा करने वाली हो, मानो देखो, वह माता अरूणाधती है जो अपने बेटा! देखो, वेदों का अध्ययन करना, तपश्चर रहना, ब्रह्मवेत्ता मानो स्वतः बनना लोक-लोकान्तरों में, बेटा! वह लोक-लोकान्तरों को निहारती रहती थी, गमन करना ये बेटा! उसका क्रियाकलाप रहता था। तो विचार-विनिमय बेटा! क्या जब कुछ समय हो गएं, तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि विश्वामित्र विद्यमान हुए, मेरे प्यारे! देखो, इतने में कहीं से भ्रमण करते हुए, कुछ ब्रह्मचारियों के सहित, महर्षि भारद्वाज उनके यहाँ आ पंहुचे, बेटा! देखो, भारद्वाज वशिष्ठ और विश्वामित्र मानो देखो, अब विद्यामान हो गएं, विद्यमान हो करके उन्होंने कहा भारद्वाज मुनि महाराज ने अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या मानो राम को प्रदान की हैं, तुमने लक्ष्मण को दी हैं, और भी ब्रह्मचारियों को तुमने अध्ययन कराया हैं। राम का इसमें कैसा क्रियाकलाप रहा हैं? उन्होंने कहा राम तो पारायण है। लक्ष्मण भी पारायण हैं। क्योंकि यह अस्त्रों शस्त्रों की प्रतिभा

को जानते हैं, मैंने एक सोमतीति नाम की एक रेखा का वर्णन कराया हैं, वेद को एक मन्त्र आता है। सोमं ब्रही व्रतमरतः स्वाहाः वेतु सम्भवव् बहे वाचं प्रवाणाम् अग्नम् ब्रहे रोता अस्वति महाराजा वशिष्ठ ने कहा कि मैं ने इस वेदमन्त्र का अध्ययन कराया हैं तो राम, इस वेदमन्त्र के अध्ययन को उसको अच्छी प्रकार समझा लक्ष्मण को एक रेखा का मैंने अध्ययन कराया हैं जिसका अध्ययन आपके विद्यालय में भी हो रहा हैं, किसी काल मे उद्दालक गोत्र के शिकामकेतु मुनि के यहाँ भी इस रेखा का अध्ययन हुआ था, इस रेखा में ये विशेषता है मानो देखो, कि एक परिक्रमा रूप में यह रेखा बद्ध हो जाए, तो आन्तरिक जगत में रहने वाला, मानव तो सुरक्षित रहता हैं, और बाह्य जो दुरिता भाव से आता है, वह उसका विनाश हो जाता हैं। वह इस रेखा के पास आते ही भस्म हो जाता हैं। ऐसी सोमतिती रेखा को मैंने वर्णन कराया है, उसको लक्ष्मण बड़ी पारायणता से जान गया हैं। शत्रुघ्न ने उसके ऊपर कोई विचार नही किया, उसका मन ही स्थिर नही रहा, भरत उस रेखा को अवेहलना जान करके त्याग दिया, और भी ब्रह्मचारियों ने इसे अवेहलना युक्त कहा है। एक वर्णित नाम के ब्रह्मचारी ने उसने इस रेखा को जानने का प्रयास किया हैं। वरुण अस्त्र, अग्नि अस्त्र, ब्रह्मास्त्र ये नाना प्रकार के अस्त्रों में राम बडे पारायण हो गएं हैं।

उन्होंने कहा बहुत प्रिय। अब समय हो गया है मेरा विचार यह है कि देखो, चार वर्षों तक राम और लक्ष्मण को ले आओ, इस रघुवंश का जहाँ तक राज्य हो, इसकी परिक्रमा को दृष्टिपात करो, कोई ऐसा प्राणी तो नही हैं जो राजा के राष्ट्र को घात पंहुचा रहा हो। उन दोनों को ले करके तुम गुरु बनो, वह दोनों शिष्य की परम्परा से भ्रमण कर सकत हैं विश्वामित्र जी ने कहा कि-प्रभु! जब मैं धनुर्याग के लिए मानो राजा दशरथ के यहाँ पंहुचा, तो उन्होंने अपने मोह को प्रकट किया था, राजा मोह करते हैं और ये जो मोह है इसका कारण कि बड़े प्रयत्न से इन शिशुओं को जन्म हुआ है। उन्हें मोह आता है, यह मोह राष्ट्र के लिए प्रिय नही हैं, महर्षि वशिष्ठ मुनि जी बोले कि वह तुम्हारी वार्त्ता स्वीकार तो कर लेते हैं, उन्होंने कहा कि-प्रभु! करते हैं। राजलक्ष्मियां भी करती हैं। परन्तु उन्होंने राजा के हृदय से कुछ आभास प्रकट होता है उन्होंने कहा कोई बात नही एक स्थली पर राष्ट्र है और स्थली पर राजा का मोह हैं, राष्ट्र के प्राणी की रक्षा करने के लिए, उसमें आताताई न रहना, यह राजा के मोह के समक्ष सर्वोपरि है राजा का मोह कोई विशेष नही होता हैं। वशिष्ठ जी ने कहा जाओ, तुम उन दोनों राजकुमारों को ले आओ।

मेरे पुत्रों! वहां से उन दोनों ने अप्रतम् भारद्वाज मुनि बोले कि मैं भी गमन करता हूँ। मैं भी विज्ञानशाला में रत्त रहता हूँ, मैंने भी श्रवण किया है कि एक समय राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद छा गया हैं। जिस राजा के राष्ट्र में रूढ़िवाद आ जाता है उसमें स्वार्थपरता आ जाती हैं, और स्वार्थ होने पर वह आक्रमण कर सकता हैं। क्योंकि मैने यह श्रवण किया है अभी कुछ समय हुआ क्या कि महाराजा सम्पाति का जो राष्ट्र है वह रावण ने अपना लिया हैं। तथा सम्पाति और उनके विधाता गरूड़ को उन्होंने यन्त्रो के द्वारा अन्तरिक्ष में प्रवाहित कर दिया हैं। मैंने श्रवण किया हैं कि गरूड़ जी तो एक स्थान पर अपना वास करने लगें हैं, और सम्पाति समुद्र तट पर शान्त मुद्रा में विद्यमान हो गए हैं, उनका राष्ट्र रावण ने अपना लिया है और वहां का राज कत्र पालन अक्षय कुमार करते हैं। इस अयोध्या राष्ट्र, उनका आक्रमण न हो जाएं। मेरे प्यारे! महर्षि भारद्वाज जी ने यह कहा कि मेरे विचार में यह राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद है, क्योंकि जब राष्ट्र में शासक प्रिय नही होता, तो वहाँ रूढ़िवाद पनपा करता हैं, वह रूढ़िवाद है, क्योकि जब राष्ट्र में शासक प्रिय नही होता तो वहाँ रूढ़िवाद पनपा करता हैं। वह रूढ़िवाद समाज का मानव का ह्रस कर देता हैं, रक्त भरी क्रान्ति को ला देता हैं, वह स्वार्थपरता में आ कर प्रियता अप्रियता को नही विचारता, महर्षि विश्वामित्र जी ने भी इए वाक्य को स्वीकार कर लिया।

बेटा! यहाँ से विश्वामित्र जी ने भ्रमण करते हुए अयोध्या पंहुचे अयोध्या में यह चर्चाए हो रही थी, आज महर्षि विश्वामित्र का आगमन हो रहा है। वह बड़े महान, प्रियतम हैं। वह महाराजा दशरथ के द्वार पर पंहुचे। राजा दशरथ ने उन्हें आसन दिया, आज स्थली त्याग दीं। आईए भगवन!। विराजियें, क्योंकि हमारे यहां राजा से ऊर्ध्वा में, आध्यात्मिक और जो समाज का निःस्वार्थ क्रियाकलाप करने वाला होता हैं, वह राजा से प्रबल होता हैं, उसकी भावना राजा से प्रिय होती है, महर्षि विश्वामित्र तपस्वी थे, आत्मवेत्ता थे, परन्तु वे राष्ट्र के महापुरोहित थे, जो राष्ट्र में सदैव सुखद की कामना करते रहते थे। कि सब राष्ट्र प्रियता को ग्रहण करना चाहिए। मेरे पुत्रों! मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है ऐसा प्रतीत हो रहा है कि राजा ने नतमस्तक हो कर ये कहा कि-प्रभु! राष्ट्र में आप बिना सूचना के पधारते हैं, यह हमारा कितना दुर्भाग्य हैं, प्रभु! ऋषि का आगमन हो, और उसे वाहनों द्वारा न लाया जाए, तो राष्ट्र के ऊपर एक प्रकार का भार होता हैं। कोई वाक् नही, महर्षि विश्वामित्र बोले, कि राजन! यह तो हमारा कर्तव्य हैं, हमे तो अपने जीवन को इस प्रकार निर्माणित किया है। जिस प्रकार मुनिवरों! देखो, प्रभु का राष्ट्र है, प्रभु का राष्ट्र ऐसा हैं जिसमे प्रभु विद्यमान हैं, परन्तु वह उससे पृथक हैं। हम ये चाहते हैं अपने हृदय से, हमने अपनी स्थली को त्याग दिया हैं, राष्ट्रीयता को त्याग दिया हैं, हमने तप करके ब्रह्मवेत्ता की उपाधि को प्राप्त किया हैं, उस ब्रह्मवेत्ता की उपाधि से भी पूर्व हमारे बाल्यकाल के संस्कार, अस्त्रों-शस्त्रों में निर्माण के थे, वह हमारे समीप, अन्तःकरण में निहित रहते हैं। तो हे प्रभु! मेरा तो यह क्रियाकलाप चलता ही रहता है, मेरी इच्छा तो यह है कि इसके ऊपर आप पश्चाताप न कीजिए। राज ने कहा कि-प्रभु! क्या पान करोगे? उन्होंने कहा कि जो इच्छा हो, वह उन्हे राष्ट्र गृह में ले गए सर्वत्र देवियां विद्यमान हो गयीं और नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराया और वह वाक्य तो उन्होंने पूर्व ही उच्चारण कर दिया था मैं राम और लक्ष्मण को लेने आया हूँ, और राष्ट्र में भ्रमण करने के लिए, और दैत्य प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए, मैं वही धनुर्याग पुनः कर रहा हूँ।

मेरे प्यारे! देखो, वह अपने राष्ट्र गृह में ले गए नाना पदार्थों का पान कराया, माता कौशल्या ने कहा कि कहो राजन! आप दोनो में क्या-क्या चर्चायें हो रही हैं? क्या विवाद हो रहा हैं। उन्होंने कहा कि हे देवी! हे पुत्री! मैं राम लक्ष्मण दोनों को ऋषि मुनियों की आज्ञा से अपने साथ ले जाना चाहता हूँ, क्योंकि मैं पुनः से धनुर्याग कर रहा हूँ, एक धुनर्याग तो मैंने उनके बाल्काल में जो किया है जो महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा से किया हैं। अब मैं एक याग और करना चाहता हूँ, क्या मेरा नाम सम्पन्नता को प्राप्त करके, राष्ट्र को अपने में सम्पन्न बना सकें। माता कौशल्या प्रसन्न हुई और भी सर्वत्र और सब देवियों ने प्रसन्न हो करके राजा से कहा कि हे प्रभु! आप मोह क्यों करते हैं? उन्होंने कहा कि देवी! मैं मोह नही कर रहा हूँ, मैं इसीलिए मोह करता हूँ, कि वह बाल्य है किशोर हैं। किशार वन में जाएंगें, उन्हें मानो नाना प्रकार के कष्ट होगा क्योकि ऋषि तो त्याग पूर्वक होते हैं, उन्होंने कहा। देवी ने कहा कि हे राजन! तुम्हें प्रतीत हैं कि राजकुमारों का मोह तो यह जानो कि राष्ट्र की मृत्यु हो जाना हैं। क्योंकि राष्ट्र की मृत्यु उस काल में होती है जब राजा मोह में, ममता में, देखो, वह सहवास मे परिणत होने लगता है। तो जानो, कि उस राजा का विनाश और राष्ट्र का दुर्भाग्य बन जाता हैं। इसे राष्ट्र का दुर्भाग्य मत बनाईए जैसे ऋषि इन्द्रियों को जय करके, अपने जीवन को तपों में व्यतीत कर रहे हैं, इसी प्रकार राजकुमारों को भी इन्द्रियों से जय होना चाहिए। मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने कहा हे राजन! दोनों किशोरों को ऋषि को प्रदान कीलिए। उनकी आज्ञा पालन हो गई, दोनो पुत्रों! को लाया गया ले करके वह बडे प्रसन्न हुए।

राम और लक्ष्मण दोनो को माता कौशल्या ने कहा कि हे पुत्रवत! जाओ ऋषि की सेवा करो। क्योंकि ऋषियों की सेवा करना ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है, जो ऋषि की तपस्या में सहायक नही बनता, ऋषि की आज्ञा का पालन नही करता, वह संसार में अपने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नही कर सकेगा। जाओ ब्रह्मचारी तुम

अपने में इनकी रक्षा धर्म की, मानवता की रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य हैं। ऋषि की सेवा करना सेवा का अभिप्रायः क्या सेवा कहते हैं उनके मुखारबिन्दु से जो यथार्थ, धर्म और मानवता से गुथा हुआ शब्द हो, उस शब्द को स्वीकार करना, इनकी आज्ञा का पालन करना है, और वही इनकी सेवा कहलाती हैं। राम, लक्ष्मण दोनों ने माता-पिता के चरणों को स्पर्श करके कहा कि धन्य है हमारी परम्परा तो यही रही है माता। हमारे महापिता थे महाराज दिलीप जी का साहित्य उनके विचार, हमने लेखनियों में बद्ध स्वीकार किए हैं, वह भी महान तपस्वी थे, तथा भयंकर वनों में नन्दिनी की रक्षा करते थे, हम ऋषि के साथ तपश्चर्य बन करके, अवश्य इनकी आज्ञा का पालन करेंगें।

मेरे प्यारे! वे वहां से दोनों गमन करते हैं महर्षि विश्वामित्र पुनः दंडक वन में गए। उन्हें उसी आश्रम में ले गए, जहाँ उन्होंने अस्त्रों-शस्त्रों का अध्ययन किया था। जैसे ही उनका वहाँ गमन हुआ, तो महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, और कवन्धि तीनों ने महर्षि विश्वमित्र से मिलन करने को आश्रम में प्रवेश किया और वेद की आख्यिकाए प्रकट कीं महर्षि भारद्वाज मुनि बोले कि हे राम! हे लक्ष्मण! तुम धनुर्वेद में इतने पारायण हो जाओ, जिससे तुम रूढ़िवाद को समाप्त करके, मानो देखो, एकोकीवाद का प्रसार कर सको। मेरे पुत्रों! उन्होंने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। महर्षि भारद्वाज मुनि छह माह तक वहाँ रहें। उन्होंने जल अस्त्र, वरुण अस्त्र, तथा एक ऐसे यत्र का निर्णय कराया, कि मेरे पुत्रों! जिसमें विद्यमान हो करके, यह जाना जाता है। कि पृथ्वी के गर्भ में, कितनी दूरी पर कौन-सा परमाणु है। कौन-सा खनिज तप रहा हैं कौन-सा खनिज तप करके क्या-क्या कर रहा है मुनिवरों! देखो, ये तो पृथ्वी के गर्भ वाले यत्रों को उन्होंने निर्माणित किया उन्होंने कहा कि राम! मुझे बाल्यकाल में, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस प्रकार का अध्ययन कराते रहे हैं। मेरा एक यत्र हैं जिसमें विद्यमान हो करके हम लोक-लोकान्तरों की यात्रा करते हैं। मेरे पुत्रों! उन्होंने वर्णन कराया।

भारद्वाज मुनि बोले कि जब मैं तत्त्व मुनि महाराज के द्वारा अध्ययन करता था, तो ब्रह्मचर्य काल मे ही, विज्ञान के वांगमय में प्रवेश हो गया था। लोक-लोकान्तरों में मैंने अपने यत्रों के द्वारा उड़ान उड़ी हैं इन यत्रों का निर्णय कराने के लिए मैं तुम्हारे समीप आया हूँ, देखो, यह यान जब पृथ्वी से उड़ान उड़ता है तो यह सबसे प्रथम चन्द्रमा में जाता हैं चन्द्रमा से उड़ान उड़ करके बुद्ध में जाता हैं, बुद्ध से उड़ान उड़ करके यह शुक्र में चला जाता हैं, शुक्र से उड़ान उड़ कर मंगल में चला जाता हैं, मंगल से उड़ान उड़कर रोहिणी मण्डल में प्रवेश कर जाता हैं रोहिणी मण्डल मे उड़ान उड कर मृचिका मण्डल में प्रवेश कर जाता हैं, मृचिका मण्डल से उड़ान उड़कर वशिष्ठ मण्डल में प्रवेश कर जाता हैं, वशिष्ठ मण्डल से उड़ान उड़कर अरूणधती मण्डल में चला जाता हैं, अरूणधती से उड़ान उड़कर कृतिका मण्डल में चला जाता हैं कृतिका मण्डल से उड़ान उड़कर पुष्य नक्षत्र में चला जाता हैं, पुष्य नक्षत्र से उड़ान उड़कर स्वाति वाचकेतु मण्डल में प्रवेश कर जाता हैं, वाचकेतु मण्डल से उड़ान उड़ करके, सौर मण्डल में प्रवेश कर जाता हैं, सौर मण्डल से उड़ान उड़करके मूल की आभा में प्रवेश कर जाता हैं। जब मूल की कृतिका मण्डल से उड़ान उड़ता हैं, तो यह रोहिणी केतु मण्डल में प्रवेश हो करके विचार यह कि बहत्तर लोकों का भ्रमण करके, यह यान पुनः जहाँ से उड़ान उड़ता है, वही स्थिर हो जाता हैं। जब भारद्वाज ने यह वर्णन कराया, तो राम लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए, और अपने में ज्ञान का, विज्ञान का अध्ययन करने लगे। यौगिकवाद का अध्ययन उन्होंने बाल्यकाल से ही किया था, एक यत्र हमारे यहाँ इन्द्रेश्वर यत्र कहलाता है। जिसमें विद्यमान हो करके, संग्राम भी करते हैं, मेरे प्यारे! जो अन्तरिक्ष मे भी उड़ान उड़ता रहता हैं।

तो विचार विनिमय क्या मेरे पुत्रों! ये तो गाथाएं हैं, बेटा! यह तो साहित्य हैं, जब स्मरण आता है उनके क्रियाकलाप स्मरण आते है तो हृदय गद-गद हो जाता हैं। और मैं यह कहता हूँ कि विद्यालय पवित्र होने चाहियें। गोमेध याग कौन कर रहा हैं? गो नाम प्रकृति का है, और गो मेध में अन्तर्हृदय की प्रकृति की ले कर जब नवीन-

नवीन यन्त्रों का निर्माण करता है, या वह नाना जब आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है तो बेटा! वह गोमेध याग कर रहा है। विद्यालयों में गो मेध याग होते हैं, मानो देखो, अन्धकार से प्रकाश मे लाने का नाम गोमेध याग कहलाता हैं। जो गोमेध याग करता है वही तो वैज्ञानिक है, बेटा! वही तो योगी है, वही तो राजा हैं। गो नाम प्रजा का है, मेध नाम राजा का है। जो प्रजा को अन्धकार से प्रकाश में लाता हैं, वही तो राजा गोमेध याग करता हैं। मेरे पुत्रों! देखो, गो मेध याग करने वाला बड़ा विचित्र कहलाता हैं गो की रक्षा जिस राजा के राष्ट्र में होती है, बेटा! वह राष्ट्र पवित्र होता हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में आज के वाक्यों में राजा के राष्ट्र में देखो, रावण के राष्ट्र में ऋषियों ने वर्णन कराया, कि इस समय रूढ़िवाद आ गया हैं, यह आक्रमण कर सकता है यह रूढ़िवाद में प्रवेश कर सकता हैं। इसीलिए राम, लक्ष्मण को उन्होंने बेटा! धनुर्विद्या का पारायण कराया, और अध्ययन कराया और मुनिवरों! देखो, जो ब्रह्मचारी जिस विषय का हैं, उसको उसी विषय मे निर्धारित करने का नाम बेटा! विद्यालय, गो मेध याग मे परिणत हो जाता हैं। मेरे प्यारे! मनन करने वाला जब उस विद्या का अध्ययन करता हैं, तो मानो देखो, गो मेध याग करना जानता है। वह गो मेधी है, उसे मेरे पुत्रों! विज्ञानवेत्ता बना दिया जाता हैं। जो कर्मकाण्ड में पारायण हो, उसे पाण्डितव की आभा में परिणत करा दिया जाता हैं। मेरे पुत्रों! देखो, गो मेध याग हो रहा हैं, जैसे परमात्मा का गो मेध याग हो रहा हैं ऐसे ही मानव के विचारों में गो मेध याग होना चाहिए। ऐसे ही परमात्मा के राष्ट्र में गो मेध याग होना चाहिए यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट करूंगा, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह राम, लक्ष्मण मानो उसी दण्डक वन में बेटा! देखो, गो मेध याग में पुनः परिणत हो गएं और मुनिवरों! देखो, सर्वत्र अपने राष्ट्र का भ्रमण करते रहें क्या हमारे राष्ट्र में कोई कुचरित्र तो नही है परन्तु देखो, उसको शिक्षा देना अथवा उसके आधार पर शेष चर्चाएं तो बेटा! हम कल ही प्रगट करेंगें आज का वाक् अब हमारा समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन ओ३म् मा गतं आभ्यां देवाः रथं मां आ पा गतं मानं आभ्यां रूद्राः ओ३म् श्वञ्जनाः रथं आभ्यां रेवाः अच्छा भगवन्! आज्ञा

१० यज्ञ कैसे करें ०६ ०१ १९९१

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप हैं, और याग उसका आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन हैं, और वह प्रायः उसी में वास कर रहा हैं, तो उस परमपिता परमात्मा को हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बेटा! यज्ञोमयी स्वरूप माना गया हैं। क्योंकि परमपिता परमात्मा ने इस सृष्टि का सृजन किया अथवा निर्माण किया और वह उसी में मानो रत्त एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में इस संसार को उन्होंने कटिबद्ध किया हैं। अथवा रचना की है। तो हम उस परमपिता परमात्मा की जो महती हैं, और उसका जो यज्ञोमयी स्वरूप है, उसको प्रायः अपने में हमे धारण करना चाहिए। आज का हमारा वेदमन्त्र यह कह रहा है यजूंषि ब्री वरुणां रतप्रह्वा वर्णासुतं क्योंकि वे परमपिता परमात्मा इस संसार के रचयिता हैं और इसी में मानो उसका वरण किया जाता हैं। वह हमारा वरणीय कहलाता हैं क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का सृजन किया तो बेटा! वे परमपिता परमात्मा स्वतः ब्रह्मा बने आत्मा यज्ञमान बना, पंच महाभूत उनमें कोई उद्गाता बना, कोई अध्वर्यु बना मानो कोई यज्ञपप्रह्वा देवत्वां वह होता बन करके बेटा! याग हो रहा हैं। जिसमें अपने में सुगन्ध आ रही हैं। स्वतः अपने में अपनेपन की प्रतिभा का वर्णित किया गया हैं। तो विचार-विनिमय क्या मुनिवरों! हमारे यहाँ यागां भू वर्णनं ब्रह्मणा व्रता क्या वे परमपिता परमात्मा वरणीय हैं हम जब उसे अपना वरूण बना लेते हैं अथवा उसे वर लेते हैं तो हमारा मानवीयतव महान और पवित्रतव में रत्त होता रहा हैं।

तो आओ, मुनिवरों! आज का हमारा वेदमन्त्र हमें याग की कहीं से प्रेरणा प्राप्त हो रही हैं क्या याग के ऊपर कुछ विचार-विनिमय दिया जाएं आज के हमारे वैदिक पठन-पाठन में याग के प्रति मानो नाना प्रकार के उदगार उदगम किए जा रहे हैं, अथवा उद्गीत गाया जा रहा हैं, क्योंकि उद्गीत गाना ही परमपिता परमात्मा के स्वर संगम में रत्त रहना है। जो साधक अपने साधना में और आत्म याग में लग जाते हैं और आत्मा के ऊपर वह अपने में अपनेपन में चिन्तन में लाना प्रारम्भ कर देते हैं। तो आओ, मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें याग के सम्बन्ध कुछ उद्गीत गाना अथवा कुछ विचार देने के लिए, मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता हैं जिस काल में मुनिवरों! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने विद्यालयों में ब्रह्मचारियों को नैतिक शिक्षा देते रहते थें, ये वाक् बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल में वर्णन किया आज भी मुझे स्मरण आ रहा है तो उन्होंने बेटा! देखो, जब नैतिक शिक्षा देते थें तो ब्रह्मचारियों को वह शिक्षा दे रहे थे यागां यज्ञनं ब्रह्वा व्रत्यं देवत्वा ब्रह्वा मेरे पुत्रों! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज वेद का गान गाते हुए बोले क्या प्रत्येक मानव को इस संसार में याज्ञिक बनना चाहिए। और जितने भी सुक्रियाकलाप है उन सर्वत्र का नाम याग कहा जाता हैं। हमारें यहाँ एक ही वाक् तो नही मानो वह अग्नि के मुखारबिन्दु में हव्य पदार्थों का देना भी याग हैं। माता अपने पुत्रों-पुत्रियों को महान अपने गर्भस्थल में विचार देते हुए भी याग कर रही हैं, मानो देखो, राजा राष्ट्र को उन्नत बना रहा है, और वह सुसज्जित बना करके अश्वमेध याग कर रहा है। वह भी एक याग कर रहा हैं तो यह संसार जितना भी मानवतव में सु में दृष्टिपात आता रहता है। वह सर्वत्र एक प्रकार का याग हैं। तो आओ, मेरे पुत्रों! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब याग का वर्णन किया कि उन्होंने अग्न्याध्यान करते हुए कहा हे ब्रह्मचारियों! तुम नैतिकता मे प्रवेश हो जाओ, और तुम मानो याग में निहित हो जाओ, जब मेरे प्यारे! वह याग का उपदेश दे रहे थें, उद्गीत गा रहे थे, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने वेद का मन्त्र उच्चारण किया और वेद का मन्त्र कहता है यागां भवितं ब्रह्मा वरुणासुतप्रह्वा क्या याग एक देखो, अपने में

ऊर्ध्वा में गमन कराने वाला हैं। और यह द्यौ में मानव की वाणी को शब्दों को ले जाता हैं। और द्यौ में मुनिवरों! देखो, इससे तरंगे ओत-प्रोत हो जाते हैं। और वही तरंगें तरंगित हो करके मुनिवरों! वायुमण्डल को पवित्र बनाती रहती हैं। और गृह को सुगन्धित बनाती रहती हैं। तो मेरे पुत्रों! देखो, वेद का ऋषि इस प्रकार की वार्त्ता प्रगट करता हुआ ब्रह्मचारी अपने में मानो एक यज्ञदत नाम का ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ और यज्ञदत ने कहा हे प्रभु! मैं यह जानना चाहते है। सब ब्रह्मचारी कि याग हम कैसे करें? उन्होंने कहा मानो देखो, नाना प्रकार के कोणों वाली यज्ञशाला का निर्माण किया जाता हैं, चतुष कोण में याग करो, पंचम कोण में करो, परन्तु देखो, उसके अष्ट खम्बे होने चाहिएं। चतुष खम्बे भी होने चाहिए, और उसके अन्तर्गत विद्यमान हो करके बेटा! याग करना चाहिए, और प्राणाय, उदानाय, समानाय, इस प्रकार प्राण की आहुति देनी चाहिए। क्योंकि प्राणी ही संसार में मानो सखा है, और यही मन को धारण करने वाला हैं। यह प्राण ही मुनिवरों! देखो, प्राणतव कहलाता है। यह गति है अब्रहोगत होता हैं मानो देखो, ब्राह्माण्ड को लिए हुए रहते हैं तो इसीलिए हम प्राण की आहुति दे करके और वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने ऐसा कहा जो यज्ञदता ब्रह्मे यज्ञदत ने कहा-प्रभु! कहीं ऐसा हो कि मानो देखो, हमने अष्ट खम्ब यज्ञशाला के निर्माण करने का अवसर न प्राप्त हो वह हमें सुविधा न प्राप्त हों, तो मानो हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा तुम अग्न्याध्यान करो, साकल्य ले करके और तुम समिधा के द्वारा याग करो और कहो कि प्राणाय स्वाहाः, अपानाय स्वाहाः, व्यानाय स्वाहाः, उदानाय स्वाहाः, समानाय स्वाहाः कह करके मुनिवरों! देखो, हूत करने की अपने में धारणा बनाओ, और उसे इस मानो क्रिया में लाने का प्रयास करों। वह अग्नं ब्रह्मणा क्योंकि अग्नि संसार को उष्ण बनाती रहती हैं। और यही तक जब माता के गर्भस्थल में शिशु होता हैं, हम जैसे शिशु होते हैं तो वहाँ मानो देखो, वहाँ भी अप्रताम वहाँ भी देखो, वह प्राण में सबको उष्ण बनाती रहती हैं। और उष्ण बना करके पनपाती रहती हैं। इसीलिए अग्नि का व्यवधान करो और समिधा के द्वारा साकल्य के द्वारा अग्नि को चैतन्य बना करके वह देवताओं का मुख कहलाता हैं। मुनिवरों! देखो, देवत्वां नाम भू वर्णनं ब्रह्मा वह देवता कहलाता है वह अग्नि देवताओं का मुख हैं। और उसके मुखारबिन्दु मे साकल्य समिधा को प्रदान किया जाता हैं यज्ञदत ब्रह्मचारी बोले कि हे प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यदि मानो देखो, कही अग्नि भी न हो, और साकल्य समिधा भी न हो, तो हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! वेद का एक मन्त्र कहता है अग्नां भू वर्णनं व्रती देवत्वां आपां ब्रह्मे आपां रूद्रा आपां गतं ब्रह्मा वर्णसुते मेरे प्यारे! कहीं अग्नि भी नही है साकल्य भी नही हैं, और कहीं समिधा भी नही हैं, तो मुनिवरों! देखो, जल से उसका प्रोक्षण कर सकते हों और कहता है जलं ब्रह्मे व्रतं मानो कहता है प्राणाय स्वाहाः, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा कह करके हूत करना चाहिए। मेरे प्यारे! जल का प्रोक्षण करो अंजलि में ले करके मन्त्रों का उद्गीत गाते हुए कहता है, हे प्राणं ब्रह्मे वर्णं वाचन्नं स्वाहा ऐसा उद्गीत गाना चाहिए मेरे प्यारे! देखो, जब इस प्रकार यागं ब्रह्मे अस्ते यज्ञं ब्रह्मे मेरे पुत्रों! देखो, जल का प्रोक्षण करना चाहिए। जल के द्वारा याग करना चाहिए। क्योंकि यह जल ही है माता के गर्भस्थल में जब हम जैसे शिशु होते हैं, तो मानो देखो, माता के गर्भस्थल में शिशु का ओढ़न भी जल है। और देखो, बिछौना भी जल हैं। और पांशे भी जल ही बने हुए हैं, और वह जल में ही मुनिवरों! देखो, अपनी आभा को प्राप्त करता रहता हैं। कैसा उस मेरे प्यारे! प्रभु का यह विज्ञानमयी जगत है, मेरी माता नही जानती क्या बाल्य का आसन क्या है? और उसका ओढ़न क्या हैं? तो बेटा! वह आपो में रहता है आपो में मानो देखो, गमन करता रहता हैं तो मुनिवरों! देखो, ऋषि ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! तुम जल से प्रोक्षण करो और अंजलि में जल ले करके कहो कि प्राणाय, उदानाय, समानाय, इस प्रकार तुम हूत करने के लिए तत्पर हो जाओ। ब्रह्मचारी यज्ञदत ने कहा हे प्रभु! यह वाक् भी हमने स्वीकार कर लिया हैं। परन्तु हम यह जानना और चाहते हैं भगवन! यदि कही हमे

जल भी प्राप्त न हो, तो कैसे हम याग करें? उन्होंने कहा कही जल भी प्राप्त न हो तो मानो पृथ्वी की रज ले करके कहो क्या प्राणाय स्वाहा क्योंकि पृथ्वी हमारा देवतव हैं। यह पृथ्वी वसुन्धरा बन करके रहती हैं इसके गर्भ में नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ विद्यमान होता हैं। जिससे मानव का जीवन संचालित होता हैं समाज में एक महानता का जन्म हो जाता हैं और जिस भी काल में संसार में विज्ञान पनपा हैं उस विज्ञान के स्वरूप में बेटा! देखो, पृथ्वी का वर्णन सबसे पूर्व किया जाता हैं पृथ्वी के स्वरूप को जाना जाता हैं क्योंकि इसमें गुरूतव हैं और उन परमाणुओं को ले करके मुनिवरों! देखो, यज्ञं ब्रह्मा रज ले करके कहो कि प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा उद्गीत गा करके बटा देखो, हूत करना चाहिए मेरे प्यारे! देखो, यह गुरूतव हैं, इसकी रज को ले करे मानो हमें आहुत करना चाहिए। और प्राण के समीप मानो उसकी आभा में परिणत रहना चाहिए तो मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी ने कहा हे प्रभु! कहीं ऐसा भी होता हैं कहीं पृथ्वी की रज भी प्राप्त न हो याग कैसे करें? उन्होंने कहा यदि तुम्हें पृथ्वी की रज भी कहीं प्राप्त न हो और अग्नि भी न हो और मानो जल भी न हो और यह पृथ्वी ब्रह्मणतव भी न हो जिससे संसार का प्रायः पृथ्वी रूप में निर्माण होता हैं। और यह पृथ्वी मानो देखो, वृत्ति कहलाती हैं। यह नाना प्रकार की एक पृथ्वी नही ब्रह्माण्ड में नाना पृथ्वियाँ कहलाती हैं नाना मण्डल कहलाते हैं मेरे प्यारे! सौरमण्डलों की प्रतिभा का भी प्रायः वर्णन आता रहा हैं तो इसीलिए कही पृथ्वी भी कही रज भी न प्राप्त हो तुम पर्वतों की असुता में प्रवेश हो जाओ और रज भी न प्राप्त हो तुम उस समय एकान्त स्थली पर अपने आसन को लगा करके और कहो कि प्राणाय स्वाहा, हे प्राण तू ही तो मेरे जीवन का मानो आधार हैं यदि प्राण गति नही रहेगी। तो मानव का जीवन शून्यतव को प्राप्त हो जाएगा। हे प्राण तेरा ही मानो देखो, प्राण का स्वरूप हैं तेरा ही देखो, अपान का स्वरूप है। तू ही मानो देखो, व्यान का स्वरूप है, और तू मानो देखो, वह जो समान का स्वरूप बन करके उदान के क्षेत्र में प्रवेश हो जाता हैं। हे प्राण! तू ही तो मेरा सखा हैं, पंच रूपों में तेरी गतियां होती रहती हैं, और पांच गति और बन जाती हैं। मानो देखो, नाग, देवदत, धनंजय, कुरू और कृकल यह दस प्राण कहलाते हैं, पांच प्राण है, पांच उप प्राण कहलाते हैं। तो यह प्राणों का मानो देखो, सब वृत हो रहा है इसको कह करके कैसे हूत करो जिससे देखो, तुम्हारा जीवन हूत में प्रवेश हो जाएं। और मानवीयतव में मानो अवृत्तियों में रत्त हो जाएं। तो मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि अपने उद्गीत गाता हुआ कहता हैं, उच्चारण करता हुआ, हे ब्रह्मचारियों! तुम याग करो देखो, मन के द्वारा याग करो मन, कर्म वचन मानो इन तीनों को एक सूत्र में लाते हुए यह तीन मनके हैं जो एक सूत्र के मनके कहलाते हैं इनको अपने में धारयामि बना करके और उसके द्वारा तुम हूत करने के लिए तत्पर हो जाओ। मन से और मनं ब्रह्मे देखो, मन प्राण से और प्राण उदान से सम्मिलत हो करके अपनी मानो देखो, मानवीयता वह गाता रहता हैं तो विचारवेत्ता कहते हैं तो याग होना चाहिए परन्तु देखो, शान्त मुद्रा में विद्यमान हो करके अपना जो हृदय हैं। हृदय का समावेश होना चाहिए उनके द्वारा बेटा! जब याग करता हैं तो हृदय को उद्गीत रूप में बनाता हैं, यज्ञमान को कहता है हे यज्ञमान! तेरा हृदय पवित्र हृदय पवित्रता में रत्त रहना चाहिए जब वह याग में परिणत हो जाता हैं तो मानो देखो, तेरा दिव्यतव द्यौ लोक को प्राप्त हो जाता हैं। यहाँ बेटा! याग के ऊपर ऋषि-मुनियों ने बड़ा अध्ययन किया है यहाँ बेटा! वैशम्पायन ने तो बहुत ही अध्ययन किया हैं और शिकामकेतु उद्दालक गोत्र के ऋषियों ने बड़ा अध्ययन किया हैं महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने भी चौबीस कोंणों से ले करे और द्विकोण के यज्ञशालाओं में याग होता रहा हैं बेटा! मैं उन यागों में तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ यहाँ ऋषि-मुनियों ने इस ब्रह्माण्ड को मापते हुए बेटा! देखो, इसको यज्ञशाला के रूप में परिणत किया हैं क्योंकि वैदिक साहित्य हमारा नाना प्रकार के याग मे परिणत कर रहा हैं, और उसकी प्रतिभा में मानो देखो, प्रतिष्ठित हो रहा हैं तो आओ, मेरे प्यारे! आज का विचार केवल यह कि हम देखो, मुनिवरों! प्रत्येक रूप में

याज्ञिक बनें एक मेरी प्यारी माता हम जैसे अपने गर्भस्थल में हम जैसे शिशु हैं परन्तु वह याग कर रही हैं, वह मानो देखो, प्राण और अपान का मिलान मिला करके गर्भस्थल की आत्मा से वार्त्ता प्रगट करती हैं। तो उस समय महान पुत्रों का जब जन्म होता हैं तो बेटा! राष्ट्र और समाज पवित्र बनते रहते हैं। तो विचार-विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, आज का हमारा विचार क्या हम परमपिता परमात्मा की महती और यज्ञं ब्रह्मा कृतं याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे ब्रह्मचारी! यज्ञदत तुम याग करो क्योंकि याग प्रत्येक दशा में तुम्हें विचारों का याग करना चाहिए जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाएं और तुम्हारे पवित्र चित्र मानो देखो, अन्तरिक्ष में रमण कर जाएं और द्यौ में प्रवेश हो जाएं जिससे तुम्हारे चित्र तुम्हारे अन्तर्हृदय में प्रवेश हो करके तुम्हें महान बना सकते हैं आज बेटा! मैं याग के गूढ़तम रहस्यों में तुम्हे ले जाना नही चाहता हूँ। विचार-विनिमय केवल यह कि आज का हमारा वाक् यह कहता है याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारियों को नैतिक शिक्षा देते हुए यह कहते हैं देवां ब्रह्मणे हे गो वर्णसुतां तू याग करो क्योंकि हमारे वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन होता रहा हैं। जैसे अग्निष्टोम याग है, वाजपेयी याग हैं, अश्वमेध याग है, अजामेध याग हैं। मेरे पुत्रों! देखो, यहाँ गो मेध और भी नाना देखो, पुत्रेष्टि याग हैं भिन्न-भिन्न जैसे वृष्टि याग का वर्णन भी आता रहा हैं यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन होता रहा हैं। क्योंकि परम्परागतों से ही, वैदिक साहित्य में मन्त्रों में नाना प्रकार के यागों की प्रतिभा का वर्णन आता रहा हैं। आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही देने आया हूँ केवल यह कि हमारा जीवन प्रायः याग में होना चाहिए। याग हमारे जीवन का एक अंग होना चाहिए। हमारा आन्तरिक विचार होना चाहिए। जिससे विचारों से वायुमण्डल पवित्र बन जाता हैं, और प्रदूषणं ब्रह्मे देखो, बेटा! मुझे स्मरण हैं एक मानो देखो, पृथ्वी माता वसुन्धरा को जानना हैं और वसुन्धरा के गर्भ में जो नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ पनप रहा हैं। उसे जानना है जान करके विज्ञान के वांगमय मे प्रवेश होना हैं। तो बेटा! आज का विचार-विनिमय क्या प्रत्येक मानव को अपनें में याग में क्योंकि उन्होंने परमपिता परमात्मा ने एक-एक वेदमन्त्र में बेटा! ब्रह्माण्ड को माप दिया क्योंकि याग एक ब्रह्माण्ड की वृत्ति हैं क्योंकि जितनी भी रचना वह याग के द्वारा होती हैं। और वह अपने में याग होते रहें हैं, क्योंकि याग प्रत्येक दशा में मानव की प्रतिभा को ऊँचा बनाता हैं राष्ट्र को उन्नत बनाता हैं तो बेटा! देखो, आज का विचार अब यह सम्पन्न होने जा रहा है कि मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः- ओ३म् देवां भू वर्णनं ब्रह्मा वाचन्नमाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी गागर में सागर की कल्पना कर रहे थें। गागर में सागर को भरण कर रहे थे परन्तु इनके जो उदगार है, इनके जो विचार हैं वह हमारे अन्तःकरण को स्पर्श करने वाले हैं। आज मैं विशेषता नही केवल पूज्यपाद गुरुदेव के विचारों की प्रशंसा करने भी नही आया हूँ केवल विचार यह कि आज जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही हैं आकाशवाणी जा रही है वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ हैं और मेरा अन्तरात्मा प्रायः यागों में प्रशंसनीय रहता हैं। क्योंकि यागाम भू वर्णनं यह जो आधुनिक काल प्रारम्भ हो रहा हैं। पृथ्वी मण्डल पर यह एक प्रकार का वाममार्ग हैं। वाममार्ग उसे कहते हैं जो उल्टे मार्ग पर गमन करता हैं, और जहाँ जिन गृहों में याग होता हैं मानो देखो, याग का अभिप्रायः है कि द्रव्य का सदुपयोग करना हैं और संगतिकरण करना हैं, और दानेषु की प्रवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। तो विचार क्या है कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत कराना चाहता हूँ क्या जहाँ यह हमारी वाणी जा रही हैं। पूज्यपाद शरीर के द्वारा मानो देखो, वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ हैं। मेरा अन्तरात्मा यज्ञमान के साथ रहता हैं और मैं यह कहता रहता हूँ, कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहें, और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहें। क्योंकि द्रव्य का सदुपयोग होना ही संसार में बहुत अनिवार्य हैं। जहाँ द्रव्य का सदुपयोग होता है, वहाँ द्रव्य का भरण हो जाता हैं, और जहाँ द्रव्य

का दुरूपयोग होता हैं एक समय आता है कि वहाँ से देखो, वह अप्रता ब्रीहि वह द्रव्य वहाँ से प्रस्थान कर जाता हैं। आधुनिक काल का मैं कोई विशेष विवेचना तो मैं नही करूंगा केवल विचार-विनिमय क्या मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत कराना चाहता हूँ। हमारे यहाँ देखो, राष्ट्र के सम्बन्ध में यह जो परम्परा मानो देखो, इस समय वर्तमान का जो काल चल रहा हैं, यह बड़ा विचित्र काल हैं, मैं यहाँ मैं उस काल को जहाँ देखो, सुरा और सुन्दरी और द्रव्य की लोलुपता में जहाँ यह मानव कटिबद्ध हैं। वहाँ यह मानो देखो, वाममार्ग की प्रथा को अपने में धारण कर रहा हैं, क्योंकि यह व्रत होना चाहिए मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से अवगत कराया हैं, पूज्यपाद मैंने कई काल में कहा है कि मानव मानव का भक्षण कर गया हैं, क्योंकि विचारों में मानो एक विडम्बना होने से, विचारों में मानो देखो, एक प्रकार की क्रियता में देखो, अन्तर्द्वन्द्व आने के कारण एक मानव मानव का भक्षक बन रहा हैं रक्तोंमयी क्रान्ति का संचार होने जा रहा हैं, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत कर रहा हूँ, कि-प्रभु! इसके मूल में क्या है? ऐसा क्यों हो रहा हैं? यह प्रश्न मानो देखो, प्रत्येक मानवीय हृदयों में और हमारे अन्तर्हृदयों में भी प्रवेश होता रहा हैं। यह इसीलिए कि अधिकार अनाधिकार को नही विचारा जा रहा हैं। जहाँ भी अधिकार और अनाधिकार को नही विचार जाता वहाँ प्रायः देखो, रक्त भरी क्रान्तियां आती रहती हैं। और द्रव्य की लोलुपता में मानव अपने कर्तव्य में विहिन हो जाता हैं विज्ञान का दुरूपयोग होने जा रहा है। इसके मूल में केवल देखो, एक वाममार्ग की प्रथा बन गई हैं। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं आपको निर्णय दे रहा हूँ, मेरे यहाँ जिस राजा को देखो, पुरातन काल में जब निर्वाचन परम्परा निर्वाचन प्रणाली देखो, ब्रह्मवेत्ता हों और निश्चित हो ऐसा जो ब्रह्मज्ञानी राजा का जब निर्वाचन होता तो यह समाज मानो ब्रह्मवेत्ता बन करके, और ब्रह्म में परिणत हो करके देखो, समाज को उन्नत बनाया जाता है, परन्तु देखो, जहाँ प्रायः देखो, अधिकार अनाधिकार को नही विचारा जाता वहाँ रक्तोमयी क्रान्ति का संचार हो जाता हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का मैंने वह काल दृष्टिपात किया, जब राष्ट्र का निर्वाचन होता, तो राष्ट्र अपने मे बुद्धिमान ब्रह्मवेत्ता और जिज्ञासा देखो, ब्रह्मणां ब्रहा कृति देखो, मुझे स्मरण है कि ब्रह्मवेत्ता पुरोहित देखो, उस राजा का निर्वाचन करता रहा हैं और जब बुद्धिमान देखो, निर्वाचन करने वाले निर्वाचन प्रणाली पवित्र होगी तो उस समय राष्ट्र भी पवित्रता को प्राप्त होता रहेगा मुझे वह काल देखो, पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे स्मरण कराया क्या राम का जब राज्याभिषेक हुआ था तो उस समय देखो, राम में देखो, विवेकी पुरूषों ने देखो, उनका राज्याभिषेक किया एक स्थली पर पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया एक समय क्या महात्मा कुक्कुट मनि महाराज और महर्षि देखो, और भी नाना ऋषिवर विद्यमान महात्मा भुंजु और जहाँ देखो, वैशम्पायन और भी नाना ऋषि देखो, कोटल ब्रहा देखो, वह एक रावण का राज्यभिषेक होना था महात्मा रावण पुलत्स्य ने कहा कि रावण का राज्यभिषेक करो उन्होंने कहा ब्रह्मणे व्रतं देखो, महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने अंगिरस ने कहा था क्या मैं इसका राज्यभिषेक नही करूंगा। क्योंकि मैंने इसका मस्तिष्क अध्ययन कर लिया हैं, और इसके मस्तिष्क में मानो देखो, वह तरंगें नही हैं। जो राष्ट्र को ऊँचा बना सकें यह राजा विज्ञान दे सकता हैं परन्तु यह नाना प्रकार के यन्त्र दे सकता हैं अन्तरिक्ष में उड़ाने उड़ सकता हैं परन्तु समाज को यह चरित्र नही दे सकेगा। इसीलिए मैं रावण का राज्यभिषेक नही करूंगा। इसीलिए विचार आता है कि महात्मा पुलत्स्य मानो अपनें में जब मानो निर्वाचन करते थे तो निर्वाचन के विरोध में मानो उसको तिलांजलि दी गई हैं। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह सब जानते हैं क्या मानो देखो, यह सर्वत्र साहित्यिक विचार धारा है। क्या मानव को विचारना है कि यदि क्या रक्तमयी क्रान्ति को पुनः से शान्त करना होगा तो मानो निर्वाचन प्रणाली का अवगत ब्रहे देखो, उसका परिवर्तन होना है, उसका परिवर्तन जब हो जाएगा तो राष्ट्र पुनः से उन्नत बन सकता हैं। जब विज्ञान में विज्ञानता आ जाएगी दुरूपयोगता नही रहेगी जब मेरी पुत्रियों के अश्लील चित्रों से मानव के चरित्र के ऊपर प्रहार किया जा रहा हो देखो, यह आधुनिक काल

मुझे प्रिय नही हैं। महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने यही तो कहा था और देखो, भारद्वाज की सभा में एक समय महर्षि व्रेती मुनि महाराज ने वैशम्पायन ने यह कहा था कि राष्ट्र को यदि उन्नत बनाना हैं, तो कर्तव्यवाद का पालन किया जाएं और कर्तव्यवाद राष्ट्र को उन्नत बनाता हैं और जहाँ अधिकार की पुकार होती है। तो अधिकार प्राप्त हो जाएं। यह भी अधिकार प्राप्त हो जाएं उस अधिकार में मानव देखो, रक्तमयी क्रान्ति में परिणत हो जाता हैं क्योंकि अधिकार कोई आज देखो, सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक कोई अधिकार को कोई मानो देखो, पूर्ण नही कर सका हैं। अरे, मानव तू देखो, अपने में कर्तव्य का पालन कर। तुझे अधिकार स्वतः अधिकार तो कर्तव्य के साथ में निहित रहता है। इसीलिए देखो, जहाँ अधिकार की पुकार रहती हैं वहाँ रक्तोमयी क्रान्ति आ जाती हैं। और वहाँ ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता हैं। ब्रह्मचारियों का विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है। तो इसीलिए चिज्ञान का दुरूपयोग नही होना चाहिए, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत करा रहा हूँ। क्या समाज को देखो, उन्नत बनाना है, क्या ब्रह्मवेत्ता देखो, राजा होना चाहिए। जितने भी देखो, राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार के ईश्वर के नाम पर रूढ़ि नही रहनी चाहिए। जब नाना प्रकार की देखो, धर्म को देखो, रूढ़ि में परिणत किया जाता हैं, और रूढ़िवाद आ जाता है, तो समय आता है कि रूढ़ि रूढ़ि के रक्तोंमयी देखो, परिणत हो जाती हैं। यह वाक् ने कहा था वैशम्पायन ने भी और यह महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज की सभा में देखो, यह विचार दिया और यह विचार मुनिवरों! देखो, महर्षि कौटिल्य प्रहा मुनि ने भी यह कहा गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज का भी यही मन्तव्य रहा।

तो विचार-विनिमय केवल हमारा यह है क्या पूज्यपाद गुरुदेवत तो कई समय यह उपदेश देते रहते हैं। क्या राजा ब्रह्मवेत्ता हो और जितने रूढ़ियों के आचार्य हैं, इन सबको एकत्रित करना चाहिए। उनका शास्त्रार्थ होना चाहिए, और जो धर्म और देखो, जो विज्ञान के ऊपर जो विचारधारा जो दर्शनों के ऊपर संतुलित हो जाएं उस विचारधारा को स्वीकार करते हुए, उसी को मानो देखो, हमें अग्रणीय बनाना हैं। तो इस प्रकार जब राष्ट्र का कल्याण हो सकता हैं, अन्यथा नाना प्रकार की रूढ़ियाँ जब ईश्वर के नाम पर देखो, जब परिणत हो जाती हैं, वही रूढ़ियाँ देखो, राष्ट्र का विनाश करती हैं। वही रूढ़िया राजा देखो, प्रजा के वैभव को अपने में संग्रह करने वाला बन जाता हैं। तो इसीलिए विचार आता रहता है मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई कालों में कहा हैं यदि राष्ट्र को उन्नत बनाना है। तो उसे धर्मज्ञ और मानो विवेकी पुरूषों का निर्वाचन हो जब अपठित समाज देखो, राजा को चुनौती देती हैं, तो राजा भी अपठित होता हैं। और वह राजा जब अपठित होता है तो समाज का कल्याण नही कर सकता विचार आता है कि वह उसी प्रकार की वृत्तियों में रत्त रहेगा आहार जब राजा का पवित्र बनेगा, और व्यवहार में देखो, जब ब्रह्मज्ञान आ जाएगा, उसी समय राष्ट्र का राष्ट्र उन्नत हो जाएगा, तो यह आज का विचार मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से अब आज्ञा पाऊंगा मैं कोई विशेष चर्चा या राष्ट्र की चर्चा देने नही आया हूँ, विचार केवल यह कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मानो देखो, याग के ऊपर अपना मन्तव्य दिया मैं भी आज देखो, मेरा अन्तर्हृदय रहता है, वह यज्ञमान के साथ हैं हे यज्ञमान! मेरे अन्तर्हृदय की यह पुकार है कि तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहें, और देखो, याग जैसे देवतं तुम्हारे गृह में तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहें। ऐसी मेरी कामना रहती हैं ऐसा मेरा पूज्यपाद गुरुदेव से भी यह मन्तव्य रहता हैं, क्या मानव का सुवृत्तियों में रत्त रहना चाहिए। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। क्योंकि वह जो इनका मैंने अन्तर्ह्म ब्रहे जो याग के ऊपर इन्होंने प्रेरणा दी याग के ऊपर इनका विचार-विनिमय हुआ तो इसके साथ मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा क्योंकि राष्ट्र को उन्नत बनाना है तो राजा ब्रह्मवेत्ता हो और वह जो नाना रूढ़ियाँ बनी हुई है। आचार्यों का एकत्रित हो करके राजा में मध्यस्थता हो और मध्यस्थ हो करके जो राष्ट्र को विनाश के मार्ग पर ले जाएगा मेरा मन्तव्य रहा हैं पूज्यपाद गुरुदेव ने ऐसा ही वर्णन कराया हैं तो आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः- मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना मन्तव्य दिया इनके विचारों में राष्ट्र के प्रति कितनी दाह हैं कितनी विडम्बना है और कितनी कर्तव्यवादिता के ऊपर बल देते हैं, इसीलिए तो समय वह आयेगा जब राष्ट्र और समाज अपने धर्म और मानवीयता को विचारने लगेगा, क्योकि धर्म मानव की इन्द्रियों में निहित रहता है। और मानव जब इन्द्रियों के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ कर देता है। तो धर्म मानवीयता मानो देखो, उसके समीप आ जाते हैं। जब मानव अपनी इन्द्रियों को धर्म को विचारने लगेगा नेत्रों का धर्म है। सुदृष्टिपान करना घ्राण का धर्म है सु सुगन्धि को ग्रहण करना देखो, त्वचा का धर्म है, सु प्रेम को ग्रहण करना और सु शब्दों को श्रोत्रों में और देखो, वाणी जब सत्य उद्गीत गाने लगेगी तो वह धर्मज्ञ बन जाएगा। तो धर्म की मीमासां करने वाला बेटा! मन्त्र यही कहता है प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है। वह धर्म है और उस धर्म को हमें अपने क्रियात्मकता में लाना हैं, यह आज का विचार अब सम्पन्न होने जा रहा हैं, मेरे प्यारे महानन्द जी के हृदय में एक बड़ी विडम्बना रही है, परम्परागतों से ही, वह विडम्बना विडम्नित प्रहे तो यह वाक् उनका बड़ा प्रिय है इसी प्रकार की विचारधारा सृष्टि के मनु वंश में ले करके बहुत क्रियात्मकता में रही हैं अब का तो इतना प्रतीत नही है। परन्तु बहुत समय दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। अब यह वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन। ओ३म् देवाः आभ्यां रथं माहं गायन्त्वा ओ३म् रथं दिव्य.... ०६ ०१ १९९१

११ अन्तःकरण की व्याख्या ११-०१-१९९१

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जो परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है, और सर्वज्ञ है। हम उस देव की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें। हमारे यहाँ ऋषि-मुनि अपनी एकांत स्थलियों पर विद्यमान हो करके उस परमपिता परमात्मा की महती और उसके विज्ञान पर प्रायः विचार-विनिमय करते रहे हैं, उनका अध्ययन बड़ा विचित्रम रहा है। ऋषि-मुनि जब अपने में विचार-विनिमय प्रारम्भ करने लगते हैं तो प्रायः वह गागर में सागर की कल्पना करने लगते हैं, एक वेद का शब्द ले करके सर्वत्र ब्रह्माण्ड की विवेचना में लग जाते हैं। वे जब ब्रह्माण्ड की विवेचना करने लगते हैं, तो वेद का मन्त्र और शब्द एक सूत्र में सूत्रित हो करके मानव को पवित्र बनाना प्रारम्भ कर देता है। इसीलिए मानव जब भी किसी चिन्तन में लगे तो उसका मन, कर्म और विचार ये तीनों एक ही सूत्र में सूत्रित होने चाहिएं। चिन्तन रूप में रमण करता मानव अपनी आभा में प्रकट हो जाता है।

ऋषि-मुनि जब वेदमन्त्रों के ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ करते हैं, तो उनके अध्ययन करने की शैली बड़ी विचित्र रही है। वे पिंड को ब्रह्माण्ड से और ब्रह्माण्ड को पिंड से, दोनों का प्रायः समन्वय करते रहे हैं और जानते रहे हैं कि यह ब्रह्माण्ड अपने में क्या है। यह भी विचारते रहे हैं कि इनका विज्ञान क्या है। विज्ञान में भी दो प्रकार की अनुपम धारा मानी गई हैं। एक आध्यात्मिक विज्ञान कहलाता है और दूसरा भौतिक विज्ञान कहा जाता है। भौतिक तथा आध्यात्मिक के विज्ञान के समन्वय में प्रायः ऋषिगण अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके वृत्तियों में रत्त रहे हैं। विचार आता रहता है कि इनके ऊपर अन्वेषण होना चाहिए क्योंकि वही मानव को मानवीयता में रमण कराता रहता है।

आओ, बेटा! आज का वेदमन्त्र हमें क्या कह रहा है? हम उस परमपिता परमात्मा की महती को सदैव जानते हुए, मानो यागाम भवितम ब्रह्मम व्रत्तम। हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों की पवित्र शैली में याग के बहुत से प्रकार रहे हैं। वैदिक ऋषि जब याग के ऊपर चिन्तन करने लगे तो उन्होंने कई प्रकार के यागों का चयन किया। अग्निष्टोम याग, वाजपेयी याग, कन्या याग, धर्नुयाग, वृष्टियाग, अजामेध याग, अश्वमेध जैसे और भी भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में रहा है। आज मैं उस साहित्य में विशेष नहीं जाना चाहूँगा। विचार-विनिमय केवल यह कि आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान, दोनों को एक सूत्र में लाने का उन्होंने प्रयास किया। जब भौतिक विज्ञान का आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश हो जाता है तो मानो, प्रकाश हो जाता है और उस प्रकाश में मानव सदैव रत्त रहा है। आओ, बेटा! आज मैं तुम्हें एक ऋषि के आसन पर ले जाना चाहता हूँ। उन्होंने इस याग को अपने जीवन में कितने रूप में वर्णन किया हैं। मैंने यह वाक्य कई कालों में तुम्हें प्रकट भी किया है, आज भी मुझे स्मरण आ रहा है।

मेरे पुत्रो! एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महारा के यहाँ नाना ब्रह्मचारी विद्यमान थे। उन ब्रह्मचारियों को प्रातःकाल से गार्हपथ्य और गृहपथ्य नाम की अग्नियों का वर्णन करते रहते थे क्योंकि उसमें नैतिकता है, सार्थकता है। वे उपदेश देते उच्चारण कर रहे थे कि हे ब्रह्मचारियों! तुम अपनी गृहपथ्य अग्नि का पूजन करो क्योंकि वह अग्नि तुम्हारे समीप प्रकाशमय रहती है और वह अग्नि तुम्हें अग्रणीय बना करके प्रकाश में लाती हुई अन्धकार से पार कर देती है। ऋषि ने जब ऐसा वर्णन किया तो यज्ञदत्त ब्रह्मचारी ने कहा कि हे प्रभु! वाक्य तो आपका यथार्थ है, परन्तु इन विचारों में मेरा एक प्रसंग रहता है कि हम याग कैसे करें? याग किस प्रकार किया जाता है और कितने

होताओं के द्वारा याग करना चाहिए क्योंकि वेद का ऋषि प्रत्येक दशा में अपनी आभा में रमण करना चाहता हैं, यज्ञदत्त ने जब ऐसा कहा तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने एक वेदमन्त्र का उद्गीत गाया यस्नाम् ब्रही ऋता सुगधः व्रणा । वेद की आख्यिका उन्होंने वर्णन की और कहा कि हे ब्रह्मचारियों! जब तुम याग के लिए उपस्थित होगे तो तुम्हें यह प्रतीत होगा कि याग में कितनी अनूठी क्रियाकलापता, उसमें कितनी महानता रहती है और वह शब्द को कहाँ ले जाता हैं और मानवीय चित्र को भी कहीं का कहीं ले जाता है। जब ऋषि ने यह वर्णन किया तो उन्होंने कहा कि हे प्रभु! उसे ही तो हम जानना चाहते हैं। अमृताम् भूः वर्णन ब्रह्मा वर्त्तत्वताः, क्योंकि यज्ञमान यह चाहता है कि मेरा हृदय पवित्र हो और गीत गाने वाला भी हो। वह यह चाहता है कि वाणी पवित्र हो। उद्गीत गाने वाला उद्गाता चाहता है कि मेरा शब्द द्यौ में प्रवेश हो करके मुझे ही प्राप्त हो। ब्रह्मा कहता है कि ब्रह्म ब्रद्धा कृत्तमम देवाः, मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाए और अध्वर्यु कहता है कि वह सर्वत्र कुबेर बन करके इसका स्वामित्व बन जाए।

चौबीस स्तम्भ

बेटा! यह विचारधारा याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों से कही और बोले कि हे ब्रह्मचारियों! तुम गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करो। यज्ञदत्त ने कहा कि-प्रभु! हम वही तो जानना चाहते हैं कि कितने होताओं से याग करें? वेद के ऋषि ने कहा, यसुतम चतुषम् ब्रह्मा वर्णम एको देवतवताः कि इसमें चौबीस होताओं के द्वारा यज्ञमान याग करता है। चौबीस होता कौन से होते हैं, जिसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड गुथा हुआ रहता है। जैसे प्राणी एक दूसरे में गुथा हुआ है, जैसे एक परमाणु अपनी धाराओं में गुथा हुआ है। इसी प्रकार चौबिस होताओं से यज्ञमान गुथा हुआ रहता है, कटिबद्ध रहता है, इसी में निहित रहता है। उन्होंनें कहा कि-प्रभु! यही तो हम जानना चाहते हैं कि वे चौबिस होता कौन से होते हैं, जिनके द्वारा यज्ञमान याग करने वाला बने। उन्होंने कहा यही तो विशेषताएं हैं जहाँ आध्यात्मिक और भौतिक वादों का समन्वय किया है। जैसे मानव गृह के निर्माण में खम्भों का निर्माण अनिवार्य है इसी प्रकार जब यज्ञमान यज्ञ करता है, तो उसके चौबीस स्तम्भ कहलाते हैं। मेरे प्यारे! यह चौबीस स्तम्भ कौन से हैं? वेद का ऋषि ब्रह्मचारियों को नैतिकवाद की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि तुम आध्यात्मिक बनो जिससे मानव की आन्तरिक और बाह्य दोनों की प्रवृत्तियाँ बनती हैं। तुम आध्यात्मिक और भौतिकवाद, दोनों का अपने में समन्वय करते रहो और यह जान करके वृत्तियों में रत्त हो जाओ।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि ये चौबिस होता, जो अन्तःकरण की आभा में निहित रहते हैं, इसे विस्तार से जानो। जैसे एक परमाणु में से परमाणु का निकास होता रहता है, अणु में से अणु का निकास होता रहता हैं, विस्तार रूप धारण कर लेता है इसी प्रकार अमृताम देवत्वाम लोकाम हिरण्यम वृथा वेदाम जगत प्रद्धे लोकाम, ऐसा वेद के ऋषि ने कहा कि ये चौबिस होता कहलाते है। दस प्राण है, दस इन्द्रियाँ हैं, मानो पांच कर्मेन्द्रिया, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ उसके रूप में रत्त रहती हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से गुथा हुआ यह हमारा शरीर दृष्टिपात आता रहता है। सृष्टि के पिता ने जब संसार का सृजन किया और मानव समाज का निर्माण किया तो उस समय वह भी एक प्रकार की यज्ञशाला है। ब्रह्माण्ड की नाभी यह पृथ्वी मानी गई है। इसी प्रकार वह प्राणम ब्रह्माः वृत्तम, मानव का शरीर है, ब्रह्माण्ड है, आन्तरिक और बाह्य, दोनों जगत को पवित्रता में लाया जाता है।

मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तो नहीं करूंगा गम्भीर रहस्यों में जाना नहीं चाहता हूँ, केवल यह कि यज्ञशाला के चौबिस होता जब उसके समीप होकर याग करते हैं, तो वह अपनी वाणी को द्यौ में पहुंचा देता हैं। वह अपनी वाणी को भूः में नहीं, भुवः में नहीं, द्यौ में ले जाता है, और यह द्यौ से उन्हीं को प्राप्त हाती रहती है, तो उसमें पवित्रता आ जाती है। उन्होंने कहा कि संभव ब्रह्मणों, मानो हम चौबिस होताओं के द्वारा याज्ञिक बनें और ऐसा याग करें जिससे हमारा बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों पवित्र बन जाएं, हमारे हृदय में एक मानवता की ज्योति

जागृत हो जाए, ऐसा वेद का मन्त्र कहता है। उन्होंने मानव शरीर के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ किया।

अन्तःकरण की वृत्तियां

उन्होंने कहा कि वह जो चतुष अन्तःकरण कहलाता है, इसमें सर्वत्र जितनी भी कर्म वृत्तियां हैं, वे सब इसमें निहित रहती हैं। बेटा!। मुझे स्मरण आ रहा है, एक समय राजा रावण और कुक्कुट मुनि महाराज का संवाद हुआ था। रावण ने ऋषि से प्रश्न किया कि महाराज! मुझे अन्तःकरण की वृत्तियां का वर्णन कीजिए। कुक्कुट मुनि का अंगिरस गोत्र में जन्म हुआ था। उन्होंने कहा कि राजन! यह बड़ा गम्भीर विषय है, और गम्भीर विषय को अपने में ही रहने देना चाहिए। उन्होंने कहा कि नहीं प्रभु! वर्णन कीजिए क्योंकि आपने इस प्रसंग को लिया है। उन्होंने कहा कि मेरे एक सौ एकवें महापिता वश्वंगकेतु मुनि महाराज हुए हैं। वश्वंगकेतु मुनि महाराज ने विचारा कि मैं अपने अन्तःकरण का जानना चाहता हूँ। वृत्तियां के ऊपर वह अनुसन्धान करने लगे, तप करने लगे कि कैसे मैं उन वृत्तियां को जान सकता हूँ। वेंद के मन्त्रों का उद्गीत गाने लगे, मनन और चिन्तन करने लगे। उन्होंनें अन्न को पवित्र बनाना शुरू किया जिससे मन की धाराओं का जन्म हो जाए, जिससे मेरा मन पवित्र हो जाए और मैं देवतव बन जाऊं। उन्होंने बारह वर्ष तक वायु का सेवन किया। इसी प्रकार उन्होंने अनुष्ठान पर अनुष्ठान किये। पिच्चासी वर्षों तक वह मौन रहे। मौन संसार में कोई नहीं रह पाता। मौन की परिभाषा यहहै कि आन्तरिक जगत में कुछ न कुछ क्रियाकलाप होना चाहिए।

मन

मेरे प्यारे! जब ऋषि-मुनि अन्तर्मुखी होते हैं, ब्रह्मवेत्ता होते हैं, तो वे मन और प्राण, दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करते हैं। वे प्राण रूपी सूत्र में मन को स्थिर कर देते हैं। इस स्थिति का क्रियाकलाप मौन कहलाता है। मौन रहना यह नहीं है कि मैं संसार से विमुख हो जाऊं। परन्तु इस शरीर में मन और बुद्धियां हैं जिसे हम अन्तःकरण कहते हैं और इसके साथ में प्रकृति का जो मण्डल लगा हुआ है। क्योंकि प्रकृति का परमाणु सदैव गमन करता रहता है, वह वायु की धारा में रमण करता रहता है, इसीलिए उसमें रत्त रहता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह मौन है। एकान्त में विद्यमान है, मन अपने में नाना प्रकार की कल्पना कर रहा है तो उसे मौन नहीं कहते हैं। मौन वह है जो अपने मन, प्राण और वचन, इन तीनों को एक सूत्र में ला करके उन धाराओं पर वह गम्भीरता से रमण कर जाता है, मानो वह एक सूत्र धाराओं में रत्त रहता हुआ अपने अन्तःकरण की वृत्तियां में रत्त हो जाता है।

महात्मा कुक्कुट ने कहा कि रावण! मेरे महापिता चिन्तन करने लगे। मनन करते हुए उन्होंने यह जाना कि मेरे अन्तःकरण में जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान है, वे जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार हैं, एक संस्कार के ऊपर दूसरा संस्कार निहित है। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार, जो प्रकृति के मण्डल से प्राप्त हो गएं हैं, वे सब एक धारा में रमण करते रहते हैं। हे रावण! मेरे महापिता ने जानते-जानते एक सौ एकाम् भूवर्णम् एक लाख पिच्चासी हजार के लगभग अपने कोटिश जन्मों का अध्ययन किया है। वे उन्हें साक्षात दृष्टिपात आने लगे। यह चतुष अन्तःकरण कहलाता हैं, सबसे प्रथम जब यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होता है, तो उसके मन, कर्म, वचन एकाग्र होने चाहिएं। मन, वचन और कर्म एक सूत्र में रहने चाहिएं। प्रवृत्ति, इन्द्रियों के साथ नहीं, वहमन के साथ मौन रहनी चाहिए उन्होंने कहा कि हे प्रभु! यज्ञाम् भूः वणर्म्।

बुद्धि

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियों! वेदमन्त्र कहता है कि याग करो परन्तु यह जो चतुष अन्तःकरण है, इसको जानो। चतुष अन्तःकरण में मन होता है, मन की दूसरी धारा बुद्धि होती है। बुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार कहे

जाते हैं, जैसे बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा। मेरे प्यारे! देखो, बुद्धि संसार को दृष्टिपात करती है, उससे जानकारी होती है। मेधा से उसे क्रियात्मकता में लाता है। क्रियात्मकता में ला करके ऋतम्भरा में वह मौन हो जाता है। ऋतम्भरा में मौन हो करके वह प्रज्ञा में प्रवेश कर जाता है, अपने स्वरूप में वह लुप्त हो जाता है। परिणाम यह कि बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञावी से परमात्मा का मिलन होता है, क्योंकि वह योगी सर्वत्र अपनी प्रवृत्तियों को ब्रह्मरंध्र में ले जाता है। ब्रह्मरंध्र में कृतिका के नृत्य द्वारा वह ब्रह्माण्ड को साक्षात दृष्टिपात कर लेता है।

चित्त

मुनिवरो। यह तो चतुष अन्तःकरण है, एक मन की ही धारा है। मन, बुद्धि और तृतीय चित्त कहलाते हैं। चित्त उसे कहते हैं जिसमें जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान है। वृद्ध अवस्था है, उसे बाल्यकाल का सहपाठी एक अन्य वृद्ध प्राप्त हो गया तो वह बाल्यकाल का मिलन है। दोनों के बाल्यकाल की चर्चायें आने लगती हैं। वे सब अन्तःकरण में निहित होती है। बाल्यकाल का सर्वस्य साहित्य उसके समीप आ जाता है। उसे स्पप्रवत्त में, कहीं चित्त के मण्डल में कहीं उसके जन्मा जन्मान्तरों के संस्कार उसके समीप आते रहते हैं। बेटा! बाल्य और वृद्धपन का क्या समन्वय? कुछ समन्वय नहीं रह पाता परन्तु जब बाल्यकाल के दो प्राणियों का सम्मिलन होता है तो अन्तःकरण के सब संस्कार बाह्य जगत में आ जाते हैं। वह उच्चारण करने लगता है, विनोद करने लगता है, प्रमोद करने लगता है।

वेद के ऋषि ने कहा कि अम्ताम भूः वर्णनम् ब्रह्मेः, हे ब्रह्मचारियों! बुद्धि के पश्चात चित्त का मण्डल है, और चित्त के मण्डल में संस्कार निहित रहते है। मन गम्भीरता में आत्मा के प्रकाश से स्वप्नवत को प्राप्त होता है और यह स्वप्नों को दृष्टिपात करता रहता है। कहीं वृद्ध बन गया तो कहीं बाल्य बन गया। स्वप्नवत में कहीं नद-नदियों का और समुद्रों का निर्माण कर देता है। पुत्र पुत्रियाँ नहीं होतें परन्तु उनका निर्माण हो जाता है, पत्नी नहीं होती पत्नियों का निर्माण, पति नहीं होते पतियों के निर्माण हो जाते हैं। मन स्वप्न में, आत्मा के प्रकाश में उन अंकुरों को साकार रूप में दृष्टिपात करता है जो अंकुर रूप अन्तःकरण में विद्यमान है।

बेटा! मैं कहाँ तक चला जाऊं? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव वेदमन्त्र की विवेचना करते हुए कहते थे कि सर्वणम जमन ब्रह्मा कृतं मंतहम व्रच्यस्ताः देवाम् अन्तःकरण स्वतः प्रह्वा लोकाः कि अन्तःकरण स्वतः लोक है, स्वतः यह मण्डल है। वेदमन्त्र यह कहता है कि स्वतः ही अपने में अपनेपन को दृष्टिपात करता रहता है। यही चित्त का मण्डल जब बाह्य जगत में, बाह्य चित्त में समावेश करता है तो बाह्य और आन्तरिक, दोनों चित्तों का मिलन हो जाता है। वह बाह्य जगत को आन्तरिक चित्त में ले जाता है और आन्तरिक चित्त को बाह्य जगत में ले जाता है। योगेश्वर इस चित्त के मण्डल की प्रवृत्ति को जानते हैं। मन की धारा, जो बुद्धि है कहीं मेधा बनती है, कहीं ऋतम्भरा बन जाती है, कहीं प्रज्ञावी बन करके यह नाना प्रकार के संस्कारों को उद्बुद्ध करती रहती है और चित्त के मण्डल में सब स्थिर हो जाते हैं। आन्तरिक चित्त और बाह्य चित्त, दोनों का मिलन करके मन की एक वृत्ति बन जाती है।

अहंकार

बेटा! अन्तःकरण का चतुष स्वरूप अहंकार कहलाता है। अहंकार उसे कहते हैं जो अपनी सीमा में रहने वाला हो क्योंकि अंहकार बिना कोई पिंड नहीं बन पाता। अहंकार के बिना वह अपनी प्रवृत्तियों में रत्त नहीं होता। एक अहंकार तो अपने लिए स्वाभिमान होता है, एक अहंकार वह होता है जो अपने वाह्य स्वार्थ के लिए प्रकृति के स्वरूप में रमण करके उसको नष्ट करने लगता है। एक अहंकार वह है, जो परमात्मा से स्वप्न, सुषुप्ति में जा करके आनन्द लेता है, प्रभु से सहायता लेता है। एक अहंकार वह है, जिसमें मानव अपनी प्रवृत्तियों को नष्ट करके, उग्र

रूप धारण करके मानव, मानव का भक्षक बन जाता है। वह जो अंतम् ब्रह्म अहंकार होता है, वह इस प्रकार का नहीं क्योंकि प्रकृति में अहंकार होता है। उस अहंकार को जानना ही अहंकार की वृत्ति कहलाती है।

बेटा! मैं बहुत गम्भीर रूपों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। वेदमन्त्र मुझे बारम्बार यह उद्गीत गाने लगता है, वेद का ऋषि कहता है कि दैविक प्रकोप हो करके अग्नि के परमाणु जब वायु में प्रवेश हो जाते हैं तो ग्रीष्म ऋतु में वायु वेग से जब रमण करती हैं, तो यह कुपित हो जाती है, और कुप्रकृति बन करके मानव का भक्षण कर जाती है। मेरे प्यारे!। वह भी अहंकार है। प्रकृति का अहंकार स्वरूप होने से वर्षा काल में जल अति कुपित होता है और अतिवृष्टि में रत्त हो जाता है, उससे कहीं विनाश होता है। उसे दैविक प्रकोप कहते हैं। परन्तु प्रकृति का अहंकार कहलाता है। वह अहंकार कहाँ जा करके स्थिर होता है? वह मानव की कर्म की धाराओं पर स्थिर होता है क्योंकि जैसा मानव समाज का कर्म होता है वैसे प्रकृति के प्रकोप होते हैं।

कर्मों का फल

मैं बहुत पुरातन काल में एक गाथा का वर्णन करता रहा हूँ। एक समय अतिवृष्टि हो गयी, प्रजा का विनाश हो गया। अन्नाद नहीं रहा, सब जलमग्न हो गए। प्रजा बहुत दुखित हुई और अपनी पुकार प्रजापति तक पहुंचाई। प्रजापति ने कहा कि कहो प्रजाओं। आप अप्रसन्न क्यों हो? उन्होंने कहा कि-प्रभु! अतिवृष्टि हो गई है और सब विनाश हो गया। उन्होंने कहा कि यह वृष्टि कहाँ से हुई? महाराज मेघ मण्डलों से हुई है। उन्होंने मेघ मण्डलों के कहा कि हे मेघ मण्डलों तुमने यह अतिवृष्टि क्यों की है? मेघ ने कहा कि-प्रभु! मैं इसमें दोषी नही हूँ। उन्होंनें कहा फिर कौन है? मेरे से तो सूर्य ने, आदित्य ने कहा था। आदित्य को उन्होंने निमंत्रित कर कहा कि हे आदित्य! तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों की? आदित्य ने कहा कि-प्रभु! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से पृथ्वी ने कहा था। अब प्रजापति ने पृथ्वी को निमंत्रित कर कहा कि हे पृथ्वी! तुमने यह अनावृष्टि की इच्छा क्यां प्रकट की?

पृथ्वी ने कहा कि हे प्रभु! इसमें मेरा कोई दोष नही है। जब मेरे ऊपर यह प्रता पाप करती है तो मैं पापों में इतनी लिप्त हो जाती हूँ कि मुझसे असहनीय हो जाता है। जिस प्रकार माता का पुत्र उसके वस्त्रों को भ्रष्ट कर देता है तो माता जल से अपने वस्त्रों को स्वच्छ बनाती है, इसी प्रकार प्रभु! जब यह प्रजा मेरे ऊपरी नाना पापाचार करती है तो मैं पापों में सन जाती हूँ। मैं अपनी पुकार समुद्रो से कहती हूँ कि हे समुद्रो! तुम मुझे स्वस्थ करो। समुद्र जल का उत्थान कर मेघ मण्डलों को दे देते हैं मैं जब ऊर्ध्वा में जाती हूँ तो आदित्य से कहती हूँ कि तुम वृष्टि कर मुझे स्वच्छ करों। वही आदित्य जल का उत्थान समुद्रो से कराते हैं, उसे मेघ मण्डल अपने में धारण कर लेते हैं। मेघ मण्डलों के द्वारा वृष्टि होकर प्रभु! मैं स्वच्छ बन गई हूँ और प्रजा ने अपने किए हुए पाप-पुण्य कर्मों का फल भोग लिया।

मेरे प्यारे! उन्होंने पाप-पुण्य की विवेचना प्रकट की। उन्होंने कहा, पापाम् भूः वर्णस्व यह अपने में अशुद्ध हो गया, स्वच्छता में जिसका नाम अहंकार कहलाता है। जो अपने में दबायमान रहता है अंत में वह अपने अहंकार में ऊर्ध्वा को प्राप्त होता है। वह अपने में सीमित रह करके जगत में अपने अन्धकार का पिंड बनता हैं। यह ब्रह्माण्ड को जो पिंड बना हुआ है, नाना प्रकार के जो लोक-लोकान्तर तुम्हें दृष्टिपात आ रहे हैं, यह सर्वत्र परमपिता परमात्मा की महती है और बिना अहंकार के पिंड नहीं बना करता है। पिंड बन करके नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर बन जाते हैं, अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ बन जाती है।

मेरे पुत्रो। ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो उन्होंने कहा कि-प्रभु! यज्ञमान जब यज्ञ करता है तो मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, इस अन्तःकरण को जानता हुआ वह याज्ञिक बनने का प्रयास करे। ऋषि याज्ञवल्क्य कहता है कि यागाम् रूद्रोवागम् ब्रह्माणा वृतम देवाः अन्तम ब्रही व्रताः। महात्मा कुक्कुट ने रावण से यही कहा था कि

मेरे महापिता ने अपने अन्तःकरण की प्रवृत्तियों को मन से जाना और उन्होंने लाखों जन्मों के संस्कारों को जान लिया। उसके पश्चात उन्होंने जब यह विचारा कि मेरे अन्तःकरण में इतने जन्मों के संस्कार हैं कि यदि और मैं अन्न का पान न करके वायु का सेवन करता रहूँ, पोषक तत्त्व अन्तरिक्ष से लेता रहूँ, अन्तःकरण की प्रवृत्तियां को जानता रहूँ और मेरी लाखों वर्षों की आयु हो तो उसके पश्चात भी मैं संस्कारों की सर्वत्रता का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

बेटा! यह अनन्तमयी विचारों का जगत हैं मैं इस संसार में जाना नहीं चाहता हूं, विचार केवल यह कि हमें अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाना हैं। अन्तःकरण कैसे पवित्र होगा? वायुमण्डल से। वायुमण्डल कैसे पवित्र होगा? यागों से। याग कैसे पवित्र होगा? जब यज्ञमान की प्रवृत्तियाँ मन, बुद्धि, अहंकार सर्वत्र सीमा में होंगे और उसकी प्रवृत्तियां में महानता का जन्म होता रहेगा। क्योंकि अग्नि की धाराओं पर शब्द विद्यमान होता है और वही शब्द भूः भूवः स्वः में प्रवेश हो करके लोकों को पवित्र बनाता रहता हैं। अशुद्ध परमाणुओं को निगलता रहता है, शुद्धिकरण परमाणुओं को त्यागता रहता है और द्यौ में शब्द पवित्र बन कर चले जाते हैं। याग के कर्मकांड को ऋषि-मुनियों ने बहुत प्रकार से जाना है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यही कहा कि हे ब्रह्मचारियों! तुम होताओं के द्वारा याग पर याग करो।

ग्यारह होता

अन्तःकरण की सर्वत्र प्रवृत्तियों का वर्णन करने में मैं भी असमर्थ रहता हूँ। अन्तःकरणीय बुद्धिमान जब विद्यमान होते हैं, तो उसके पश्चात गम्भीर चिन्तन होता है। अन्तःकरण एक सूत्र में आ जाएं तो मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार सब एक रूप में रत्त हो जाता हैं, जैसे ग्यारह होताओं का वर्णन आया हैं। दस इन्द्रियाँ है, ग्यारहवां मन है क्योंकि मन से इन्द्रियाँ गुथी रहती है। किसी इन्द्रिय के साथ यदि मन नहीं है, तो इन्द्रियाँ दृष्टिपात करती हुई भी इन्द्रियाँ नहीं कर रही है। मन यदि घ्राण के द्वारा नहीं है, तो सुगंध भी सुगंध नहीं दे रहा है। वाक्य उच्चारण करता हुआ भी नहीं कर रहा है। श्रवण कर रहा पर मन वहाँ नहीं है तो श्रवण नहीं कर रहा है। मेरे प्रभु ने यह कैसा अनुपम जगत रचा है। इसके ऊपर आश्चर्य होता है। गम्भीरता से मनन करते हैं तो केवल विवेक ही विवेक रह जाता है।

मेरे प्यारे! त्वचा के साथ यदि मन नहीं है तो त्वचा प्रेम करती हुई भी प्रीति नहीं कर रही है। रस लेने वाली रसना रस नहीं ले रही है क्योंकि मन साथ नहीं हैं मन का समन्वय आत्मा से होता है और आत्मा के प्रकाश से यह मन जड़वत होते हुए भी इतनी आभा में रत्त रहता है। क्योंकि आत्मा सूक्ष्म है अतः आत्मा का प्रकाश ले करके मन गमन करता हैं। इन्द्रियों का विषय इससे भी स्थूल है, परन्तु इसमें जो गम्भीर ज्ञान-विज्ञान निहित रहता है, वह केवल मन के ही कारण रहता हैं। विचार आता है बेटा! मनस्तम ब्रह्ने व्रतम्, वेद का ऋषि कहता है कि इस मन को पवित्र बनाने का प्रयास करो और चतुष अन्तःकरण को जानने के लिए तत्पर हो जाओ। यह जब तक नहीं जाना जाता, तब तक मानव साधना में प्रवेश नहीं होता। साधना बहुत अनिवार्य है। ऋषि कहता है कि हे यज्ञदत्त! यदि तुम याग करना चाहते हो तो चतुष अन्तःकरण की वृत्तियों को जानो।

बेटा! हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए सागर से पार होने का प्रयास करें क्योंकि वह विचारों का सागर है। ब्रह्माण्ड एकसागर है, इसको जान करके ही इससे पार हो सकते हो। इसे बिना जाने पार नहींहो सकते। प्रत्येक रूप में अपने को जानो, प्रकति के मण्डल को जानो और जान करके इससे पार हो जाओ, संसार अपनी आभा में रत्त होता रहेगा। प्रत्येक मानव अपने में सुखद आनन्द चाहता है, और वह आनन्द बिना ज्ञान के प्राप्त नहीं होता और ज्ञानात्वम ब्रह्मेः, यह ज्ञान मन के समीप रहता है। ज्ञान के प्रकाश में मन अपने प्रकृति

मण्डल को जान लेता है और प्रकृति मण्डल आत्मा के गर्भ में समाहित हो जाता है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा के अनूठे जगत को जानें। परमपिता परमात्मा जो अनन्तमयी है उसकी अनन्तता को जानें और उसके ऊपर हम विश्वसनीय बन जाएं। उसकी जो रचना है, चाहे वह उसकी न स्वीकार करो परन्तु उस रचना पर विचार-विनिमय अवश्य होना चाहिए। उन विचारों से मानव की प्रवृत्तियाँ स्थिर होती हैं और संसार की दुरिताओं में नहीं जानना पड़ता, मानव सुचिन्तन में चला जाता है। यही मानव का लक्ष्य है। यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा। चंडीगढ़ ११-०१-१९९१

१२ सूक्ष्म शरीर के सत्रह होता १२-०१-१९९१

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है और उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं परन्तु कोई भी विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके क्योंकि वे सीमा से रहित हैं, और वे सीमा में आने वाले नहीं है। उसका ज्ञान-विज्ञान महान और पवित्र माना गया है। प्रत्येक मानव सृष्टि के प्रारम्भ से इसके ऊपर अन्वेषण करता हुआ दूरी चला गया। वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है और सर्वज्ञ है। उसके जितने भी क्रियाकलाप हैं, वे भी महान और अनन्तमयी माने गए हैं। इसीजिए वेद के ऋषियों ने एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर बड़ा अन्वेषण किया और प्रत्येक रूप में उसको जानने के लिए तत्पर रहे। वह इतना अनन्तमयी है कि उसकी आभा में परिणित होना प्रायः मानवीयता और ऋषित्वता कहलाती है।

वे परमपिता परमात्मा इतना अनन्त है कि एक-एक वेदमन्त्र में मानव सर्वत्र ब्रह्माण्ड की कल्पना करता रहा है। अंत में वह मन्त्रम ब्रह्वा कृत्ताम देवाः, उसी वेदमन्त्र का अध्ययन करते-करते दूरी चला जाता है। इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसे अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान में सदैव रत्त रहें और प्रत्येक मानव को रहना भी चाहिए क्योंकि इससे अन्तःकरण का शुद्धिकरण होता है और मानवीयता में नम्रता आती है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मैं उस परमपिता परमात्मा को जानूं। परमपिता परमात्मा को जानने के लिए मानव में नाना प्रकार की प्रतिभाषिता रहनी चाहिए। परमपिता परमात्मा नम्र है, इसीलिए मानव को भी नम्र रहना चाहिए। परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है इसीलिए मानव को भी अनन्तमयी विचार-विनिमय करने चाहिएं। परमपिता परमात्मा अकाय है इसीलिए काया के ऊपर मानव को अभिमानित नहीं होना चाहिए। वे परमपिता परमात्मा सृष्टि का रचयिता है इसलिए मानव के अपने मस्तिष्क में कोई न कोई रचना का स्वरूप स्रोत रहना चाहिए। परमपिता परमात्मा नम्रता की आभा में रत्त रहने वाला है और विज्ञानवेत्त है। उसका अनन्तमयी जो विज्ञान है, वह प्रकृति की एक-एक तंरग में निहित रहता है इसीलिए हमें भी उन तरंगों को जानना चाहिए। हम परमपिता परमात्मा के समीप जा सकते हैं, जब हमारे में इस प्रकार के गुणाध्याम हो जाते है।

आओ, मेरे प्यारे!। मैं तुम्हें विशेष क्षेत्रों में नहीं ले जा रहा हूँ केवल यह कि परमपिता परमात्मा नम्र है। वेद भी एक ही शब्द कहता है नम्र ब्रह्वा यह कि नम्रता के क्षेत्र में ही मानव को रमण करना चाहिए। हमारा वेद का मन्त्र जहाँ मानव को परमपिता परमात्मा और मानवीयता में मिलान को ले जाता हे वहाँ ऋषि-मुनियों ने एकांत स्थलों पर विद्यमान हो करके आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान, दोनों का समन्वय किया है। आध्यात्मिक विज्ञान इस मानवीयता से सम्बन्धित है, आत्मा से सम्बन्धित रहता है। मानव को प्रत्येक दशा में यह जानना चाहिए कि जितना भी दृष्टिपात आने वाला जगत है, उस जगत में कितनी तरंगें है। उनका साकार रूप बना करके, मानो उसको नाना प्रकार की साकारता में ला करके ही हम स्वर्गस्यम व्रत्य प्रह्वा, हम स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं। जब भौतिकवाद, प्रकृतिवाद सम्पन्न हो जाता है, जब उसको जान लिया जाता है तो उसके पश्चात आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ हो जाता है।

भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों में अन्तर्द्वन्द्व माने गए हैं परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों ने दोनो प्रकार के विज्ञान को मानवीयता में रमण करने वाली प्रतिभा माना है। परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान

दोनों प्रकार के विज्ञान में निहित रहता हैं, परमपिता परमात्मा के बिखरे हुए विज्ञान को एक मानव एकत्रित कर लेता है, तो वह विज्ञानवेत्ता बन जाता है, परन्तु जब नाना प्रकार के भौतिक विज्ञान को जान करके वह इन्द्रियों के ऊपर दमन कर लेता है, उसके पश्चात उसका आध्यात्मिक विज्ञान प्रारम्भता को प्राप्त होता है। बेटा! यह बड़ा विचित्र आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान है प्रत्येक वेदमन्त्र में दोनों प्रकार का ज्ञान और विज्ञान है। उसमें व्यवहारिकता है, उसमें गम्भीरता है। विचारने से प्रतीत होता है कि हमारे जीवन का उस परमपिता परमात्मा से समन्वय रहना चाहिए जिससे नम्रमा, ओजस्वाता और पवित्रता की तरंगें हमारे अन्तःकरण में प्रवेश हो जाएं।

आओ, मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जिस क्षेत्र की हम चर्चाएं प्रारम्भ कर रहे थे। आज मैं पुनः से तुम्हें याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के उसी विद्यालय में ले जाना चाहता हूँ, जिस विद्यालय में ब्रह्मचारी और आचार्यजन दोनों प्रातःकालीन नैतिकता में रमण करते हुए वेदों का अध्ययन करते, न्यौदा में मन्त्रों का उद्गीत गाते रहे हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है बेटा! जहाँ प्रातःकालीन आचार्यजन ने जब शिक्षा प्रारम्भ की और कहा कि न्यौदा में मन्त्रों का उद्गीत गाना और प्राणसखा को जानना है। उन्होंने हमारे शारीरिक भौतिक पिंड और भौतिक ब्रह्माण्ड, दोनों को एक दूसरे में विचर कृतम् ब्रह्मा, दोनों का समावेश करने के लिए प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान, दोनों एक दूसरे से कटिबद्ध रहते हैं, दोनों को एक दूसरे की जानकारी में लाना ही मानवीयता कहलाती है। उन्होंनें भौतिक विज्ञान को पिंड से और पिंड को भौतिक विज्ञान से, आध्यात्मिकवाद को भौतिकवाद से और भौतिकवाद को आध्यात्मिकवाद से समन्वय करने का प्रयास किया।

मेरे पुत्रो! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा तपो वर्णस्सुतम ब्रह्मा कि प्रत्येक मानव को तपस्वी बनना चाहिए क्योंकि तप से ही प्राणों को जाना जाता हैं। प्राण को अपान से और अपान को समान में समान को उदान में प्रवेश कराते हुए जब वह अपने में अपनेपन की धारा को जानने लगता है। हे ब्रह्मचारियों! जब यज्ञमान याग करने के लिए तत्पर होता है तो वह भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार का याग प्रारम्भ करता है। दोनों प्रकार की विचारधारा उसके मस्तिष्क में रमण करती रहती है और मन का उसमें वृत्त होता रहता है। संभव ब्रह्मे संभव रूद्रो तपस प्रह्णाम ब्रह्म सुतम दिव्य लोकाः, ऋषि ने वेदमन्त्र में उद्गीत गातें हुए यह कहा तो ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा कि- प्रभु! आपने संक्षेप में चौबीस होताओं के सम्बन्ध में हमें वर्णन कराया था, उनका आपने आध्यात्मिक रूप में समन्वय किया, अब हम यह जानना चाहते हैं कि जन्मान जब यज्ञ करना चाहता है तो उसके द्वारा कितने होता होने चाहिए?

स्थूल और सूक्ष्म शरीर

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! तुम्हें मैंने कई काल में वेद का उद्गीत गाते हुए कहा है कि यज्ञमान जब यज्ञ करना चाहता है तो चौबीस होता होने चाहिएं। मैंने तुम्हें चौबीस होताओं का वर्णन कराया है और मानम ब्रह्मे कृतं देखो, सत्रह होता जिके द्वारा यज्ञमान याग करता है, कौन से होते हैं? बेटा! दस प्राण होते हैं और पंच प्रकृति की तन्मात्रायें होती हैं और मन और बुद्धि, यह दोनों हो करके सत्रह होता कहलाते हैं जिनके द्वारा यज्ञमान यज्ञ करता है। वेद के ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि हमारा यह जो स्थूल शरीर है, यह चौबीस होताओं का कहलाता है। इसमें चार होता अन्तःकरणीय कहलाते हैं, परन्तु ये सत्तरह होता सूक्ष्म शरीर के होता कहलाते हैं, उसी सूक्ष्म शरीर को हमें जानना चाहिए। दस प्राणों के आश्रित हो करके जब योगी अपने में साधना करता है, तो सूक्ष्म शरीर को जानता है। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कुरू और कृकल यह दस प्राण कहलाते हैं। इनमें पांच प्राण और पांच उप-प्राण हैं। इन सब प्राणों को जानना चाहिए।

प्राणविद्या

मेरे पुत्रो! जब साधना के क्षेत्र में साधक प्रवेश करता है तो प्राण का क्षेत्र नाभि तक रहता है। यह अरबों-खरबों परमाणु आन्तरिक जगत से बाह्य जगत में प्रवेश कराता रहता है। यह प्राण ब्रह्माण्ड में भी आदान-प्रदान करता रहता है। कहीं अग्नि का मिलान आपो से, जल से होता है, कहीं जल का मिलान गुरूतव परमाणु से होता है और कहीं इनका मिलान समान से होता है और समान से ही अपने में अभ्युदय होता है। मुनिवरों! परम्परागतों से ही, यह विद्या मानवीय मस्तिष्कों में निहित रही है और उनके क्रियाकलापों में रही है। मेरी पुत्रियाँ जब विद्यालयों में अध्ययन करतीं तो इस विद्या को आचार्य सदैव परिणित कराते रहते। मुझे स्मरण आता रहता है कि गार्गी अपने आचार्यो के समीप विद्यमान हो करके वेद पठन-पाठन के क्रियाकलापों के सदैव तत्पर रही है।

बेटा! मुझे स्मरण है, मैत्रेय ने एक समय प्रातःकालीन आचार्य से यह कहा था कि हे प्रभु! आप प्राणों का बारम्बार वर्णन करते रहते हैं, मैं इन प्राणों को कैसे जानकारी में ला सकती हूँ। उन्होंने कहा कि इन प्राणों को जानो, इनका नाभी तक क्षेत्र रहता है और अपान के क्षेत्र में अभ्यम वृती हो जाती है तो उस समय व्यान का क्षेत्र रहता है। व्यान के क्षेत्र से समान का क्षेत्र सम्मब्रहे, इन तीनों प्राणों का संरक्षण बनता और उदान प्राण वह कहलाता है जहाँ व्रस्सम ब्रह्नी कृदस्सुताह वर्णास्सुतेः। वेद का वाक्य कहता है कि व्यान से सर्वत्र प्राणों का समन्वय हो करके, बाह्य चित्त और आन्तरिक चित्त, दोनों का जब समन्वय हो जाता है तो साधक का प्राणां में यातायात बन जाता है। वह प्राण को अपान में ले जाता है, अपान को व्यान में ले जाता है और व्यान को समान में ले जाता है और समान को उदान में ले करके चित्त का मण्डल साक्षात्कार दृष्टिपात आने लगता है। मेरी प्यारी मातायें इस विद्या में बड़ी निपूर्ण रही हैं।

एक समय वह काल था जब साधना के क्षेत्र में मेरी पुत्रियाँ विद्यालयों में अध्ययन करती तो आचार्य उन्हें क्रियात्मक वार्त्ता कराते रहते। मेरे पुत्रो! मैत्रेय ने एक समय महर्षि श्वेकुत ऋषि से यह वाक्य कहा कि हे भगपन! आप मुझे ऐसी कोई विद्या, ऐसे प्राणों की वृत्ति का वर्णन कराइये जिसे मैं गर्भ मे रहने वाले शिशु से वार्त्ता प्रकट कर सकूं। उन्होंने कहा बहुत प्रिय और उन्होंने मैत्रेय को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि पुत्री! तुम प्राण को अपान में ले जाओ। उन्होंने प्राणायाम किया और प्राण को अपान में ले गई और फिर कहा अपान के क्षेत्र में प्रवेश हो करके तुम व्यान में प्रवेश हो जाओ और व्यान के क्षेत्र से उपराम हो करके जब समान में पहुंचा तो उदान के क्षेत्र में प्रवेश करो। जब इन पांचों प्राणों का अपना यातायात बन जाएगा तो तुम्हारे गर्भस्थल में जो शिशु शरीर को धारण कर रहा है, वह आत्मा से तुम वार्त्ता प्रकट कर सकती हो और उसकी जो तरंगें हैं वे तुम्हारी उन तरंगों को तरंगित करेंगी।

मेरे पुत्रो! मेरी पुत्री ने वैसा ही किया और वे गर्भ की आत्मा से वार्त्ता प्रकट करती रहीं। वह आत्मा उसका उत्तर भी देता रहा है। मुझे साधकों की बहुत-सी वार्त्ताएं स्मरण आती रही है। मुनिवरों! वेदमन्त्र का गीत गाते हुए माता मलदाल्सा ब्रह्म का उपदेश देना गर्भ में ही प्रारम्भ करती थी, प्राण विद्या को उसमें देना प्रारम्भ करती थी। मेरे पुत्रो! जब दोनों का समन्वय हो जाता है तो उस बाल्य की स्मरण शक्ति और उसके ब्रह्मरंध्र का समन्वय आत्मा से, आत्मा का समन्वय ही परमपिता परमात्मा के अमूल्य क्षेत्र से हो जाता है। वह ब्रह्मज्ञान क्या है? ब्रह्मज्ञान उसे कहते हैं जो बाह्य जगत और आन्तरिक जगत, दोनों को जान सके ब्रह्म में लीन हो जाए, भौतिकवाद के क्षेत्र से उपराम हो करके ब्रह्म की आभा में रत्त हो जाए।

उप प्राण

उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारी! यह प्राणों का क्षेत्र बड़ा विचित्र रहा है। जैसे नाग प्राण है। जब मानव को क्रोध आता है, तो नाग प्राण का ऊर्ध्वा मुख हो जाता है। जब नाग प्राण का ऊर्ध्वा मुख होता है तो शरीर में जो

अमृतमयी क्षेत्र है, अमृत है, उसे नष्ट करने लगता है। क्रोधाग्नि में उसका ऊर्ध्वा मुख हो करके वह विष को त्यागने लगता है, अमृत को निगल जाता है। इसीलिए आचार्यो ने साधकों को कहा कि तुम अपने को क्रोध की अग्नि में न ले जाओ। मन का समन्वय उस नाग प्राण से होता है। नाग प्राण का द्वितीय समन्वय देवदत्त से होता है। देवाम् भूः वर्णम ब्रह्माः जब नाग प्राण का दमन कर दिया जाता है तो देवतव प्रवृत्त हो जाता है, वह संसार को देवता की दृष्टि से दृष्टिपात करने लगता है, क्योंकि अपने में देवतव बन गया है। देखो, घनंजयम् कृतं धनंजय संसार को कहते हैं। धनंजय और प्राण अपान के ऊपर उसका समन्वय हो जाता है तो वह इसको जानने लगता है। मेरे पुत्रो! इसी प्रकार प्राणम् व्रत्तम देवः, देवत्वाम् भूः वर्णम् ब्रह्मे, दस प्राणों का एक दूसरे मे समन्वय होता रहता है।

मेरे पुत्रो! मैं प्राण विद्या में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। यह प्राण विद्या एक बड़ी विचित्र विद्या है। जब इस विद्या के ऊपर अध्ययन कररके अपने जीवन को क्रियात्मक बनाते हैं तो आनन्द और सूक्ष्म शरीर को जानने की प्रवृत्ति हमारे अन्तःकरण में, वृत्तियों में रत्त हो जाती। इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं केवल यह कि दस प्राण हैं, और दस प्राणों की वृत्तियों में मानव को अपने को प्रविष्ट करना चाहिए।

तन्मात्राएं

आओ, मेरे प्यारे! पंच तन्मात्राओं में गुरूतव है, तरलतव है, तेजामयी है, गति है और अवृतम ब्रह्माः देखो, वहाँ स्थिर रहना है, जहाँ परमाणु गमन करते रहते हैं, उनकी तरंगों का नाम पंच तन्मात्रा मानी गई हैं। एक दूसरे की तरंगों में रमण करते हुए ब्रह्माण्ड की रचना होती है। जब प्रभु ने सृष्टि का सृजन किया तो एक दूसरे का एक दूसरे में समावेश करने से यह संसार बन गया। एक दूसरे परमाणु में परमाणु की वृत्तियां रत्त हो गईं। जैसे गुरूतव तरलतव में जब रत्त होता है, तो पिंड बन जाता है, और उसी पिंड में जब तेज का समावेश हो जाता है, तो वायु उसमें गति देने लगती है और जब गतियां आने लगती हैं, तो जहाँ तक वह गति करता है, वही तो अन्तरिक्ष कहलाता है। उस अन्तरिक्ष में वह गतिमान रहता है। विचारने का अभिप्राय यह है कि पिंड बना और इस पिंड में गुरूतव, तरलतव और तेजोमयी आभा प्रविष्ट हो गई तो वायु ने गति देना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक पिंड में गति भी हो रही हे, उसी में तेज है, उसी में गुरूतव और उसी में तरलतव विद्यमान है तो वही अन्तरिक्ष हे जहाँ वह गति कर रहा है, अपने में गतिवान हो रहा है। गतिवान होने से यह संसार मानो, इस सृष्टि का स्वरूप बन जाता है।

मेरे पुत्रो! इसी प्रकार यह मानव का पिंड बना है, अमृताम भूः वर्णम और इन आभाओं को ले करके सूक्ष्म शरीर में मन और बुद्धि हैं। चित्त में जितने संस्कार हैं, उन संस्कारों का समूह इन दोनों में विद्यमान रहता है। यही तो चित्त का क्षेत्र मन, मनवृत कहलाता है और यह चित्त का मण्डल है। यह प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु है और सूक्ष्मतम तन्तु होने से ही देखो, यहा मनम् ब्रहे अो सूक्ष्म ब्रह्मा। देखो, बुद्धि और मन दोनों का जब एक दूसरे में समावेश हो जाता है तो यह सूक्ष्मतम शरीर कहलाता है।

विचार आता रहता है बेटा! वेद का ऋषि कहता है कि यज्ञमान जब याग करता है, तो सत्रह होताओं के द्वारा याग करता है। सत्तरह होता वह कहलाते हैं जो यज्ञशाला में हूत कर रहे हैं। देखो, अपने में इन्हें जानना चाहिए। जब सूक्ष्म शरीर को प्रत्येक साधक अपने में जान लेता है, तो प्राणों की सर्वत्रता की जान करके वह बाह्य जगत में इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करता है, और ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार करता हुआ पिंड में समावेश हो जाता है। विचार आता है कि हे मानव! तू सूक्ष्म शरीर को जानने की इच्छा कर। हे मानव! यदि तू साधक बनना चाहता है, साधना में रमण करना चाहता है तो सूक्ष्म शरीर को अपने में जानने का प्रयास कर जिससे तेरा कल्याण हो जाए और तेरा अभ्युदय हो जाए, तू प्रकाश में चला जाए, अन्धकार को त्याग करके तेरी महानता प्रकाश में रमण करने

लगे।

मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि यह तो सत्तरह होता और वह जो चौबिस अन्तःकरण की वृत्तियां हैं, जब वे ब्रह्म कृतं देवत्वाम, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और मनस्तव प्रवाह् व्रतम, इसमें इन्द्रियाँ समाप्त हो जाती हैं, स्थूल इन्द्रियों की गति होना शान्त हो जाता है तो सूक्ष्म शरीर में पंचम वृत्ति होने से और चित्त का मण्डल अवृत होने से वह मन में समावेश होता है। इस स्थूल शरीर को जानने के लिए हमें चौबिस होताओं की आवश्यकता है। ये हूत करने वाले हैं। यह शरीर एक प्रकार की यज्ञशाला है और यज्ञशाला में चौबिस होताओं के द्वारा यज्ञमान याग करता है।

इन्द्रियों पर संयम

ब्रह्मचारी अब यह दूसरा प्रश्न करता है कि प्रभु! यज्ञमान याग करना चाहता है कितने होता होने चाहिएं? उन्होंने कहा सत्रम् ब्रह्म असुतम ऐको दसोनम ब्रह्वा , उन्होंने एकोदश का वर्णन किया। उन्होंने कहा दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवां मन है। इनको एकाग्र करके वह स्थूल के रूप को ले करके गमन करता है। मानव यह विचारता रहता है कि मेरी ये दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवां मन, है। इनको एकाग्र करके वह स्थूल के रूप को ले करके गमन करता है। मानव यह विचारता रहता हे कि मेरी ये दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवां मन, संयम में रहना चाहिए। यह दसों इन्द्रियाँ एक प्रकार के अश्व हैं और मन इनके ऊपर मन सारथी बना हुआ हैं। जब वह सारथी पवित्रता में रत्त रहता है, देवतव को धारण कर लेता है, उस समय इन्द्रियाँ संयम में हो जाती हैं। इन्द्रियाँ जब संयम में होती हैं और मन सारथी बन करके प्रत्येक इन्द्रियां के साथ जब याग करता है, तो याग इन्द्रियां में समाहित हो जाता है। प्रत्येक इन्द्रियां में याग समाहित हो जानने से वह याग सम्पन्नता हो प्राप्त होता है और वह याग अपने में महान कहलाता है। जितने संसार की बाह्य जगत की क्रिया हैं वे पंचम कर्म इन्द्रियां से सम्बन्धित रहती हैं। इसी प्रकार बेटा! शरीर रूपी यज्ञशाला को जान करके अपनेपन की प्रतिभा में ले जाएं।

मेरे प्यारे! ऋषि-मुनि इन वाक्यों के ऊपर विचार-विनिमय करते रहे हैं, देवतव को जानते रहे हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारी! तुमने यह जान लिया होगा कि मैं तपस्वी बनना चाहता हूँ। ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा कि-प्रभु! आप तो स्वतः तपस्वी हैं, आपके ज्ञान में तो कोई सूक्ष्मता नहीं हैं। महर्षि बोले कि अमृताम ब्रह्ले ऋतव देवत्वाम, वेद का मन्त्र कहता है कि मानव की सहस्रों वर्षों की अवस्था आ जाए परन्तु तो भी सृष्टि को जान नही पाएगा क्योंकि इतना अनन्तमयी यह जगत है। तपों में अपने को ले जाना है और मैं तप को अभी जानता भी नहीं हूँ कि तप कहते किसे है? उन्होंने कहा कि जानने का नाम तप है। प्रभु! जानने का नाम तो तप नहीं होता, जाना कैसे जाता है? जब यज्ञदत्त ने यह कहा तो याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि-प्रभु! तप कहाँ से प्रारम्भ होता है? उन्होंने कहा, तप का प्रारम्भ मानव के आहार और व्यवहार से होता है। यदि आहार-व्यवहार दोनों पवित्र हैं तो वह तपस्याम्। क्योंकि मन तब तक तप में नहीं जाएगा तब तक आहार-व्यवहार पवित्र नहीं होगा और वह मन इन्द्रियां को संयम में नहीं कर सकता। जब तक इन्द्रियां संयम में नहीं होंगी तब तक हम सूक्ष्म शरीर को नहीं जान पायेंगे और जब तक सूक्ष्म शरीर को नहीं जानेंगे तो कारण शरीर को भी हम नहीं जान सकते। जब कारण शरीर को नहीं जानेंगे तो आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति हमें नहीं हो सकेगी।

मेरे प्यारे! ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो ब्रह्मचारी अपने में आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा-प्रभु! अन्नाम भूः वर्णनम प्रह्ले तपाहा कि क्या यह अन्न ही तप का मूल कहलाता है, क्योंकि तप के मूल में जब पहुंचोगे तो तुम यह विचारोगे कि हमारा आहार कैसा है? मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा था कि जब हम आचार्यो के आश्रम में अध्ययन करते थे तो आचार्यजन ने एक समय छह माह

का अनुष्ठान किया और छह माह के अनुष्ठान में एक-एक माह एक-एकरूप में उन्होंने व्यतीत किया, उसमें रमण करने लगे। उन्होंने एक समय वायु का सेवन किया। वायु वेग में रमण कर रही है तो वायु में वह सब तत्त्व विद्यमान होते हैं जैसे जल है, अग्नि है और गुरूतव यह पृथ्वी के रूप में है। वह जब प्राणायाम करता है गति में रमण करता हुआ अपने प्राण को अपान में मिलाना प्रारम्भ करने लगता है, तो सत् जो प्रकृति के मण्डल में पोषक तत्त्व है, वह उसे ग्रहण करने लगता है। उस पर किसी का अधिकार नहीं होता और जब किसी का अधिकार नहीं होता तो उसका आन्तरिक जगत निर्द्वन्द्व रहता हैं, निर्द्वन्द्व रहने से उसके मन की प्रवृत्ति निर्द्वन्द्व बन जाती है, क्योंकि आत्मा का प्रकाश मन के ऊपर जाता है। मन वास्तव में प्रकृति का तत्त्व होने से जड़वत है, परन्तु जब आत्मा का निष्पन्न प्रकाश जाता है, तो मन भी निष्पन्न हो जाता है, पवित्र हो जाता है। इसीलिए वह देवासुर संघर्ष कहा जाता है।

मेरे प्यारे! मैं तुम्हें बहुत गंभीरतम रहस्यों में ले गया हूँ। मैं ले जाना तो चाहता नहीं था परन्तु वेद के मन्त्र ही इस प्रकार के हैं। जब वेद का उद्गीत गाया जाता है, तो वह गम्भीरता में ले जाता हैं वेद के ऋषि ने कहा, तपम् ब्रह्मणा तपम् रूद्रो भागम् ब्रह्मणा तनाः कि प्रत्येक दशा में मानव को तप करना चाहिए और तपस्वी वह होता है, जो आहार और व्यवहार को पवित्र बनाता है। आहार और व्यवहार के पवित्र होने से प्रवृत्तियों का जन्म होता है। प्रवृत्ति जब सूक्ष्मतम रहस्यों को जानने के लिए तत्पर हो जाती है, तो उसका तप सफलता को प्राप्त हों जाता है। विचार-विनिमय यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती और उसके ज्ञान और विज्ञान को जानते रहें। यही हमारा लक्ष्य है। इसी को हमें प्राप्त करना चाहिए। आज हमारे यहाँ वेद का ऋषि अपनी-अपनी प्रतिभा में मानव को प्रतिष्ठित कर रहा है और वह प्रतिष्ठि में रमण करने वाला ही परमपिता परमात्मा की महती को जानने लगता है, उसे ज्ञान और विज्ञान में रत्त हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है कि हम ऋषि-मुनियों के विचारों से अपने विचारों को पवित्र बनायें। ऋषि-मुनियों ने कहा कि बाह्य और आन्तरिक जगत दोनों को ऊंचा बनाना चाहिए। भौतिक याग, अग्नि के मुखारबिन्दु मे हूत करने से गृह और हमारा बाह्य जगत पवित्र बनता है। आन्तरिक जगत के लिए हमें साधना में प्रवेश हो जाना चाहिए। साधना में आध्यात्मिकवाद को विचारना चाहिए कि आत्मा का प्रतिबिम्ब मन पर आता है और मन इन्द्रियों का सजातीय बना देता है। जहाँ मन रहता है वहीं मेरे पुत्रो! स्मरण शक्ति रहती है, जहाँ मन नहीं रहता वहाँ इन्द्रियाँ रहते हुए भी वह संसार को नहीं जान पाता। मेरे प्यारे! देखो, मन और आत्मा दोनों का परस्पर समन्वय रहता है क्योंकि मन प्रकृति का तन्तु है और यह जो आत्मा है, यह प्रकाश है, और जब उसके प्रकाश में मन भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में परिणित हो जाता है तो जैसा जिसका आहार और व्यवहार होता है, उसकी के अनुसार उसकी प्रवृत्ति बनती है। उसी क्षेत्र में कोई-कोई साधक आत्मा के सदुपयोग करता है और कोई ऐसा है, जो उस प्रकाश का दुरूपयोग करके, मेरे पुत्रो! यह जो पंच महाभूतों वाला शरीर है, इसे भ्रष्ट कर देता है।

मेरे प्यारे! आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की महती हो जानते रहें। परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान बड़ा अनन्तमयी माना गया है। इसके ऊपर चिन्तन करता-करता मानव अन्त में अन्तर्मुखी हो जाता है, नेति-नेति उद्गीत गाने लगता है। आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि हम परमपिता परमात्मा को नम्रता से जानें और काया का अभिमान न करें। यह तो संसार की कृतियां कहलाती हैं, हम उस देव की महिमा को जानते रहें। उसका ज्ञान और विज्ञान, उस अनन्तमयी में से हम भी कुछ प्राप्त कर लें, ऐसा हमें प्रयत्न करना चाहिए। आज के वाक्य का उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि चौबिस होताओं के द्वारा यज्ञमान जब याग करता है, तो उसका याग

सफलता को प्राप्त होता है। आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों में सफलताको प्राप्त कर लेता है। वह प्राणों के स्वरूप में रमण कर जाता है। इसलिए प्रत्येक प्राणी में अपने में प्राणों का गुणाध्यानम् करते हुए, अग्रणीय बन करके, मानवीयता को धारण करके इस सागर से पार हो जाए। समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन। चंडीगढ, १२-०१-१९९१

१३ चौबीस होता ०६ ०१ १९९२

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता हैं क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और जितना भी यह जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा हैं, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में, प्रायः वे परमपिता परमात्मा दृष्टिपात आते रहते हैं क्योंकि जड़ और चेतना दोनो ही प्रकार का जगत मानवीयतव से गुथा हुआ है और वह मनस्तव विद्यमान रहता हैं आज का हमारा वेदमन्त्र कह रहा हैं वेदां भू वर्णनं आपा रेवस्तुतं मानो यह जो परमपिता परमात्मा का अमूल्य जगत है यह रेतस कहलाया गया है। तो इस रेतस के ऊपर अपना विचार-विनिमय प्रारम्भ करते हैं तो मानो यह उस परमपिता परमात्मा की अनुपम चन्द्र अवस्तुतं क्योंकि चन्द्रमा का नामोकरण वृवस्तव कहा गया हैं वह चन्द्रमा हमारे जीवन का उद्बोधक हैं और वह अमृत की वृष्टि करने वाला है। इसीलिए परमपिता परमात्मा को हमारे एक अमृतमयी कहा हैं क्योकि इसका जो ज्ञान और विज्ञान हैं वह सर्वत्र अमृतमयी कहा गया हैं वे परमपिता परमात्मा अमृतमयी है क्योंकि यह संसार उस परमपिता परमात्मा के रेतस्तव में निहित हो रहा है। तो हम उस परमपिता परमात्मा को मानं ब्रह्मे सुतं जो संसार का निर्माण करने वाला हैं और प्रत्येक मानव अपने में इसका गुणगान गा रहा हैं प्राणी मात्र मानो उसी में ओत-प्रोत हो रहा हैं तो आज का हमारा वेदमन्त्र कह रहा है यज्ञनं ब्रह्मा वस्सुतं देवाः क्योंकि वे परमपिता परमात्मा ब्रह्मण है, ब्रह्म है और उसी में जब हम ओत-प्रोत होते हैं तो मानो हमे ब्रह्मत्व अपने में ही दृष्टिपात आता रहता है। आओ, मुनिवरों! देखो, आज का हमारा वेदमन्त्र कहता हैं प्रकाशां भविते श्वज्ञनं ब्रह्मा क्योंकि यह परमपिता परमात्मा प्रकाशक हैं और उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान भी प्रकाश में रत्त करने वाला है। मुनिवरों! देखो, उन्होंने जब आचार्यों के समीप, हम विद्यामन हुए, तो यह कहा करते थे कि आप वेद को हमारे प्रकाश के रूप में वर्णन करते रहे है। तो आचार्यजनों ने कहा है कि मानव के अन्तःकरण का जो प्रकाश है वह वेद रूपी प्रकाश है, जिसको आपोमयी वर्णित किया गया हैं मानो देखो, वह अन्तःकरण को प्रकाश में लाने वाला है, क्योंकि दो प्रकार का जगत, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, माना गया हैं एक बाह्य जगत है एक आन्तरिक जगत माना गया है। तो मुनिवरों! देखो, जब हम दोनों जगतों के ऊपर विचार-विनिमय करते है, तो बाह्य जगत, यह संसाम मानो देखो, यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मत्व अपने में ही दृष्टिपात आता है। परन्तु एक आन्तरिक जगत माना गया है जो अन्तर्हृदय में विद्यमान रहता है जिसको चित्त मण्डल में, जिसकी प्रधा मानी गई है।

तो विचार आता है कि जब हम यह विचारते हैं कि यज्ञं भवितां ब्रह्मा मेरे पुत्रों! देखो, मुझे आज का वेद का मन्त्र स्मरण आ रहा हैं जब ऋषि-मुनियों की वे चर्चाएं स्मरण आती हैं क्या ऋषि-मुनि इस सम्बन्ध में क्या उदगार क्या प्रगट करते हैं वे उदगार मुझे स्मरण आ रहा हैं मुझे वह काल स्मरण हैं जिनकी विवेचना मैं कई समय में मानो देखो, वेद प्रहा उनकी विवेचनाओं को मैं पूर्व काल में भी प्रगट कर गएं हैं। आज मुझे पुनः से स्मरण आ रहा हैं क्योंकि एक-एक वेदमन्त्र हमें उस मार्ग पर ले जाता है जिस मार्ग पर जाने के पश्चात हमारें यहाँ अन्तःकरण में प्रकाश की उज्ज्वलता प्राप्त होने लगती हैं तो मेरे पुत्रों! देखो, मुझे वह काल स्मरण है जहाँ, अपने विचारों में एक भूमिका बनाता हैं ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आश्रम में विद्यमान हैं और आश्रम में विद्यमान हो करके, वह अक्रातं ब्रह्मों सम्मनाः वेद का मन्त्र न्यौदा में, वेद का मन्त्र उच्चारण करता हैं और उच्चारण करता हुआ ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हैं और पंक्ति में विद्यमान हो करके याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं उच्चारणां

ब्रह्मो क्या हे ब्रह्मचारियों! तुम प्रातःकालीन अपने नैतिकतव को ऊँचा बनाओ, क्योंकि हमारे यहाँ दो प्रकार का विचार परम्परागतों से माना गया हैं एक नैतिक विचार होता हैं। एक बाह्य विचार होता हैं तो तुम अपने में अपने जीवन में अपनी नैतिकता को ऊँचा बनाने के लिए मानो तुम वेदमन्त्रों का उच्चारण करो, अमृतं यागां भवितं तुम याग करो। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारियों को इस प्रकार की नैतिक शिक्षा देते हुए आचार्य अपने में न्यौदामयी वेदमन्त्रों का उदगार देते हैं और उदगार दे करके और वेदमन्त्रों का उद्गीत गाते उन्होंने कहा क्या वेदमन्त्र यह कहता है कि तुम याज्ञिक बनो। मेरे प्यारे! देखो, जब यह वाक् उच्चारण करने लगे वेदमन्त्रों का बहुत-सा उद्गीत गाने लगे, तो उन्होंने कहा, तुम वाजपेयी याग करो वाचन्नं ब्रह्मा वर्णं तम ब्रहे तुम मानो देखो, हमारे यहाँ अश्वमेध याग करो। नाना प्रकार के यागों का, वैदिक साहित्य में प्रायः वर्णन आता रहा हैं और यहां आध्यात्मिकवादी बनने के लिए तुम आत्मा को जानने का प्रयास करो। तो मेरे पुत्रों! देखो, जब यह वाक् ऋषि उच्चारण कर रहे हैं तो उस समय एक ब्रह्मचारी ने एक रूपक बनाया और रूपक बना करके उनमें से एक यज्ञदत ब्रह्मचारी उपस्थित हुए और यज्ञदत ब्रह्मचारी के समीप महर्षि श्वेतकेतु विद्यमान हुए। तो उन्होंने कहा हे प्रभु! आप याग की बड़ी विवेचना कर रहे हैं परन्तु एक ब्रह्मचारी हमारे समीप उपस्थित हैं और ब्रह्मचारी याग करना चाहता है तो याग हम कैसें करें? उन्होंने कहा कि तुम याज्ञं भवा सम्भवे महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा क्या तुम मानो देखो, अमृतं होतां भू उन्होंने कहा-प्रभु! होताओं की आवश्यकता होती है। और होता होने चाहिएं तो यज्ञमान यह चाहता है मैं याग तो करूं, परन्तु कितने होताओं के द्वारा याग करूं? उन्होंने कहा कि यज्ञस्तुमं ब्रहे तुम याग करन चाहते हो तो मानो चौबीस होताओं के द्वारा याग होना चाहिए। चौबीस होताओं की मानो देखो, यह पुरी हैं, यह यज्ञशाला हैं और इस यज्ञशाला में विद्यमान हो करके तुम मानो अपने में चौबीस होताओं के द्वारा याग करो। उन्होंने कहा-प्रभु! वह चौबीस होता कौन से हैं जिनके द्वारा हमें याग करना हैं उन्होंने कहा कि सबसे प्रथम मानो तुम्हारी मानो पांच ज्ञानेन्द्रियाँ होनी चाहिएं और पांच कर्मेन्द्रियाँ और दस प्राण और देखो, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह चौबीस होता कहलातो हैं इन होताओं के द्वारा जब तुम याग प्रारम्भ करोगे, तो तुम अपने याग में सफलता को प्राप्त हो जाओगे, प्रत्येक मानव देखो, यज्ञमान जब सफलता को प्राप्त करना चाहता है, अपने मानवीय जीवन को आन्तरिक जगत को सजातीय बनाना चाहता है तो उसको मानो देखो, इन चौबीस होताओं को अपने में चिन्तन में लाना होगा वह चौबीस होता हैं सबसे प्रथम देखो, यह जो बाह्य जो इन्द्रियाँ हैं जो बाह्य जगत को दृष्टिपात करती रहती हैं, इन इन्द्रियों का नामकरण हमारे यहाँ कर्मेन्द्रियाँ कहा जाता हैं इनसे मानव सुक्रियाओं में रत्त हो करके अपने में कर्म करते चले जाएं और देखो, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ है, जिनके द्वारा हमें कर्म करना हैं और उनको सबके विषयों का साकल्य बनाना है। तो यह आन्तरिक जगत बन जाता है जब हम साकल्य बनाते हैं और वह साकल्य को हमारे यहाँ चरू के नाम से भी वर्णन किया गया है। मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने वर्णन करते हुए कहा है, क्या यह जो चरू है इसका बनाना बहुत अनिवार्य है, बिना चरू को बनाएं हुए मानो यज्ञमान अपने याग को सफलता को प्राप्त नही कर सकता, तो मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने कहा सम्भव ब्रहे तुम ज्ञानेन्द्रियों को जिनसे तुम्हें ज्ञान होता हैं मानो देखो, ज्ञानेन्द्रियों से सर्वत्र ब्रह्माण्ड को मापने का प्रयास करो। मेरे पुत्रों! देखो, ज्ञान से सबसे प्रथम ज्ञानेन्द्रियों में प्रत्येक देवता विद्यमान हैं जैसे नेत्रों में अग्नि विद्यमान होती हैं श्रोत्रों में मुनिवरों! देखो, अन्तरिक्ष विद्यमान होता हैं और मुनिवरों! देखो, इस त्वचा में वायु विद्यमान होता हैं रसना में रसों का स्वादन हो रहा हैं रस विद्यमान होते हैं और घ्राण में मानो मन्द और सुगन्ध दोनों विद्यमान है। जब मानो देखो, इन पांचो ज्ञानेन्द्रियों का चरू बनाना प्रारम्भ करोगे, तो मेरे पुत्रों! देखो, सबसे प्रथम अग्नि का जो वास रहता है वह मानो देखो, नेत्रों में रहता है जब अग्नि को तुम शुद्ध रूप से चिन्तन में लाना प्रारम्भ करोगे क्योंकि यह जो अग्नि है, यह देवताओं का

दूत कहलाया गया है। देवतां भूतं ब्रह्मे वर्णा क्योंकि यह देवताओं का दूत हैं और देवताओं का दूत ही मानो देखो, देवतव को प्राप्त करा देता हैं इसीलिए वह नेत्रों में वास करता है जितना भी दृष्टिपात किया जाता हैं और दृष्टिपात करते-करते एक वैज्ञानिक अपनी आभा में बहुत दूरी-ता में परिणत हो जाता हैं और नेत्रों में मुनिवरों! देखो, अग्नि को स्थूल रूप में, सूक्ष्म रूप में सर्वत्र रूपों में परोक्ष रूपों में मेरे पुत्रों! देखो, अपने में दृष्टिपात करता रहता हैं अग्नि का स्वरूप बना लिया जाता हैं जो अग्नि मेरे प्यारे! छेखो, सूत्रों में लोक-लोकान्तरों को सूत्रित कर रही हैं वही अग्नि हमारे शरीर में मानो देखो, उष्ण बन करके रहती हैं वही अग्नि मुनिवरों! देखो, गृह आश्रम में मुनिवरों! देखो, वह अग्नि गृहपथ्य नाम की बन करके रहती हैं वही अग्नि ब्रह्मचर्य जीवन में देखो, गार्हपथ्य नाम की अग्नि बन करके रहती हैं और वही अग्नि देखो, वैश्वानर, जो वानप्रस्थ काल में रहती हैं और आह्वन्यां नाम भूतं ब्रह्मणा ब्रह्मे आह्वनीय अग्नि मेरे प्यारे! देखो, ज्ञान काण्ड में रहती हैं इन चारों प्रकार की अग्नियों को तुम्हें समेटना हैं और समेट करके मानो देखो, इनका चरू बनाना हैं इसी प्रकार यह अग्नि मानो देखो, ब्रह्मा यह अग्नि मानव के नेत्रों में प्रतिष्ठित हो जाती हैं और यह अग्नि कैसे प्रतिष्ठित होती हैं मेरे पुत्रों! देखो, वाणी से सुदृष्टिपात करते रहो, तो इसमें मानो देवतव अपने में वास करता हैं जब राष्ट्रीय पद्धति के आधार पर, नेत्रों को दृष्टिपात करते रहोगे, उसमें रजोगुण की भावना मानो देखो, विशेषकर होती हैं वह अप्रतं देखो, तरंगों में तरंगें स्थित होती रहती हैं और जब तुम मानो परमाणुवाद में इसको ले जाओगे उसी ज्योति को देखो, वह विज्ञान के वांगमय में प्रवेश हो जाती हैं वही अग्नि मेरे पुत्रों! देखो, याज्ञिक अग्नि को निहारते रहोगे, और निहारते हुए मानो देखो, मुनिवरों! यह अग्नि याग कर रही हैं अग्नि देवताओं का मुख बन करके मुनिवरों! व्यापकता में परिणत करा देती हैं और अग्नं ब्रह्मा अग्ने व्रता वह ब्रह्मा अग्नि में मानो देखो, ब्रह्म ज्ञान की दृष्टि से वह दृष्टिपात करती रहती है।

तो विचार आता है यह अग्नि अपने में बेटा! कितनी भव्यता में परिणत रहती है तो हमें इस अग्नि के ऊपर विचार-विनिमय करना चाहिए यह अग्नि देवताओं का मुख हैं यह अग्नि ही सूत्राणि जैसे मानो देखो, माला नाना प्रकार के मनके हैं एक सूत्र में पिरोने से माला बन जाती हैं इसी प्रकार यह अणु और परमाणु जब उस अग्नि में दृष्टिपात करते है। तो यह संसार मानो देखो, अग्निमय दृष्टिपात आने लगता हैं तो उस अग्नि का चरू बनाना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, अन्तरिक्ष में ले जाईएं और अमृतं देखो, वह जो हमारे श्रोत्र हैं इनका समन्वय मुनिवरों! देखो, अन्तरिक्ष से रहता हैं, दिशाओं से रहता हैं, शब्द जाता है शब्द का जब उदगार उत्पन्न होता है मानो वह उदगार अन्तरिक्ष में जाता हुआ वह दिशाओं में प्रवेश करता हैं और दिशाओं से प्रवेश करता वही मानो देखो, तप है बेटा! वह श्रोत्रों में आ करके वह शिरोधार्य हो जाता है। तो वह शब्द मुनिवरों! देखो, वह अमृतं वह अप्रता है तो कहा उसकी प्रथा कहलाती है, वह मानो ओत-प्रोत होने वाला यह अन्तरिक्ष हैं, उसी में यह प्रतिष्ठा को प्राप्त करता हैं और जब यह उसमें प्रतिष्ठित हो जाता हैं तो मानो देखो, अन्तरिक्ष से एक ध्वनि आ रही है ध्वनित होने वाला जगत है।

मानो मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय बेटा! महर्षि अंगिरस ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे और आसन पर विद्यमान हो करके वह साधना में परिणत हो रहे थे, और साधना के लिए मानो ध्वनियों को ध्वनित कर रहे थे अपने श्रोत्रों में ध्वनि को अपने में ध्वनित करते हुए उसको मानो अपने मे अनुभव कर रहे थे, अनुभव करते हुए मुनिवरों! देखो, यह ध्वनि साधारण रूपों से ध्वनि आ रही हैं एक मानव, मानो किसी के नामोकरण को पुकार रहा हैं एक तो वह ध्वनि कहलाती हैं एक वही ध्वनि मुनिवरों! देखो परोक्ष रूप में मानो आत्मीय जगत में समहित हो जाती हैं और समाहित के पश्चात मानो वही अग्नि, वही ध्वनि जब हम अपने में ध्वनित्तव को स्मरण करते हैं तो उसका अवधान होने लगता है, एक ध्वनि होती हैं जो मानो देखो, अन्तरिक्ष में

ध्वनियां आ रही हैं और वह प्राणों की गर्जना हो रही हैं और प्राणों की गर्जना हो करके वह मेरे प्यारे! एक परमाणु दूसरे में प्राणों का व्यवधान कर रहा हैं, ध्वनि को भी, वह श्रवण करता हैं एक ध्वनि वह है जो साधक अपने आश्रम में विद्यमान हो करके मेरे प्यारे! देखो, अपने हर्ष स्वर को अपने में श्रवण करता हैं, जो प्राणों का संघर्ष होते हुए देखो, मुनिवरों! देखो, वह परमाणु रूप में मानो संघर्ष रहा है, तो उन्हें ध्वनियां आ रही हैं और ध्वनि आते-आते मुनिवरों! देखो, वह मानव के मस्तिष्क में उन ध्वनियों का वह अपने में अनुभव करने लगता हैं, एक वह ध्वनि कहलाती हैं। एक ध्वनि नही बेटा! अनहद ध्वनि मानी गई हैं उन ध्वनियों को अपने में धारण करता रहा हैं मेरे पुत्रों! देखो, वह जो अनहद ध्वनि हैं वह मानव को देखो, ब्रह्माण्ड का दर्शन कराता है और उसके उससे जो ध्रुवा में मानो ध्वनि हैं वह दिशाओं का ज्ञान करा देती हैं दिशा से शब्द गमन करता हैं और अशुद्ध शब्द उसका मिलान होता है वह श्रोत्रों की प्रतिक्रियाएं अवृत हो जाती हैं वह पृथ्वी में मानो गमन करता रहता हैं मेरे पुत्रों! देखो, वह ध्वनि हैं और वह भी ध्वनि है देखो, जो सन्धूनं ब्रह्मा कृतं देवाः जो मेरे प्यारे! देखो, ध्वनि अपने में ध्वनित हो अन्तरिक्ष में जो शब्द मानो शब्द अपने में संघर्ष कर रहे है तो देखो, उन शब्दों को वह अपने में श्रवण करता रहता हैं तो महर्षि अंगिरस मुनि महाराज का जीवन जब स्मरण आता है तो बेटा! देखो, वह मानो देखो, अपनी ध्वनियों को अन्तरिक्ष से देखो, अपने में श्रवण करते रहे हैं तो विचार आता है कि ऋषिवर से जब यह प्रश्न किया कि महाराज! तुम क्या कर रहे हो? जालवी ऋषि ने यह प्रश्न किया था। तो जालवी से कहा कि भगवन! मैं अन्तरिक्ष में अपने पूर्वजों के, शब्दों को श्रवण कर रहा हूँ मानो देखो, जैसे हमारे यहाँ रक्त में, शरीर देखो, शरीर में देखो, जो ध्वनि हैं वह ध्वनि पर ध्वनियों का अव्रेश होता रहता हैं मानो देखो, वह ध्वनि अप्रत्त होती हुई मानो एक दूसरे में समावेश होती हुई, वही ध्वनि मुनिवरों! देखो, हमारे पूर्वजों के शब्दों में क्या, जो रक्त के कणों में, रक्त में जो चित्रों की ध्वनि हैं उसे भी प्रायः दृष्टिपात करने के लिए उद्वित हुए है तो इस प्रकार मेरे प्यारे! देखो, साधक अपने में साधना करता है तो साधना करता हुआ बहुत दूरी चला जाता है, विचार-विनिमय उसका बड़ा गम्भीर हो जाता हैं वह प्रत्यक्ष से अपरोक्ष में चला जाता हैं और उसी को अपनी क्रियाओं में रत्त करने लगता है, इसी प्रकार मेरे पुत्रों! देखो, वह जो ध्वनि पर ध्वनि आ रही है, कहीं उसको अनहद ध्वनि कहते हैं कहीं उसको मुनिवरों! देखो, भैखरी ध्वनि कहते हैं उसको भिन्न-भिन्न रूपों से उसका वर्णन किया गया है तो मेरे प्यारे! देखो, ध्वनि पर ध्वनि, कही मानव शब्द उच्चारण करता है तो वही शब्द देखो, अन्तरिक्ष में जाता है वही दिशाओं में समन्वय हो करके पुनः बेटा! देखो, वही शब्द अपने में ध्वनियों को अप्रतं देखो, परमाणु अग्नि की धाराओं पर वही मुनिवरों! देखो, शब्द जब गमन करता है तो द्यौ में प्रवेश कर जाता हैं वही मुनिवरों! देखो, जब देखो, अमृतं अन्तरिक्षं अकृतियों में प्रवेश करता है तो बेटा! वह भू में रमण करता रहता हैं और जब मुनिवरों! देखो, वह तरंगों की प्रवृत्ति में जाता हैं तो मुनिवरों! देखो, भू में रमण करता रहता हैं इसी प्रकार यह शब्द अपने में बड़ा विचित्र देखो, ऋषि कहते हैं कि इसका साकल्य बनाओ और साकल्य बना करके देखो, अग्नि में उसे समावेश कर दो और समावेश करके मुनिवरों! देखो, अप्रतं उसे हृदय में उसकी परीक्षा और हृदय में ही वह जो यज्ञशाला का निर्माण हो रहा हैं तो मुनिवरों! देखो, हृदय मे उसका यज्ञ करो हृदय में यज्ञं ब्रह्मा उसी को हृदय में समावेश करके समावेश करके उसकी समता को धारण करते चले जाओ। तो मेरे प्यारे! देखो, आगे वेद का ऋषि कहता हैं अच्युतं ग्रहणां भू अपृते देवाः यह जो घ्राण है यह नाना प्रकार की सुगन्धियों को ग्रहण करती रहती है। तो सुगन्ध में बेटा! देखो, बड़ी विचित्रता होती हैं वह घ्राण के माध्यम से, जो भी घ्राण से सुगन्ध लेता है उसका समन्वय देखो, हृदय से हो जाता है, हृदय में मानो वह समावेश होती रहती हैं वही ध्वनि मानो देखो, वही उसकी जो सुगन्ध हैं वह पृथ्वी से समन्वय करती है तो पृथ्वी में नाना प्रकार के गन्ध का जन्म होता हैं और उदबुद्ध हो करके उसको मुनिवरों! घ्राण

के माध्यम से मानो देखो, साधक उसको अपने में ग्रहण करता हैं मुझे स्मरण आता रहता हैं भगवान राम का जीवन भगवान राम का जीवन ऐसा था कि बाल्यकाल में जब वह वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ वह अध्ययन करते रहते थे तो मेरे प्यारे! देखो, तो जब ऋषि प्रकार का उपदेश देते, नैतिकता को क्रिया लाने का प्रयास करते थे, जब प्रयास करते थे तो उसको हृदय में मानो हृदयग्राही बनाते हुए तो भगवान राम मेरे पुत्रों! सम्भवा ब्रह्मा वर्णसुतं देवाः तो मुनिवरों! देखो, राममृतं जब राम इस प्रकार अध्ययन करते तो बेटा! जब वन उन्हें प्राप्त हो गया और वन के प्राप्त हो जाने के पश्चात मुनिवरों! देखो, वन से पूर्व ही जब विश्वामित्र के साथ थे, उससे अमृतं मानो देखो, अमृत को पान करते थे, तो वह पृथ्वी से गन्ध को ले करके मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने अपने निषाद गन्ध से यह कहा कि यह जो पृथ्वी है, इस पृथ्वी में ऐसी गन्ध हैं क्या इसमें अन्न उपजाऊ क्या इसमें अन्न उत्पन्न किया जा सकता हैं तो वह पृथ्वी की गन्ध को ले करके मानो देखो, वह खनिजों को जानते रहे हैं मेरे प्यारे! देखो, राम एक समय अपने आसन पर विद्यमान थे, आसन पर विद्यमान हो करके जब पृथ्वी की गन्ध को, उन्होंने लिया, तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा हे लक्ष्मण देखो, वैज्ञानिकों का एक समूह एकत्रित करो, उन्होंने वैज्ञानिकों का समूह एकत्रित किया। उन्होंने कहा यह जो पृथ्वी है इसमें देखो, अमुक दूरी पर, इस प्रकार का खनिज विद्यमान हैं, जिस खनिज में अग्नि तत्त्व प्रधान हैं मानो देखो, इसको तुम जानने की इच्छा करो। मेरे प्यारे! देखो, जब पृथ्वी में उसका अवधान किया गया जानने की इच्छा की गई तो मेरे पुत्रों! देखो, उस पृथ्वी में उन्हें वह तत्त्व प्राप्त हुआ तो मानो देखो, यह घ्राण इन्द्रिय है, इसका समन्वय पृथ्वी से हैं इसका देवता पृथ्वी हैं और पृथ्वी ही की गन्ध से मानव अपनी साधना में परिणत होते रहे हैं। मुझे वह काल स्मरण हैं जब मुनिवरों! देखो, महर्षि लोमश और कागभुषुण्ड जी दोनो अपने में अनुसन्धान करते रहे तो बेटा! देखो, अनुष्ठान किया, अनुष्ठान करने से जब, उन्होंने याग किया, और याग में इस प्रकार का जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाएं तो वायु मण्डल मानों देखो, पृथ्वी की गन्ध को शोधन करना हैं शोधन करने वाला मानो देखो, साधक साधना करता है तो बेटा! उसकी साधना पूर्ण होती हैं इसीलिए महर्षि जन जब राजा भी अपने राष्ट्र को त्याग करके भयंकर वन में तपस्या करते रहे हैं, उस तपस्या का परिणाम यही होता रहा है कि अमृतम् देखो, वायुमण्डल को पवित्र बनाना, जिससे प्रत्येक इन्द्रियों में मानो एक ओजस्तव उत्पन्न हो जिससे परमात्मा के समीप जाने का हम प्रयास करें और हृदय को हृदयग्राही बना करके हृदय को पवित्रता की वेदी पर ले जाएं तो ऐसा मुनिवरों! देखो, वेदमन्त्रों में आज के वेदमन्त्रों में इस प्रकार के उद्गीत गाया जा रहा था। तो विचार-विनिमय क्या, मुनिवरों! देखो, भगवान राम का जीवन मुझे स्मरण आता रहा हैं उनके जीवन में देखो, वह सदैव घ्राण इन्द्रिय के ऊपर अनुसन्धान करते रहे, कागभुषुण्ड जी भी मानो देखो, घ्राण इन्द्रियों के ऊपर विचार-विनिमय करते हुए प्राणायाम की देखो, संकल्पोमयी प्राणायाम और खेचरी मुद्रा में अपने को मुद्रित ले जा करके साधना में पवित्रता को प्राप्त कर गएं और मानो देखो, आत्मा के समीप जाने का प्रयास करें तो मेरे पुत्रों! देखो, इस प्रकार की साधना प्रायः साधक अपने में अपने में परिणत होते रहे है।

तो विचार-विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, वेद का ऋषि कहता है, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यज्ञदत ब्रह्मचारी अमृतं ब्रह्मा देवप्रह्वा लोकां मानो देखो, तुम इसीलिए इसके ऊपर अन्वेषण करो, अन्वेषण करते हुए तुम मानो घ्राण इन्द्रियों को जानों उसके पश्चात रसों का स्वादन करने वाली जो इन्द्रिय हैं उसे रसना कहते हैं वह रसों को अपने में ग्रहण करती रहती हैं बेटा! देखो, हमारे यहाँ इस प्रकार के ऋषि हुए हैं जिन्होंने आपो को ले करके और आपो सूत्र का हम वर्णन कर रहे थे तो जैसे अमृतं ब्रह्मा तो देखो, आपो में जिसमें रत्त हैं यह षट रस है मानो देखो, कर्म ब्रह्वे कृतं उन षट रसों को जानने वाला मेरे प्यारे! देखो, जो रसना हैं वह मुनिवरों! देखो, कहीं खेचरी मुद्रा से जल को अपने में सिंचन करने लगते हैं कहीं वही रसना हैं जो मेरे प्यारे! देखो, अग्र भाग में

चन्द्रमा के रसों को ग्रहण करती रहती हैं और चन्द्रमा की कान्ति को दृष्टिपात करते हुए यह जान लेता है क्योंकि साधक चन्द्रमा की कान्ति में इस प्रकार का देखो, रस आ रहा हैं इस प्रकार का रस है मानो देखो, दूषित रस भी होता है पवित्रतव भी होता है। पवित्रता को अपने में ग्रहण करता रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, रस अप्रतं वह देखो, जो षट रस हैं उसमें मानो देखो, मधुपन भी हैं और ओसनं ब्रहे मुनिवरों! देखो, हम उसी में हम षट रस को दृष्टिपात करते हैं देखो, मधु खटं ब्रहे तिक्त ब्रहे अमृतं कैषला और देखो, इस प्रकार के रसों का उसमें प्रवाह रमण करता है और वह जो रमण करता रहता है परन्तु देखो, उसको जानना एक-एक प्रतिक्रिया में जानकारी वह अपने में देखो, जल में वह रस प्राप्त होता हैं और चन्द्रमा की कान्तियों में प्राप्त होता हैं वही रस देखो, सूर्य की मानो देखो, आभा में ऊर्ज्वा में प्राप्त होता रहता है। तो वह मुनिवरों! देखो, उसको अपने में ग्रहण करने वाला और देखो, साधक होता हैं और जब साधक ग्रहण करता रहता हैं अपने में जानता इन्द्रियों के रसों में, रसित होने लगता है। तो मेरे प्यारे! देखो, वायुमण्डल में गमन करने वाली वायु है, और यह जब परमाणुओं को ले करके जल से चलती हैं तो वह मुनिवरों! देखो, रसना साधक रसना से जान लेता हैं क्या इसमें देखो, अमुक शीतल परमाणु हैं और वह परमाणु इस प्रकार के है। क्या मानो देखो, जब अग्नि को ले करके गमन करता हैं वायुमण्डल तो उसमें उष्णाता का भरण होता हैं और उष्ण परमाणु जब जल के मानो देखो, वह देखो, रसना के परमाणु से सम्मिलन करते है तो उन परमाणुओं का मिश्रण हो करके वह हृदय में प्रतिष्ठित हो जाते है। तो विचार आता रहता है बेटा! यह अपनी प्रत्येक इन्द्रियां का जो विषय जैसे हमारे यहाँ देखो, त्वचा में जल देखो, वायु का स्पर्श होता हैं और वायु मानो देखो, उसको ग्रहण करती रहती हैं वायु उसको देखो, अपने में स्पर्श करती हुई जैसे माता का बाल्य माता अपने बाल्य से प्रीति कर रही हैं, और प्रीति करते हुए प्रीति मानो देखो, बाल्य मग्न हो रहा हैं वही मानो देखो, अपनी इन्द्रियों से मानो अगुंष्ठ मात्र से बालक को शिक्षा दे रही हैं तो बालक उस शिक्षा को जान रहा हैं परन्तु देखो, केवल वह एक कणित मात्र से देखो, दृष्टिपात कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो, उस ज्ञान में प्रवेश हो रहा हैं और वह त्वचा का जो अपना अमूल्य विषय हैं वह मुनिवरों! देखो, जब तक प्रीति करता रहता है वह प्रीति में मग्न रहता हैं और जब उसे रजोगुण क्रोध आ जाता हैं तो क्रोध को जान करके देखो, बाल्य अपने में देखो, शोकातुर हो जाता है। इसी प्रकार यह सर्वत्र मेरे प्यारे! देखो, यह त्वचा का अपने में अमृतं देखो, यह जो वायु का समन्वय है, इसका जो देवता हैं त्वचा का जो वह वायु कहलाया गया हैं और वायु को ले करके ही मुनिवरों! देखो, वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतिभा को जानने लगता हैं मुझे बहुत-सा काल स्मरण है पूज्यपाद गुरुदेव जब हमें अध्ययन कराते रहते तो अध्ययन करा करके मानो देखो, एक पंक्ति में ब्रह्मचारी विद्यमान होते और विद्यमान हो करके वह त्वचा के विषय को वायु देवता का हमें भान कराते क्या वायु में मानो देखो, सर्वत्र गुण विद्यमान रहते हैं, यह प्राण देता है यह प्राण को अपान में प्रवेश कराता हैं और मानो देखो, वायु जब मुनिवरों! देखो, जल के परमाणुओं को लेता हैं तो यह वायु मुनिवरों! देखो, इसमें शीतलता प्राण की प्रतीत होती है और जब यही अग्नि मानो देखो, अमृतं जब वायु में अग्नि के परमाणु होते हैं तो यह अपृति देखो, उग्र व्यान प्राण की प्रतिभा होती है।

तो आज मैं बेटा! इस सम्बन्ध में तुम्हें विशेषता में नही ले जाऊंगा केवल यह कि विचार यह लेना है हमें क्या हम अपने जीवन को कैसे महान बना सकते है, तो बेटा! ऋषि कहते हैं याज्ञां भूतं ब्रह्मा देवं यह हमारा आन्तरिक याग का समन्वय हैं इस सब मानो देखो, पंचीकरण को ले करके साकल्य बनाया जाए हैं और साकल्य बना करके इसमें मुनिवरों! देखो, इसी में ही हमारे में मधुपन है इसी में पौष्टिकता हैं और इसी में मेरे प्यारे! देखो, रचयिता हैं सर्वत्र गुण इसमें विद्यमान होते हैं और रोगनाशक भी यही कहलाया जाता हैं जब मुनिवरों! देखो, इनका साकल्य बना करके और हृदय रूपी यज्ञशाला में जो याग हो रहा है, हृदय रूपी यज्ञशाला में बेटा! हम हूत

करते हैं और कहते हैं प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा करके हूत करते हैं क्योंकि यह प्राण ही तो मेरे प्यारे! देखो, भक्षण करने वाला है। यह प्राण ही तो मेरे प्यारे! देखो, उदगव उत्पन्न करने वाला है।

तो विचार आता रहता है कि हम बेटा! इसके ऊपर विचार करने वाले बनें, तो वेद का ऋषि कहता हैं, हे ब्रह्मचारी! यदि तुम्हें याग करना है, तो हृदय को स्वच्छ बनाओं और हृदय में मानो देखो, हृदय में तुम इन्द्रियों के साकल्य को ले करके, याग करो जिससे तुम योगेश्वर बन करके और योग क्षेत्र में प्रवेश करके तुम योग्यता को प्राप्त कर जाओ। मेरे प्यारे! देखो, जब ब्रह्मचारियों को इस प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य शिक्षा देते, तो ऋषिवर के चरणों में ओत-प्रोत होने वाले ब्रह्मचारी अपने में धन्य स्वीकार करते रहे हैं तो विचार आता रहता है बेटा! मैं यह गम्भीर विषय यौगिक विषय को ले करके मानो तुम्हे इस प्रकार गम्भीरता में नही ले जा रहा हूँ केवल यह, क्या मुनिवरों! देखो, यह ब्रह्माण्ड को इन्द्रियों से मापा जाता है क्योंकि अग्नि को नेत्रों से, श्रोत्रों से देखो, अन्तरिक्ष को और घ्राण से मुनिवरों! देखो, पृथ्वी को, पृथ्वी के गर्भ को दृष्टिपात किया जाता हैं और मुनिवरों! देखो, रसं ब्रह्मा जल को रसों से मेरे पुत्रों! देखो, इनके नाना देवतवां देखो, लोक-लोकान्तरों से समन्वय होता है इसी प्रकार त्वचा विचार-विनिमय देवता अग्नि देखो, अमृतं ब्रह्मणां देखो, अग्नि से मिश्रित होने वाला वायु हैं जो मुनिवरों! देखो, मानव को नाना प्रकार की ऊर्ध्वा में गमन कराता है। तो विचार आता रहता है कि उन्होंने कहा कि इस प्रकार का साकल्य जब तुम बनाना जान जाओगे, तो हे ब्रह्मचारियों! तुम्हारा जीवन मानो ऊर्ध्वा में प्राप्त हो जाएगा, देखो, यह दशं ब्रह्मा वर्णं ब्रह्मे कृतं देखो, यह पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियों को देखो, ज्ञानेन्द्रियों में समावेश करो और ज्ञानेन्द्रियों को मानो प्राणों में समाहित कर दो और प्राणों में जब यह समाहित हो जाती हैं बेटा! पंच देखो, प्राण कहलाते हैं और पंच प्राण में प्राण, अपान, उदान, समान यह जो दस प्राण है इनको ज्ञानेन्द्रियों को इसमें समावेश करके और मुनिवरों! देखो, नाग, देवदत, धनञ्जय कुरू है यह सर्वत्र मानो देखो, समाहित हो जाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, योगीजन जब इनको समाहित करने वाला महान कहलाता है तो वह मेरे प्यारे! देखो, आन्तरिक जगत में यह प्रवेश कर जाते है। मेरे पुत्रों! देखो, आन्तरिक, मन बुद्धि और चित्त और अहंकार यह मानो देखो, मानो देखो, यह चौबीस होता कहलाए जाते हैं इनके द्वारा यज्ञमान अपने में याग करता हैं और याज्ञिक बनता हैं और याज्ञिक बन करके अपने को सौभाग्य स्वीकार करता हैं। मेरे पुत्रों! देखो, यह जो मन है, मन सर्वत्र जगत का स्वामीतव मानो देखो, अपने में स्वामीतव की प्रतिभा में रत्त रहता हैं वेदमन्त्र कहता है। व्रणां मना देवत्वं चित्रं ब्रह्वा कृतं देवो मना एक मन मानो देखो, मानव के चित्त में रमण करता रहता है, एक मन है जो ब्रह्माण्ड में परमात्मा के चित्त से जिसका समन्वय रहता है। मेरे पुत्रों! एक सार्वभौम मन हैं एक विशेष कहलाता हैं जो आत्मा के सन्निधान से गमन करता है जो आत्मा के प्रकाश में गमन करता हैं मन यह आत्मा मं ब्रह्वे मानो देखो, वह विशेष कहलाता हैं और जो परमात्मा के ब्रह्माण्डं ब्रह्वे जो मेरे प्यारे! विश्वभान अमृतं देखो, विभाजन करने वाला हैं वह मुनिवरों! देखो, वह परमात्मा के प्रकाश में मनस्तव की प्रतिभा जो प्रकृति चित्त में रत्त हो जाती है। मेरे पुत्रों! देखो, मैं तुम्हे गम्भीरता में ले जा रहा हूँ विचार आता रहता है कि परमात्मा का जो सन्निधान मात्र हैं, वह सर्वत्र प्रकृति को गतिवान बनाता रहता हैं, आत्मा का जो सन्निधन मात्र हैं वह मुनिवरों! देखो, मानव के मानवतव को क्रियाशील बनाता रहता हैं, प्रत्येक इन्द्रियाँ देखो, अपनी क्रिया में परिणत हो जाती हैं विचार आता रहता हैं क्या मुनिवरों! वेदमन्त्र के ऊपर चिन्तन किया जाता हैं तो विचार में केवल एक ही वाक् आता हैं एक सार्वभौम है जो मेरे प्यारे! देखो, चित्त की प्रतिभा में रत्त रहता है, परमात्मा का चित्त है, जो मुनिवरों! देखो, जिसमें नाना प्रकार के प्रकृति के सर्वत्र मानो अंकुर विद्यमान रहते हैं और एक विशेष मानव चित्त में हमारे यहाँ मनस्तव रहता है जो

विभाजन करता रहता हैं माता है पिता है यह मानो देखो, अमुक व्यक्ति हैं यह महापिता है यह पतं ब्रह्रे यह पत्नी है पुत्री है, पुत्र है पुत्र-वधु है। यह जो मानो देखो, विभाजन क्रिया है मन के द्वारा इसको विशेष मन कहते हैं और जो मुनिवरों! देखो, जो एक पृथ्वी में मुनिवरों! देखो, पृथ्वी में मेरे प्यारे! देखो, नाना प्रकार के वृक्ष, स्थावर सृष्टि विद्यमान हैं उनमें एक रसों का स्वादन हो रहा है, कहीं मधुपन हैं कहीं षट रस हैं मानो देखो, कड़वा कषैला जो नाना प्रकार का विभाजन हो रहा हैं इस पृथ्वी के गर्भ में बेटा! वह परमात्मा की प्रतिभा मानो देखो, चित्त मण्डल में चित्त मण्डल में बेटा! वह मन देखो, अपना विश्वभान मन है वह क्रिया में रत्त हो रहा हैं और वह क्रिया में रत्त होता हुआ मुनिवरों! देखो, विभक्त क्रिया चल रही हैं अरे, परमात्मा कितना महिमावादी हैं बेटा! क्या उसका एक क्रिया में दूसरी क्रिया रत्त हो रही हैं और वह मुनिवरों! देखो, उसी में नाना प्रकार के रसों का प्रदान कर रहा है देखो, विभाजन क्रिया चल रही हैं रत्त हो रहा है, रसों का विभाजन हो रहा हैं ऐसे ही मनुष्य के देखो, साधक के शरीर में जब यह मन मुनिवरों! देखो, कही ज्ञान में चला जाता हैं, कहीं अज्ञान में चला जाता हैं कहीं मानो देखो, रजोगुण में परिणत हो जाता हैं यह बेटा! विभक्त क्रियाकलाप हो रही हैं तो साधक जनों ने यह कहा है क्या इन्द्रियों का सबका साकल्य बना करके हृदय में मानो समावेश कर दो और हृदय में जब समावेश करके गति करोगे तो बाह्य चित्त को परमात्मा के चित्त मण्डल को जान करके मानो देखो, तुम अपने में रत्त हो करके सिमट करके बेटा! परमात्मा को प्राप्त कर सकते हो। यह बेटा! आज मैं तुम्हें सूक्ष्म सी वार्त्ता प्रगट करने चला हूँ मैं कोई व्याख्याता नही हूँ तुम्हें परिचय देने आया हूँ क्या वेदमन्त्र हमारा क्या कहता हैं साधक के सम्बन्ध में मेरे पुत्रों! देखो, आत्मा के सम्बन्ध में बहुत-सी चर्चाएं देता हैं आत्मा भूतं वर्णनम् क्योंकि आत्मा के प्रकाश में यह मन क्रिया कर रहा हैं परमात्मा के जो परमपिता परमात्मा हैं जो सार्वभौम है, उसके प्रकाश में विश्वभान मन कर रहा है परन्तु देखो, बाह्य जगत में जो क्रिया विभक्त क्रिया हैं वह विश्वभान मन के द्वारा हैं और जो मुनिवरों! देखो, इस शरीर में विभक्त क्रिया हो रही हैं नाना प्रकार के विचारों का विभाजन हो रहा हैं या कुटुम्ब का विभाजन हो रहा हैं या परमाणुवाद को विभक्त करने वाला हैं यह मुनिवरों! देखो, विशेष मन केवल देखो, आत्मा के प्रकाश से कार्य करता हैं यह संसार को दृष्टिपात करता हैं यही स्वप्न को दृष्टिपात करता हैं मानो देखो, द्रव्य से देखो, द्रव्यहीन बन जाता हैं और द्रव्यहीन द्रव्यपति बन जाता हैं इसी प्रकार मन अपने संस्कारों को अपने अन्तःकरण में दृष्टिपात करता रहता हैं केवल आत्मा के प्रकाश में कार्य करता हैं यही मुनिवरों! देखो, सुषुप्ति में चला जाता हैं मन, बुद्धि, चित, अहंकार मेरे प्यारे! देखो, जब कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञानेन्द्रियाँ बेटा! देखो, प्राणों में और प्राण मेरे प्यारे! देखो, चित्त मण्डल में प्रवेश हो करके और यह मुनिवरों! देखो, ब्रह्मण ब्रह्रा देखो, इन्द्रियों का विषय शान्त हो जाता हैं और शान्त हो करके मुनिवरों! प्यारे! देखो, प्राण की वह जो परमात्मा का दिया हुआ आत्मा के सन्निधान मात्र से जो क्रिया चल रही हैं उसे प्राणेश्वर कहते हैं, वह प्राण गति करता है आत्मा के साथ में और यह मानो देखो, चित्त का मण्डल सुषुप्ति में चला जाता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, यहाँ मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने तो नही आया हूँ केवल विचार-विनिमय यह क्या हमें बेटा! परमात्मा के मण्डल को और वेदमन्त्रों को हमें अपने चिन्तन में लाते हुए यह विचारना चाहिए कि हमारा वेद मन्त्र हमें साधक बनने के लिए प्रेरणा देता रहे हमें उदगार देता है उन उदगारों को विचारना चाहिए। तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों से कहा हे यज्ञमान! यदि तुझे यज्ञमान बनना है यज्ञशाला में प्रवेश होना है तो अपने हृदय रूपी मानो देखो, यज्ञवेदी का पवित्र बना और तू अमृतं ब्रह्मा साधना की उतं ब्रहे ऋषि साधना को ले करके गमन करते रहे हैं परमात्मा के सन्निधान मात्र से ही मानो देखो, प्रकाश को प्रकाशित करते रहे हैं तो विचार आता रहता है बेटा! आन्तरिक जगत और बाह्य जगत दोनो प्रकार के मानो देखो, जो संक्षिप्त सी मैंने प्रगट की हैं। अब समय मिलेगा तो मैं तुम्हें आगे की शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रगट करूंगा आज

का विचार-विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा के जगत को विचारने वाले बनें क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत और चैतन्य जगत हैं उस सर्वत्र जगत का नियन्ता वे परमपिता परमात्मा है। शेष अनुपलब्ध

१४ सत्रह होता ०७ ०१ १९९२

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा विज्ञानवेत्ता हैं। और ये जो ब्रह्माण्ड हैं, यह विज्ञानशाला है। प्रत्येक मानव किसी भी लोक-लोकान्तरों में रमण करने वाला हो, चाहे वे पृथ्वी मण्डल का प्राणी हो, चाहे वे मंगल का हो चाहे वे ध्रुव मण्डल का हो चाहे वह किसी भी मण्डल में वास करने वाला हो मानो वे परमपिता परमात्मा की विज्ञानशाला में विद्यमान हैं और विज्ञान अपने में पूर्णता को प्राप्त होता रहा हैं क्योंकि परमात्मा की प्रतिभा हैं और प्रत्येक वेदमन्त्रों में जब तीन प्रकार के भाव प्रायः हमारे समीप आते रहे हैं। क्योंकि ऋषि-मुनियों की बड़ी विचित्र एक देन ये रही हैं क्या उन्होंने एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर चिन्तन किया हैं और उसी को आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान में उसको परिणत किया और चिन्तन में लाना उनका कर्तव्य रहा हैं परन्तु आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनो के ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा हैं और विचारता रहा है कि ये दोनों प्रकार का विज्ञान अपने में पूर्णता को प्राप्त होता रहा हैं।

तो विचार आता रहता है कि जहाँ हमारे आचार्यों ने, भौतिक विज्ञान को इतना महत्व दिया हैं, मानो उतना ही वह आध्यात्मिकवाद में वह परिणत हो गएं हैं, इसी प्रकार यागों के सम्बन्ध में, दोनों प्रकार के यागों का वर्णन होता रहा हैं एक वह याग हैं जिसमें भौतिकवाद में परिणत कर देते हैं और दूसरा वह याग हैं जिसको हम आध्यात्मिकवाद कहते हैं हमारे ऋषि-मुनि जब भी अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान रहे हैं वहीं उन्होंने दोनो प्रकार के यागों के ऊपर अपना विचार दिया और यह कहा कि अमृतं ब्रहे वर्णासुताः मानो वे परमपिता परमात्मा वरणीय हैं और उसको अपना वरण कर लेना चाहिए। क्योंकि जो मानव परमात्मा को अपना वरण बना लेता है, उसी को प्राप्त हो जाता हैं तो इसीलिए हमें परमपिता परमात्मा को वर लेना चाहिए। परन्तु जहाँ इस प्रकार की विवेचना आ रही है तो उन्होने बेटा! ऋषि-मुनि अपने में एकान्त स्थलियों में विद्यमान हो करके मनन किया हैं और चिन्तन करने के पश्चात उन्होंने अपना मन्तव्य प्रगट किया और यह कहा कि यह जो भौतिक विज्ञान भौतिक याग हैं इसको आध्यात्मिक याग में परिणत कर देना चाहिए। अथवा इसका समावेश होना चाहिए। इन दोनों का समावेश हो जाता हैं वही समावेशता मानो देखो, मानव को ऊर्ध्वा में गमन करा देती है।

आओ, मुनिवरों! देखो, आज का हमारा वेद का मन्त्र हमें क्या उद्गीत गा रहा हैं नाना वेद के मन्त्रों में परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान मानो देखो, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों यागों का, प्रायः वर्णन आता रहा हैं जब यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होता है, तो वह नाना प्रकार की याचनाएं करता हैं भौतिक रूप में, और वह कहता है कि मेरी प्रत्येक इन्द्रियाँ मानो इस प्रकार ओज और तेज में परिणत होने वाली बनें जिससे मेरी इन्द्रियों में किसी प्रकार की त्रुटियां न आ पायें, इसी प्रकार विचारों में मनं वृतं मनाः कृति देवाः क्या यह मन मेरा विचलित न हो जाये। भौतिकवाद में, यज्ञशाला में विद्यमान हो करके इस प्रकार प्रार्थी बना रहता है। वेदमन्त्रों में उद्गीत गाता है तो वह अमृत जान करके मुनिवरों! देखो, वह पान करता रहता हैं सर्वत्र जितना भी ज्ञान है चाहे वह आध्यात्मिक सर्वत्र रूपों में है बेटा! वह अमृत कहलाता हैं वह अमृतमयी मानो अपने में परिणत हो जाता है अपने में याग बन जाता हैं तो वेद का मन्त्र यह कहता हैं अमृतां भूतं ब्रहे लोकां जैसे चन्द्रमा में अमृत बह रहा हैं, वह अमृत दे रहा हैं वसुन्धरा को, इसी प्रकार हमारा ज्ञान ही हमें अमृतमयी बना रहा है, विचार धारा अगम्यं ब्रहे यह मानो कृति कहलाता है। आओ, मुनिवरों! देखो, इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले

जाना चाहता हूँ जहाँ याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और यज्ञदत ब्रह्मचारी दोनों का संवाद प्रारम्भ हो रहा था मानो देखो, हमारे यहाँ आचार्य जन, जब प्रातःकालीन अपने आश्रमों में अथना विद्यालयों में विद्या देने से पूर्व वह नैतिकवाद की अपनी चर्चाएं अथवा अपना विचार प्रगट करते रहे हैं, न्यौदा में वेदमन्त्रों का जब अध्ययन करते रहे हैं तो न्यौदा में मन्त्र मानो देखो, वह मन्त्रों में जो भाव है उसको वह प्रगट करते रहे हैं और देते रहें हैं प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को मानो अपने में धारण करते हुए और उन मानो देखो, इन्द्रियां का शुद्धिकरण कर देते हैं, अपने विचार दे करके ही आचार्य उनको मानो उनका शुद्धिकरण कर देता हैं तो इसी प्रकार मेरे प्यारे! देखो, आचार्य जन कहता हैं हे यज्ञदत ब्रह्मचारी! तुम मानो देखो, याज्ञिक बनो तो यज्ञदत ने कहा-प्रभु! आपको कई समय हो गएं है, हमें यह उपदेश दीजिए कि याग किया जाये, परन्तु मैंने आपसे कहा है कि मानो यह ऋषि ब्रह्मचारी विद्यामान है वह याग करना चाहता हैं उस याग में कितने होता जन होने चाहिएं? आपने चौबीस होताओं का वर्णन किया हैं, परन्तु चौबीस होताओं का भी हम आचार्यजनों से, मेरी माताएं जब अपनी लोरियों का पान कराती रही है तो वह माताएं इस प्रकार का उपदेश देती रही हैं और वे यह प्रकार का उच्चारण करने वाली है, इन्द्रियां भूतं प्रह्वे लोकाम् हमारे मानो श्रोत्रों में, इस प्रकार के भाव माता ही प्रगट करती है, वह कहती है हे ब्रह्मचारी! हे बाल्य! तुम ब्रह्मवेत्ता बन करके अपने जीवन को ऊँचा ऊर्ध्वा में गमन कराओ। मुझे वह काल स्मरण है जब माता मल्दालासा का पुत्र देखो, देवाः प्रवाहण जी जो सबसे जेठे पुत्र थे जब उन्हें ब्रह्म ज्ञान, माता अपने गर्भ से ले करके लोरियों तक का पान कराती रही हैं तो मानो देखो, वह बाल्य पांच वर्ष का ब्रह्मवेत्ता बन जाता हैं वह ब्रह्म की जिज्ञासा में सदैव रत्त रहता हैं, इसी प्रकार ब्रह्मणे कृतं देवप्रह्वा क्या हम भगवन! देखो, इस प्रकार हम यह जानना चाहते हैं कि यज्ञमान याग करे तो कितने होताओं के द्वारा याग में चौबीस होताओं का वर्णन दिया हैं और उसको आध्यात्मिकवाद से मानो देखो, सूत्रित किया हैं आध्यात्मिकवाद में मानो देखो, उसको परिणत कर दिया है और यह कहा है कि मानो देखो, चौबीस होता हैं वह मानो आध्यात्मिक याग कर रहे हैं और हृदय में जो याग हो रहा हैं उसकी जो प्रतिष्ठा हो रही हैं वह हृदय में ही मानो देखो, याग हो रहा हैं वह तन्मय हो करके क्या प्रभु मेरा यह कथन रहता हैं वह कथन मेरे अन्तर्हृदय में बना ही रहा है क्या यज्ञमान याग करना चाहता हैं तो कितने होताओं कें द्वारा वह याग करे? याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले कि हे ब्रह्मचारी! हे यज्ञदतं ब्रह्वा कृते मानो देखो, यदि यज्ञमान याग करना चाहता है, तो सत्रह होताओं के द्वारा याग करे, मेरे प्यारे! सत्रह होताओं की उन्होंने गणना कराई मानो दस प्राण है और पंच तन्मात्रा है और मानो बुद्धि हैं यह सत्रह होता कहलाते है, जिनके द्वारा तुम्हे याग करना हैं मानो देखो, जब यह मानव शरीर को त्यागता हैं इस स्थूल शरीर को त्याग देता है, तो उस समय यह जो स्थूलं ब्रहे कृतं मानो देखो, यह जो सूक्ष्म शरीर इस स्थूल शरीर से बाह्य जगत में चला जाता हैं अथवा परमात्मा के चित्त में दोनों का समन्वय हो जाता है। तो तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए ब्रह्मचारियों! क्या जब यह शरीर को मानव त्याग देता हैं तो सत्रह होताओं का यह मानो सत्रह इसमें अव्यय कहलाए गएं हैं दस प्राण हैं पंच तन्मात्राओं की वासनाएं हैं और मानो देखो, जिनको तन्मात्रा कहते हैं मन और बुद्धि यह सर्वत्र मानो देखो, ये अपने को त्याग देता हैं अमृतं यह जहाँ जिसके अन्तिम विचारों का समय होता है उन्हीं विचारों को यह प्राप्त कर लेता हैं अथवा उसी धारा में रत्त हो जाता है, अन्तिम जो समय ब्रहे स्थूल शरीर को त्यागते समय जो भी चित्त मण्डल में संस्कार होते हैं उन्हीं संस्कारों को ले करके मानो देखो, यह अपने में नृत्त करने लगता हैं और वह चित्त मण्डल में प्रवेश हो जाता हैं यह आन्तरिक चित्त नही है यह परमात्मा का चित्त जिसमें मुनिवरों! देखो, सर्वत्र वनस्पतियां, सर्वत्र ब्रह्माण्ड का अंकुर विद्यमान रहता है, जैसे एक परमाणु हैं उस परमाणु के विभक्त करने से मानो देखो, एक ही परमाणु में सृष्टि का चित्र दृष्टिपात आता रहता हैं एक-एक अणु में, एक-एक वाक् में, एक-एक शब्द में तो चित्र ब्रह्माण्ड विद्यमान

होता है।

आज मैं बेटा! इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही परन्तु केवल यह क्या मुनिवरों! देखो, मन और बुद्धि और मुनिवरों! पंच तन्मात्राएं दस प्राण यह सत्रह होता कहलाते हैं जिनके द्वारा भौतिक देखो, यज्ञमान, याग करता हैं और याग करता हुआ कहता है प्राणां ब्रह्मा कृतं देवत्वं असुतं प्राणो व्रतं ब्रहे स्वाहा ऐसा उद्गीत गाता है और वह कहता हैं कि प्रभु यह जो प्राण है, यह मानो देखो, ब्रह्माण्ड के लिए, दस स्तम्भ कहलाए गएं हैं, ऐसे मेरे सूक्ष्म जो शरीर हैं इसके भी दस प्राण कहलाए जाते हैं और वह प्राण मानो देखो, एक दूसरें में पिरोऐ हुए हैं वह मनके जैसे माला के मनके होते हैं जैसे वेदमन्त्र है वेदमन्त्रों में जो ऋचा रूप से वर्णन की जाती हैं और वह मानो देखो, एक सूत्र में पिरोई जाते हैं ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोने से मुनिवरों! देखो, वह प्रकाश की माला बन जाती हैं इसी प्रकार जैसे परमपिता परमात्मा का वह अमूल्य जगत हैं नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर हैं नाना प्रकार के मानो देखो, सौर मण्डल है, नाना आकाश गंगाएं है, नाना निहारिकाएं हैं और अवन्तिका कहलाती है, यह सर्वत्र मानो देखो, एक सूत्र में पिरोई हुई है। तो यह ब्रह्माण्ड एक माला के सदृश दृष्टिपात आता रहता हैं जैसे मुनिवरों! देखो, यह भी एक मानव है यह जो एक माला हैं और माला मुनिवरों! देखो, एक माला जब विच्छेद हो जाती हैं तो अपार कष्ट होता हैं इसी प्रकार माला का एक भी मनका हमारे लिए विच्छेद न हो जाएं ऐसा सदैव मानो देखो, साधक अपने में याचना कर रहा हैं और वह कहता है कि मेरा मण्डल ब्रहे यह जो प्राण है जो दस प्राण है यही मानो देखो, ब्रह्माण्डं ब्रह्मे यह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोऐ हुए हैं जैसे वेद की ऋचाएं इसी प्रकार ओ३म् अमृतं प्राण भी मानो देखो, यह प्राण भी उस परमपिता परमात्मा ओ३म् रूपी प्राण मानो देखो, ओ३म् रूपी सूत्र में यह पिरोऐ हुए हैं पिरोऐ हुए होने यह प्राणं ब्रह्मा मानो देखो, यह वायु में तल्लीन हो जाते हैं और वायु ही मेरे प्यारे! गतिवान हैं और वह गति देती रहती है अग्नि के परमाणुओं को भी गति देती हैं और वही गति मानो देखो, प्राणों में जो गति हैं वह भी मानो देखो, वायु में चित्त के कारण हैं। मेरे प्यारे! देखो, गतिवान मन बना रहता हैं गतिवान प्राण बने रहते हैं मेरे प्यारे! देखो, यह जो प्राण है। यह अपान में प्रविष्ट जब होता हैं तो मेरे प्यारे! देखो, पृथ्वी तल को जानने लगता हैं जब यही व्यान में यह दोनो प्रविष्ट होते हैं मेरे पुत्रों! देखो, यह सूत्र को जान लेता हैं और जब मुनिवरों! देखो, यह समान में, यह व्यान में, समान प्रविष्ट होता है तो बेटा! सामान्य यह जो ब्रह्माण्ड की वृत्तियाँ है वायु इन्द्र नाम की वायु है उसे यह अपने में जान लेता है मेरे प्यारे! जब उदान में यह सर्वत्र प्रविष्ट हो जाते हैं तो बेटा! मानो देखो, यही उदान व्यान में प्रवे अवृत्ति देवदत में परिणत हो जाता हैं और देवदत धनंजय में और धनंजय कृकल में कृकल मुनिवरों! देखो, यह वृतं भूतं वृत्ति देवाः जैसे मुनिवरों! देखो, अमृतं भूत्वां ब्रह्मणे कृताः जैसे मुनिवरों! देखो, प्राण अपान उदान समान व्यान और नाग में प्रविष्ट होता हुआ मानो देखो, यह अपने में अपनेपन को धारण करता रहता है तो नाग प्राण जब अग्रणीय बनता है जब नाग और देवदत से परिणत होता हुआ मानो एक दूसरे में प्रवेश हो करके ब्रह्माण्ड की प्रतिभा को यह जानने वाला बनता हैं क्योंकि सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक प्राणों से मानो कटिबद्ध हो रहा हैं जैसे मानव का जीवन प्राणो से कटिबद्ध हैं यदि प्राण देखो, शुष्क हो जाता हैं तो मानो अकृत हो जाता हैं अप्रियता में प्राप्त हो जाता है मेरे प्यारे! यहाँ प्राणी नही रहता वही शुष्क बन जाता है वही रूग्णित, वही रूग्णों में प्रवेश हो जाता हैं तो विचार आता रहता है कि हम प्राण को अपने में जानने वाले बनें और प्राण ही मेरे प्यारे! देखो, अकृत कहलाता है मेरे प्यारे! देखो, व्यान प्राण देखो, जैसे प्राण हैं जब यह व्यान की आभा में प्रविष्ट होता हैं तो यही प्राण मानो देखो, अन्तरिक्ष और बाह्य जगत का प्राण और आन्तरिक जगत के प्राण मानो दोनों का समन्वय जब होता हैं तो यह मानो देखो, परमाणुओं के बाह्य जगत के समूह को लाता हैं और मानो देखो, अरबों खरबों परमाणुओं को ला करके मुनिवरों! देखो, यह उतने परमाणुओं को ले जाता

हैं और अन्तरिक्ष में मानो देखो, उन्हें प्रविष्ट कर देता हैं और मुनिवरों! देखो, यह एक ही प्राण का कार्य रहता है और उसका कुछ शेष भाग मानो देखो, व्यान में प्रवेश हो जाता हैं और व्यान का कुछ भाग मेरे प्यारी देखो, वह समान में चला जाता हैं और समान और देखो, उदान समावेश हो करके मेरे प्यारे! देखो, वह प्राणं ब्रहे वह व्यान की प्रतिभा को प्रतिष्ठित कर देता हैं बेटा! मैं उन क्षेत्रों में जाना नही चाहता हूँ जहाँ ऋषि-मुनि इन वाक्यों को ले करके मानो अपनी यौगिक क्रियाओं को वह सिद्ध करते रहे हैं या साधन में परिणत रहे हैं। विचार केवल यह मुनिवरों! देखो, यह जो सूक्ष्म, यह जो शरीर हैं इस शरीर के ऊपर मानव को अध्ययन करना चाहिए, तो यह प्राण, दस प्राण हैं जो नाग को मानो देखो, नाग में देखो, यह जब पांचों प्राण कटिबद्ध हो जाते हैं, तो देवदत मानो देखो, उनकी प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेता हैं और देवदत और धनंजय दोनों जब समावेश होते हैं तो मानो देखो, यह योगेश्वर बन करके, अवन्तिका मण्डलों में भ्रमण करने लगता है। आज बेटा! इस सम्बन्ध में कोई विशेषता नही परन्तु देखो, यह प्राण अपान, उदान, समान, नाग, देवदत, धनंजय, कुरू, कृकल मुनिवरों! देखो, ये सर्वत्र अपने में रत्त करता हुआ यह सर्वत्र अवृत्तियों को जान लेता है। इसी प्रकार पंच तन्मात्राओं में जब प्रवेश होता है, तो तन्मात्राएं मानो देखो, उनके सूक्ष्म स्वरूप को कहा जाता हैं जैसे अग्नि की सूक्ष्म धाराएं हैं जो सूक्ष्म धाराएं मेरे प्यारे! देखो, शब्द ध्वनि को ले करके गमन करती रहती हैं, वही अग्नि है बेटा! देखो, जो चित्रों को ले करके गमन करती रहती हैं। विचार आता रहता है मुझे उद्दालक मुनि की चर्चाएं जब स्मरण आता है तो मेरे प्यारे! देखो, उनका कितना अध्ययन था तो मुझे स्मरण है कि शिकामकेतु उद्दालक मेरे प्यारे! देखो, अपने में अन्वेषण करते रहे हैं क्या वह याग करते रहे और याग करते हुए मुनिवरों! देखो, यह देखो, तन्मात्राओं के ऊपर चिन्तन करते रहें तो अग्नि सूक्ष्म जो धाराएं अग्नि की हैं वह शब्द और तरंगों को ले करके गमन करती हैं और वही मानो देखो, यज्ञमान को ले करके द्यौ में प्रवेश कराती रहती हैं और द्यौ में प्रवेश करा करके मानो वही चित्र द्यौ मण्डल से ऊर्ध्वा भाग में एक वृत्तिका सोतकेतु मण्डल मानो एक स्थली कही जाती है, वहाँ यह शब्द विद्यमान हो जाता है, और यह विद्यमान हो जाते हैं तो वहाँ जगत एक बड़ा विचित्र हैं बेटा! देखो, उनमे चित्र भी रहता हैं, शब्द भी रहता हैं, क्रियाकलाप भी रहता हैं और वह मानो देखो, उसी में ओत-प्रोत रहते हैं। तो जब मुनिवरों! देखो, शिकामकेतु उद्दालक अपने में याज्ञिक बने, तो याग करते हुए मुनिवरों! देखो, उनके ऊपर अनुसन्धान करते रहे हैं और अनुसन्धान करते हुए मुनिवरों! देखो, वह उन चित्रों को अपने यन्त्रों में लाने का प्रयास किया। मैंने यह वाक् पूर्व काल में भी तुम्हें वर्णन किया क्या शिकामकेतु उद्दालक के यहाँ, नाना प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों का यन्त्रित किया था जिसमें बेटा! शब्द दृष्टिपात आते रहते हैं और वह अपने महापिता पड़पिता एक पक्षीय विज्ञान को उन्होंने जाना अपने कुटुम्ब के विज्ञान को उन्होंने जानने का उन्होंने प्रयास किया अपने महापिता तक के चित्रों का प्रायः वह दर्शन करते रहे हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, वह सूक्ष्म रूप में वह तन्मात्राएं कहलाती हैं और अग्नि की जो सूक्ष्म तन्मात्राएं हैं, वही बेटा! देखो, अणु और परमाणु के रूप में रत्त रहती हैं वही मानो देखो, जब अग्नि के परमाणुओं का, जल के परमाणुओं से समावेश होता है तो बेटा! देखो, वह तरलतव समावेशता में प्रवेश हो करके वह तेजोमयी की आभा प्राप्त हो जाती हैं और इसी प्रकार ये गुरूतव जब परमाणु का समावेश होता हैं तो बेटा! पिण्डाकार के मानो अंकुर उसमें विद्यमान हो जाते हैं, जैसे माता के गर्भस्थल में मानो देखो, इन अंकुरों से देखो, यह स्थूल यह पिण्ड बन जाता हैं। शरीर पिण्ड बन जाता है इसी प्रकार इन परमाणुओं के समावेश से नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों का पिण्ड बन जाता हैं इन तीन परमाणुओं से ही पिण्ड बनता हैं और मानो देखो, यह जो बाह्य है जो मैं तुम्हें विवेचना कर रहा था यही प्राण है जो मेरे प्यारे! इन लोक-लोकान्तरों की और मानो शरीर रूपी पिण्ड में जो गति

हैं भ्रमण करने की जो गति आती हैं वह प्राणों के साथ आती हैं प्राणां भूतं ब्रह्मे प्राणा देवत्वं ब्रह्रे कृता वही मानो देखो, उसमें गरावृत्रि अपने में रत्त होती रहती हैं तो इस प्रकार मुनिवरों! देखो, यह पंच तन्मात्रांए मुनिवरों! देखो, यही तन्मात्रा हैं जो वायु की मात्रा हैं और देखो, तन्मात्रा इनको भ्रमण किए रहती है मेरे प्यारे! देखो, अन्तरिक्षम ब्रह्मा देखो, जो अन्तरिक्ष का सूक्ष्म जगत है दो प्रकार का यह अन्तरिक्ष का यह जगत माना गया हैं एक जगत वह कहलाता है जो स्थूल रूप में जाना पिण्ड मानो देखो, स्थिर हो जाते हैं पिण्ड अपने में गमन करते रहते हैं एक इनका जो सूक्ष्म जो जगत हैं वह परमाणुओं का मानो देखो, जो इसका अमृति पिण्ड कहलाता हैं जो अन्तरिक्ष की द्वितीय धारणा मानी गई है, जो मुनिवरों! देखो जब उसमें, तृतीय धारा विचार मन्त्रित की पुट लगती है तो वही मुनिवरों! देखो, बिन्दु के रूप में परिणत हो जाता हैं यह जगत मुनिवरों! देखो, जहाँ अपने में अपनेपन को भासता रहता है, वहाँ अपनेतव की व्याहृतियों में रत्त हो करके मुनिवरों! देखो, पंच व्याहृतियों को जन्म देता रहता हैं। तो आज बेटा! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ, केवल यह क्या मुनिवरों! देखो, यह अपने में अपनेपन को विचार रहा हैं तो चिन्तन करना मनन करना और मुनिवरों! देखो, उसको अपने में धारण करना ये तीन प्रकार की वृत्तियाँ मानी गई हैं जब वैज्ञानिक जन मुनिवरों! संसार में विज्ञानवेत्ता बनने के लिए तत्पर होते हैं तो तीन तन्मात्राओं को जानने में लग जाते है। बेटा! गुरूतव तरलतव और तेजोमयी इन परमाणुओं को ले करके वह एक दूसरे को मिलान करते हुए यन्त्रों का निर्माण कर देते हैं कहीं मानो देखो, पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो जाते है, तो कहीं अन्तरिक्ष के गर्भ में कहीं मानो देखो, अग्नि के गर्भ में तो कही वह आपो के गर्भ में प्रवेश करके उनके वास्तविक स्वरूप को अपने में जानने का प्रयास करते हैं इन तन्मात्राओं के द्वारा। आओ, मेरे प्यारे! देखो, इस सम्बन्ध में चर्चाओं में विशेषता नही केवल, यह कि मुनिवरों! देखो, ये तन्मात्राएं और पांचो प्राण, दस प्राण यह मानो देखो, यह गुथे हुए बुद्धि से और बुद्धि मन और बुद्धि दोनों मेरे प्यारे! इसमें समावेश हो जाते हैं। जब यह सर्वत्र बुद्धि में समावेश हो जाते हैं तो आन्तरिक जगत मानो देखो, सूक्ष्म रूप बन जाता हैं और यही सूक्ष्म रूप है जो मानो देखो, जो शरीर को त्यागता हैं शरीर को धारण करता हैं शरीर को यही त्यागता है मुनिवरों! देखो, इसी के ऊपर जब मानव यह विचारता है कि इस शरीर का कितना आयु हैं सूक्ष्म शरीर का कितना आयु हैं इस आयु के ऊपर मुनिवरों! देखो, प्रत्येक मानव और ऋषि-मुनि अपने में विचार-विनिमय करते रहे हैं, बेटा! देखो, आयु का कोई भी प्रमाण नही दिया हैं परन्तु कहीं एक वेदमन्त्र में आया सम्भूति तप्प्रहा व्रत्यं देवत्वां ब्रह्मा कृतिः मानो देखो, कही कृतिकाओं में वर्णन तो आया हैं और यह वर्णन यह है कि आज मानव का जो जीवन है, वह जो शरीर स्थूल है वह श्वासों के ऊपर मानो देखो, इसकी आयु का स्वरूप माना गया हैं क्योंकि यदि वह योगाभ्यास करता हैं प्राणों को देखो, वह जब श्वास को सूक्ष्म रूप में लेता हैं मानो देखो, उसकी आयु बलवती हो जाती हैं जितनी भी साधना करता रहा है, वह अनुष्ठान करता रहा है, अनुष्ठान करके मानो देखो, प्राणायाम करता रहा है और प्राण को अपान में प्रवेश करता रहा हैं और प्राणं ब्रह्मे देखो, इसी प्रकार उसका आयु केवल श्वासों के ऊपर निर्धारित बन जाता हैं। मेरे प्यारे! देखो, उसी तक प्रतिभा निहित रहती हैं जब मानो देखो, रूग्ण होता है तो श्वासों की गति प्रबल होती हैं या मानो सहन करता है तो श्वासों की गति मानो अवृत बन जाती हैं अवृत बन जाती है अवृत के मानो देखो, इसी प्रकार जब वह शान्त मुद्रा में विद्यमान होता हैं तो वह श्वास की गति घीमी होती हैं और जब वह प्राणायाम करता है तो श्वास को मानो देखो, और भी धीमा बना लेता हैं इसी प्रकार और जब श्वास समाधिष्ट हो जाता है तो मुनिवरों! देखो, समाधिष्ट हो करके वह प्राण को मेरे प्यारे! देखो, मूलाधार से ले करके, मूलाधार से ले करके नाभि चक्र हृदय चक्र और देखो, वह हृदय चक्र से कण्ठ चक्र स्वाधिष्टान चक्र और त्रिवेणी के स्थान में जब गमन करता है तो मानो देखो, इंगला, पिंगला, सुषुम्ना अथवा गंगा, यमुना, सरस्वती तब उन्हीं का नामोकरण

मुनिवरों! देखो, वह अवृत कहा इंगला, पिंगला, सुषुम्ना के नाम से वर्णन किया गया हैं वर्णन करते जब यह प्राण अपने सखा को ले करके मुनिवरों! देखो, जब यह मन मन, बुद्धि और चित्रं ब्रह्मा जब यह गमन करता है तो चक्रों में भ्रमण करता है तो ब्रह्मरन्ध्र में चला जाता हैं मानो कृतिकाओं में रमण करता है यह देखो, त्रिवेणी के स्थान से एक कृतिका कहलाई जाती हैं वे तीन प्रकार की कृतिका देखो, अपने में रमण करती रहती हैं श्वासं ब्रह्मे मेरे प्यारे! देखो, वह श्वास उसी में रत्त होता रहता हैं ब्रह्मरन्ध्र में जब प्रवेश हो जाता हैं तो मुनिवरों! देखो, कपाल में वह देखो, आत्मां भूतं ब्रह्मा वर्णो सुते वेद की आख्यिका कहती है उसी में यह चक्रों को शून्य गति को त्याग करके मानो देखो, ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश हो जाता है तो बेटा! देखो, ऋषि-मुनियों ने जो साधनाएं की हैं और साधना का अभिप्रायः यह कि मानो देखो, वह अपने अन्तर चेतना को वह ब्रह्मरन्ध्र में ले लेता हैं और ब्रह्मरन्ध में ले जा करके वहाँ शान्त मुद्रा में मुद्रित हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, उनका यह अनुभव हैं उन्होंने अपनी लेखनियाँ कुछ बद्ध की है, और लेखनियाँ बद्ध करके मेरे प्यारे! देखो, उसी को अंग नियम में ध्यान किया हैं और ध्यान में जब प्रवेश होते हैं बेटा! देखो, अपने को अपने में ही शान्त करने का उन्होंने प्रयास किया, तो मेरे प्यारे! देखो, अमृतं ब्रह्मे कृतं देवाः वेद का ऋषि कहता है क्या, वह मुनिवरों! देखो, अपने में श्वासां भूतं ब्रह्मे वही श्वास को अपने कपाल में प्रवेश करके धीमे-धीमे उसका रुत करता है और जब वह उसको बाह्य जगत में लाता हैं तो बेटा! देखो, आयु उसकी प्रबल हो जाती हैं तो वह जो भोगवाद है, वह भोगवाद ही प्राणायाम के द्वारा, साधना के द्वारा, बेटा! वह भोगवाद भी उसका सूक्ष्म अथवा वह देखो, वह अपने में वृत बन जाता हैं वह सूक्ष्म रूप बन जाता हैं और सूक्ष्म रूप बन करके मेरे पुत्रों! देखो, भोग और श्वास दोनों की गतियां धीमी बन करके देखो, आयुवर्धक कहलाती हैं आयु पिपाद में परिणत कर दिया जाता हैं तो इसीलिए हमारे यहाँ आचार्यों ने देखो, अपनी बहुत-सी आयु प्रबल की हैं आयु के सम्बन्ध में मेरे प्यारे! देखो, लगभग देखो, तीन-तीन हजार वर्षों की आयु बनती है प्राणियों की, उसका कारण केवल श्वास कहलाया जाता हैं और श्वास के साथ में भोगवाद रहता हैं तो देखो, दोनो भोग और श्वास की गति साधना से देखो, बेटा! साधना में दोनो मिश्रित हो जाती है। तो मेरे प्यारे! देखो, मैं तुम्हें उच्चारण कर रहा था, क्या हमारा जो सूक्ष्म शरीर है, यह मानो देखो, अपने में वृत्त करता रहा हैं इसमें पंच तन्मात्रा हैं, जो ब्रह्माण्ड का हमें दर्शन कराती है, मेरे प्यारे! देखो, यह प्राण है जो गतिवान बनाता हैं और प्राणों का जब देखो, प्राण को जब हम अपान में, अपान को व्यान प्राण में एक दूसरे प्राण का समावेश करते चले जाते हैं तो हमारी यात्रा जब प्रारम्भ हो जाती हैं तो वह यात्रा वह देखो, मूलाधार से होती है वह मूलाधार से होती हुई मुनिवरों! देखो, वह हृदय चक्रों को जानते हुए नाभि, हृदय और देखो, वह अप्रतं कण्ठ चक्रा और स्वादिष्ट चक्रा त्रिवेणी और त्रिवेणी के ऊपर वह स्थान है बेटा! देखो, तीन त्रिका कहलाती हैं वह भी मानो उसके ऊर्ध्वा में ब्रह्मरन्ध्र कहलाता हैं जहाँ मुनिवरों! देखो, ब्रह्मरन्ध्र में सर्वत्र सौर मण्डल अथवा अवन्तिकाएं मेरे प्यारे! अपने में गतिवान हो जाती हैं तो मेरे पुत्रों! देखो, यह बड़ा विशाल एक वन हैं जिसके ऊपर मानव अपने में परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है, विचार-विनिमय करता रहा हैं और वही विचार बेटा! आज मैं तुम्हें देने के लिए तत्पर हूँ केवल यह हमारे आचार्यों ने परम्परागतों से बेटा! देखो, इसके ऊपर विचार दिए हैं और वेदमन्त्रों में इसकी प्रतिभाओं का वर्णन आता रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह अग्नि मे अपनेपन को जानना बहुत अनिवार्य है अपनेपन को जानने से ही मुनिवरों! देखो, मानव को इसका ज्ञान होगा और मानं ब्रह्मे कृतं बेटा! देखो, ऋषि कहता है याज्ञवल्क्य हे ब्रह्मचारी! हे ब्रह्मचारी! ब्रह्वा कृते देखो, तुम्हें प्रतीत हो गया होगा क्या मानो देखो, यह जो सूक्ष्म यह सत्रह तत्त्वों का जो मानो देखो, सत्रह जो होता हैं यह याग कर रहे हैं, और ऐसा सूक्ष्म याग हो रहा हैं, जिस याग को मेरे प्यारे! जानने के पश्चात मानव का अन्तर्हृदय पवित्र हो जाता हैं वेद का ऋषि कहता है कि दोनों प्रकार का विज्ञान, जब

हमारे समीप आता है दोनों प्रकार का याग, जब हमारे समीप आता है तो सत्रह होता हूत कर रहे हैं देखो, वह दसों प्राण एक दूसरे में हूत कर रहे हैं पंच तन्मात्राएं एक दूसरे में हूत कर रही हैं मेरे प्यारे! मन बुद्धि से देखो, यह सर्वत्र देखो, परमाणु अपने में गमन कर रहा है और उसे कटिबद्ध हो रहा है कोई मन से कटिबद्ध है तो कोई बुद्धि से कटिबद्ध है और बुद्धि और मन दोनों का जब एकोकीकरण हो करके मेरे प्यारे! परमात्मा के चित्त मण्डल में प्रवेश हो जाते हैं जिससे बुद्धि के चार प्रकार हैं बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा मेरे प्यारे! जब यह प्रज्ञा में प्रवेश होता हैं बुद्धि मेधावी बन करके संसार को जाना जाता हैं और देखो, जान करके वसुन्धरा में बेटा! यह शान्त हो जाता हैं और प्रज्ञावी बन करके उसे परमात्मा को के सन्दर्भ में अपने चित्त मण्डल को समावेश करने का मानो देखो, वृत बन जाता हैं स्वतः यह वृत बनता है और वृत बन करके परमात्मा को हम अपने में दृष्टिपात करने वाले बनतें और इसीलिए देखो, बुद्धि और देखो, यह बुद्धि मन का सूक्ष्म रूप कहलाया जाता हैं बुद्धि देखो, यह मन केवल मन केवल देखो, तन्मात्राओं तक निहित रहता है। और मन प्रकृति का सूक्ष्म रूप हैं परन्तु देखो, यह मन से भी सूक्ष्म यह बुद्धि कहलाई जाती हैं और यह बुद्धि मेरे प्यारे! परमात्मा का दिग्दर्शन चित्त मण्डलो के द्वारा दृष्टिपात करता हैं क्योंकि चित्त का जो समूह है वह बुद्धि हैं और जब बुद्धि यह मुनिवरों! परमात्मा के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती हैं आत्मां भूतं ब्रह्मे यह आत्मा मेरे प्यारे! उसमें समावेश करके और चित्त के मण्डल में कोई संस्कार नही रह पाता तो उससे बेटा! देखो, सूक्ष्म रूप कहा जाता है मेरे प्यारे! देखो, वह संस्कारों का न रहना ही हमारे यहाँ मोक्ष की पगडण्डी मानी जाती हैं और जब तक संस्कार विद्यमान होते हैं उस समय परमात्मा के चित्त से इसका समन्वय नही होता तब तक मुनिवरों! देखो, वह चित्तवान बना रहता हैं और संस्कारवान ही चित्तवान कहलाता हैं जब मुनिवरों! देखो, संस्कारों से विहिन हैं तो चित्तवान ही नही रहता और चित्तवान मुनिवरों! देखो, परमात्मा के चितमण्डल में प्रवेश हो जाता हैं, तो यह जब मेधावी मानो देखो, बुद्धि, मेधा और प्रज्ञा वह प्राणी जाता है मानो देखो, अपना मनस्तं ब्रह्मा अपना चित्त इस प्रकृति की सूक्ष्म परमात्मा के चित्त मण्डल में प्रवेश हो जाती हैं तो आज बेटा! देखो, इस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा प्रगट कर पाऊंगा विचार-विनिमय क्या, वेद का ऋषि कहता है कि यह मानो देखो, सत्रह का कृतं देवत्वं लोकां यह सत्रह होताओं के द्वारा यज्ञमान याग करने वाला बने और सत्रह होता जो हैं इन्ही के द्वारा वह याग करते हैं वह बेटा! अमरावती को प्राप्त हो जाते हैं वही मेरे प्यारे! देखो, बाह्य जगत में, इन्ही मानो सत्रह होताओं की प्रार्थना करता हैं और यह कहता है कि मेरी बुद्धि मेधावी बन जाएं और मानो ऋत्म्भरावी बन करके में प्रज्ञा में प्रवेश कर जाऊं मानो दीक्षां व्रतं ब्रहे वसुन्धरं ब्रह्मा प्रज्ञां में देवा मैं प्रज्ञा में प्रवेश कर जाऊं। मेरे प्यारे! देखो, मनस्तव को कहता है, यह मन मेरा बुद्धि भी मानो देखो, में प्रवेश कर जाएं और यह बुद्धि भी मेरे प्यारे! चित्त मण्डल में प्रवेश हो जाए, यह प्रार्थना बाह्य जगत में आपो को ले करके करता हैं संकल्प मात्र से करता हैं परन्तु देखो, जब वह याग करता है तो वह कहता है मैं देवताओं के लिए याग कर रहा हूँ, क्योंकि मेरा जो आत्मा, वह पंच महाभूतों में रत्त रहता है, उसका गृह है, मैं उस गृह के लिए याचना कर रहा हूँ। तो मेरे प्यारे! अग्नि उन पंच महाभूतां का देवता कहलाया गया हैं पंच महाभूत ही देवता के रूप में रहते हैं, मेरे प्यारे! देखो, क्योंकि अग्नि उनका, मुख कहलाता हैं अग्नं ब्रह्मा देवत्वां ब्रह्म आत्मा का लोक क्या है? आत्मा का लोक पंच महाभूत हैं और पंच महाभूतां में बेटा! देखो, अग्नि उनका मुख कहलाया गया हैं जब यज्ञमान यह कहता है कि मैं प्रार्थी हूँ। और मैं आहुति दे रहा हूँ तो कर्म काण्ड की पद्धतियों में ब्राह्मण कहता है आचार्य कहता है कि हे यज्ञं ब्रह्मा तू कृतं ब्रहे तेरे हृदय में जो विनय कार्यमान हैं उसे तू मुझे प्रदान करके याग कर जैसे स्वच्छ बनाता हैं ऐसे ही तू अपनी वाणी को स्वच्छता में ले जा सम्भूति ब्रह्मा लोकां अव्यर्तम देवत्वं ब्रह्वा जैसे यह अग्नि सर्व देवताओं को भोज्य देता हैं इसी प्रकार तेरा सर्व आन्तरिक जगत अनुपम बना रहें यह तेरा देवताओं का

लोक पवित्रता को प्राप्त हो जाएं। वेदमन्त्र कहता हैं सम्भूति ब्रह्मा कृतं देवो देवां भूतं ब्रह्मे अग्नि वह अग्नि की प्रार्थना करता हुआ अग्न्याधान करता हैं वह अग्नि परमात्मा के रूप में विद्यमान रहती हैं इस अग्नि से नेत्रों का वाणी का श्रोत्रों का और घ्राण का सर्वत्र का समन्वय एक हो करके वह प्रवेश हो जाता हैं।

तो आओ, मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ, केवल यह कि ऋषि कहता है याज्ञवल्क्य, ऋषि ने कहा यज्ञमान याग करना चाहता हैं तो आध्यात्मिक और भोतिक याग को, दोनों को ही ले करके मानो देखो, अग्रणीय बने और अग्रणीय बन करके वह देखो, यज्ञमान अपने में पवित्रतव को प्राप्त होता रहा हैं तो मेरे प्यारे! देखो, यह पंच तन्मात्राएं और मुनिवरों! देखो, ये दस प्राण और दस प्राणों का जो समूह हैं वह मुनिवरों! देखो, यह मन और बुद्धि कहलाता है यह सत्रह रूपों में सत्रह होता अपने में याग करके कहते है कि प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा और यह अपने में मानो उदानाय कह करके अपने चित्त मण्डल को पवित्र बनाता हैं तो यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज के वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः यह क्या याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने नैतिक शिक्षा देते हुए ब्रह्मचारियों को न्यौदा में वेदमन्त्रों का उद्गीत गाते हुए, कहा सं ब्रह्वे देवत्वां देवां ब्रह्मा प्राणां ब्रह्मे देवतवां हे यज्ञमान! तू अपने में याज्ञिक बन करके और अपने जीवन को उदबुद्ध कर अपने जीवन को मानो उदबु कर तू मानो ज्ञान रूपी अग्नि को उद्बुद्ध करके तेरा हृदय पवित्रता को प्राप्त हो जाएं। ऐसा बेटा! वेदमन्त्र कहता हैं वेद की आख्यिका यह कहती हैं तो इसी प्रकार हमें बेटा! देखो, सूक्ष्म देखो, सूक्ष्म ब्रह्मे सूक्ष्म शरीर में यह सत्रह होता कहलाते हैं जो हूत कर रहे हैं इस ब्रह्माण्ड का ज्ञान कराते हैं ब्रह्माण्ड में जो अग्नि प्रदीप्त है, उसे वह मानो साकार रूप बन करके ही और देखो, यज्ञशाला की अग्नि में प्रवेश हो करके वह याग हो रहा हैं तो यह है बेटा! आज का वाक्, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि मैं अब अपने नैतिक उपदेश को हे ब्रह्मचारियों! अब मैं अपने उपदेश का देता हुआ अपने को शान्त कर रहा हूँ, वेदमन्त्रों में मानो नाना प्रकार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता हैं ज्ञान और विज्ञान दोनों ही निहित रह करके ऋषि-मुनियों ने यह कहा कि सम्भवे व्रतं देखो, परमात्मा का राष्ट्र बड़ा पवित्र है परमात्मा के राष्ट्र में आलस्य प्रमाद नही हैं और परमात्मा के राष्ट्र में जब आलस्य प्रमाद नही तो वहाँ मृत्यु नही हैं यह मृत्यु नही है यह केवल एक दूसरे को जानना है और जान करके ही मुनिवरों! देखो, अपने में प्रवेश कर जाता है वह मृत्यु का भान हो जाता हैं तो यह बेटा! आज का वाक् अब सम्पन्न होने जा रहा हैं समय मिलेगा मैं इससे आगे की शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और याज्ञिक बन करके बेटा! देखो, अपने में सत्रह होताओं के द्वारा याज्ञिक बनें और याज्ञिक बन करके अपने जीवन को महान पवित्र बनाने का प्रयास करें यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा।

१५ ग्यारह होता ०८ ०१ १९९२

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और जितना भी यह जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह प्रायः उसी की महिमा का द्योतक माना गया हैं क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नही हुआ, जो उस परमपिता परमात्मा को सीमाबद्ध कर सके, वे परमपिता परमात्मा सीमा से रहित है और वह सीमा में आने वाले नही हैं तो वह सीमा से रहित होने से ये अनन्तमयी अनुपम जगत हैं जिस अनन्तमयी जगत के ऊपर प्रायः मानव परम्परागतों से मनन करता रहा हैं ऋषि-मुनि अपने-अपने स्थानों पर विद्यमान रहे हैं और विचार-विनिमय करते रहे हैं वह प्रत्येक वस्तु में परमात्मा को दृष्टिपात करने का प्रयास करते रहे हैं। जैसे आज के हमारे वेद के पठन-पाठन में आ रहा था क्या चक्षुम्मे पाहि, और मानो उस परमपिता परमात्मा को चक्षु में पाना चाहते हैं परन्तु आगे कहता है सम्भव श्रोत्रं ब्रह्मा श्रोत्रम्मे पाहि मानो वहाँ भी हम प्रायः अपने में चिन्तन करते रहते हैं और मुनिवरों! देखो, प्रत्येक आभा में परमपिता परमात्मा को ध्यानावस्थित हो करके मानो उस वेदमन्त्र का अध्ययन करते हुए, जिसमें परमपिता परमात्मा को पाने की प्रतिक्रिया हैं हमारे जीवन में उत्पन्न होती हैं तो हमारे यहाँ एक-एक वेदमन्त्र कहता है कि ब्रह्मचारी विद्यालय में विद्यमान हो करके वह कहता है इन्द्रो शमं ब्रह्मा ब्रह्मचरिष्यामि हे ब्रह्मणे! तू मानो मुझे इन्द्रियों को प्रदान कर इन्द्रियों के विषयों को मानो वह आचार्य को प्रदान करता है, उसके पश्चात उसे विद्या का उपदेश देता है, ब्रह्म का, ब्रह्म सूत्रों का पठन-पाठन करता हुआ मानो ब्रह्म का उपदेश दे करके उसको महान बनाने का प्रयास करता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं गुरु शिष्य की प्रणाली में नही जाना चाहता हूँ, केवल ये क्या प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही, अपने-अपने आसनों पर विद्यमान हो करके, वह प्रायः अपने में मनन और चिन्तन करते रहे हैं परमात्मा का ध्यानावस्थित हो करके और वह नाना प्रकार के यागों का अपने में चयन करते रहते हैं जिन यागों के लिए हमारे यहाँ ऋषि-मुनि परम्परागतों से ही, अध्ययन करते रहे हैं और यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में मानो परिणत रही हैं, ऋषि-मुनि अपने-अपने स्थान पर विद्यमान हो करके और इस संसार के ऊपर नाना प्रकार की कल्पनाएं करते रहें हैं इसको वास्तविक रूप में भी दृष्टिपात करने का प्रयास किया है। मानो देखो, इस संसार को किसी ने किसी रूपों में, अपने में अध्ययन किया हैं और किन्ही आचार्यों ने यथार्थ रूप से अध्ययन किया हैं परन्तु देखो, नाना दार्शनिक जब विद्यमान होते हैं तो मुनिवरों! देखो, अपनी-अपनी कल्पनाएं, अपना-अपना विचार दे करके अपने को उद्गीत बनाना चाहते हैं, गायक ने यह कहा है कि यह संसार तो एक गान विद्या में रत्त हो रहा है मानव गान गा रहा है और वह गान गाता हुआ मानो देखो, उद्गीत गा रहा हैं प्रत्येक अणु और परमाणु एक दूसरे में संघर्ष हो करके वह अपने में गान गा रहा हैं मानो नृत्त हो रहा हैं जैसे हमारे आचार्यों ने देखो, नाना प्रकार के यागों का वर्णन किया है और गानवेत्ताओं ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मानो गान का वर्णन किया हैं सामां भूतं गायनं ब्रह्रे कृतं क्योंकि गान गाने वाला इतना तन्मय हो करके गाता हैं क्या मुनिवरों! देखो, वह सभा शून्य हो जाती हैं और सभा भी शून्य मानो अपनी-अपनी वृत्तियों में और भी ऊर्ध्वा में जब गान गाता हैं तो मेरे प्यारे! देखो, हिंसक प्राणी भी मौन हो जाता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब चाक्राणी गार्गी साम गान को गाने लगी, तो गान गाते-गाते मेरे प्यारे! देखो, भंयकर वनों में कोई प्राणी नही है, मेरे पुत्रों! देखो, निरंजना ब्रह्मा कृति वह अपने में गान गाने लगी,

साम गान गा रही है उद्गीत और माला पाठ में जब गान गाया जाता है। तो माला पाठ में ब्रह्मे सुतं ब्रह्मा इस प्रकार का जब गान गाने लगी तो बेटा! सर्पराज आसन पर विद्यमान है, सिंहराज मानो देखो, वह भयंकर वनों के जो प्राणी है, वह उनके गान को श्रवण करने लगे हिंसा को त्याग करके अहिंसक बन जाता है अहिंसक बन करके गान को श्रवण करता हैं जब श्रवण करता है तो वह परमात्मा की वाणी हैं और वह मानो देखो, अपने-अपने हृदय को परमात्मा के हृदय से आलिंगन करता हैं और जब गान गाता है तो मेरे प्यारे! देखो, कोई भी प्राणी ऐसा अभागा नही है जो अपने पिता के मानो देखो, उनके शब्दों और उनकी वृत्तियों को कौन नही धारण करता। प्रत्येक बाल्य अपने माता-पिता की प्रशंसा चाहता हैं इसी प्रकार ये प्रशंसनीय है, कि जब गान गाता हैं परमात्मा का गान गाता है, तो परमपिता परमात्मा सबका पितर हैं और जब पितरों के रूप में जब गान गाता हैं पितरों का तो मुनिवरों! देखो, हिंसक यह सर्पराज यह मृगराज देखो, उस परमपिता परमात्मा के पुत्र है और जब वह गान गाता है तो हिंसा को त्याग करके अहिंसा में परिणत हो जाता है। गान को श्रवण करने लगते है, जब चाक्राणी गार्गी से यह प्रश्न किया गया क्या हे देवी! तुम यह गान गा रही हो यह क्या कारण है कि हिंसक प्राणी भी हम अपने पूज्यपाद गुरुओं से यह प्रश्न किया करते थें जब वह गान गाते थे तो वह मानो सर्वत्रता में अपने में मौन हो जाते थे तो हम उनसे यह प्रसन्न करते थे कि महाराज! गान क्या हैं? चाक्राणी से जब यह प्रश्न किया गया तो उन्होंने कहा व्रत्यं ब्रह्मो कृतं ब्रह्मा धर्मस्सुति देवा अग्नां भूतं देवत्वां अकृति देवो ब्रह्मणे आपा व्रत्यं देवं ब्रह्मा कृति देवत्वां अप्रतं वायु वस्तव प्रसुन्गृति आ ऐसा वेदमन्त्रों का उन्होंने उद्गीत गाया और यह कहा कि कौन प्राणी ऐसा है, जिस प्राणी में देवता नही वास करते हैं मानो देखो, जैसे मानव के शरीर में आत्मा विद्यमान है और आत्मा अपने लोक में विद्यमान हो जाती हैं और आत्मा जब अपने लोक में होता है इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी देखो, अपने ही लोक में उसका आत्मा निहित रहता हैं इसी प्रकार जैसे मानव के शरीर में आत्मा विद्यमान हैं और उस आत्मा का लोक मानो देखो, जैसे यह पंच महाभूत माने गएं हैं, पंच देवतव माने गएं हैं, इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी मात्र के हृदय में चाहे वह सर्पराज के रूप में है, चाहे वह सिंहराज के रूप में हैं, चाहे मेरे प्यारे! गौ इत्यादि के रूप में हैं, कोई भी प्राणी मात्र देखो, उसमें जो पंच महाभूत आत्मा का जो वास है, वह पंच महाभूतों की आभा में रत्त रहता हैं और जब वह देवताओं का गान गाया जाता है, क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र का देवता है, उसका ऋषि हैं और वह उसी तुल्य जब गान गाता है परमपिता परमात्मा से वह मानो सर्वत्र में पिरोया हुआ है जैसे मुनिवरों! देखो, मैंने इससे पूर्व काल में कहा हैं क्या ग्यारह होताओं के द्वारा क्या मानो देखो, मनस्तं ब्रह्मे दस इन्द्रियों के द्वारा मन उसमें पिरोया रहता हैं और पिरो करके ही ग्यारह होता प्रायः यज्ञशाला में निहित होते हैं तो इसी प्रकार चाक्राणी ने कहा कि मेरे यहाँ जब मैं गान गाती हूँ तो मानो प्रत्येक प्राणी मात्र अपनी हिंसा को त्याग देता हैं और वह मानो देखो, ओजस्तव को प्राप्त होता हुआ, अपने पितरों की महिमा को श्रवण करता है क्योंकि परमपिता परमात्मा पितर हैं और वह पितर ही मुनिवरों! देखो, वह अप्रतं ब्रह्मा वह पितरों की आभा में परिणत करता हुआ अपने में सौभाग्य स्वीकार करता हैं।

मेरे प्यारे! देखो, एक सर्पराज रेंगता हुआ चाक्राणी के चरणों को स्पर्श कर रहा हैं जब यह प्रश्न किया गया कि यह क्यों तुम्हारे चरणों को स्पर्श कर रहा है? तो चाक्राणी ने कहा सम्भो वर्णनं ब्रह्मा गायन्त्वां देवत्वं ब्रह्मा क्योंकि यह जो ज्ञान है यह आत्मा का प्रतीक है, ज्ञान आत्मा में होता हैं जब विद्यालय में एक मानव गान को अथवा ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जाता हैं तो ज्ञान केवल देखो, उसकी आत्मा में निहित होता हैं वही पंच महाभूतों के रूप में जब विद्यमान होता हैं तो वह ज्ञानी जनं ब्रह्म कृतं क्योंकि उसको उदबुद्ध करता है विद्या के द्वारा उसे उदबुद्ध करता है परन्तु प्राणी मात्र जब श्रवण करता है तो उसे उदबुद्ध करता हैं और उदबुद्ध करके देखो,

ज्ञान को श्रवण करके मानो देखो, जो ज्ञान देता है उसके चरणों की वन्दना करता हैं इसी प्रकार जैसे आचार्य कुल में ब्रह्मचारी अपने गुरु के चरणों को आलिंगन करता रहता हैं और उसको स्पर्श करके मानो अपने में अपने ही सौभाग्य स्वीकार करता है, इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी अपने में सौभाग्य को स्वीकार करता हैं मुनिवरों! देखो, प्राणी मात्र वह प्रभु की पिपासा का मानो पिपासी बना हुआ हैं तो हमें विचारना है कि हम भी देखो, अमृतं ब्रह्मा जब वह शान्त मुद्रा में होता हैं तो मुनिवरों! उस समय वह परमात्मा का ध्यानावस्थित करता हैं कोई प्राणी ऐसा नही है जो प्रभु का गान न गाता हो, कोई प्राणी ऐसा नही है जो प्रभु के गान का उत्सुक न हो, वह उत्साही रहता है, उत्साह में मानो देखो, उसका एक ही चरण रहता है कि मैं परमात्मा की प्रतिभा को जानने वाला बनूं, एक मानव ऐसा प्राणी मात्रं ब्रहे प्राणी मात्र में एक मानव ऐसा है जो सदैव देखो, उस परमपिता परमात्मा को गान रूप में गाता हैं, अथवा गाता ही रहता है और वही सबको मोहित कर लेता है। मेरे प्यारे! देखो, क्या अमृतं ब्रह्मा क्या पक्षी गण मानो देखो, अन्तरिक्ष में गमन करने वाले, पृथ्वी पर रेंगने वाले, मेरे प्यारे! देखो, जितने भी चतुष पग वाले हैं, वे उसकी भाषा को भाषाकार सन्तुलन कर लेते हैं जिससे बेटा! देखो, वह अपने में ज्ञानवान बन करके सम्पर्क से ज्ञानी बन जाते हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, इस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, वेद का मन्त्र यही कहता है वेदमन्त्र कहता हैं प्रत्येक प्राणी मात्र उस परमपिता परमात्मा को पाना चाहता हैं श्रोत्रोंम्मे पाहि नेत्रोम्मे पाहि, घ्राणम्मे पाहि, वह मानो देखो, उसको सर्वत्रता में पाना चाहता हैं तो यह वेद का मन्त्र उद्गीत गाता हुआ बेटा! अपने में अव्रत कर रहा है, इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियों को जानने वाला ही मुनिवरों! देखो, जैसे याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है जब यह ब्रह्मचारी ने यह प्रश्न किया कि महाराज! यज्ञमान याग करना चाहता है कितने होताओं के द्वारा वह याग करें? तो वह कहता है कि ग्यारह होताओं के द्वारा याग होना चाहिए क्योंकि दस इन्द्रिय और ग्यारहवां जो मन है इस मन ओर इन्द्रियों को दोनों को पवित्र बनाना चाहता है मेरे प्यारे! देखो, जब कर्मेन्द्रियों हैं उन कर्मेन्र्द्रियों मित्रता को वह दृष्टिपात करता है कर्म में यह जानना चाहता है कि मैं वास्तव में देवताओं को जान जो देवता मेरे से कर्म की मानो प्रेरणा दे रहे हैं मैं उनसे प्रेरित होकर मानो देखो, कर्म में लिप्त हो जाता हूँ कर्म करने लगता हूँ।

तो मेरे प्यारे! देखो, पांच जो कर्मेन्द्रियां हैं इन कर्मेन्द्रियों को ले करके देखो, इनके द्वारा याग करता है। मेरे पुत्रों! देखो, जिससे मेरे जीवन में सुगन्धि आ जाये, क्योंकि ब्रह्माण्ड ओर देखो, पिण्डं ब्रह्मा कृतं पिण्ड ओर ब्रह्माण्ड को एक सूत्र में लाने का आचार्यों ने प्रयास किया है और देखो, प्रयास करने के पश्चात् उन्होंने आध्यात्मिकवाद ओर भौतिकवाद दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया और मुनिवरों! देखो, उन्होंने याग को भी आध्यात्मिक याग ओर भौतिक याग दोनों को ऊर्ध्वा में लाने का प्रयास किया। मेरे पुत्रों! देखो, दसों इन्द्रियों को जब एकत्रित करता हुआ और मन को देखो, सूत्र बना लेता है और मन में इन्द्रियों को सूत्रित करके बेटा! उसको माला बना लेता है ओर माला बना करके अपनी यज्ञशाला में याग करता है केवल मन को एकाग्र करता हुआ इन्द्रियों को प्रत्येक प्राण को अपने में समावेश करता हुआ वह याग करता रहता है। मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है एक मानो देखो, श्वेतकेतु अंगिरस हुए हैं श्वेतकेतु अंगिरस मुनि महाराज इन इन्द्रियों के ऊपर अध्ययन कर रहे थे अध्ययन करते-करते उन्होंने अपने में मौन धारण किया, वाणी के ऊपर जब उनका अधिपथ्य हो गया, तो वाणी के ऊपर अधिपथ्य हो गया। क्या मानो देखो, वह अपने संस्कार ब्रह्मो ब्रहे अपने संस्कारों को जानने की उनकी उत्सुकता बनी ओर उन्होंने विचारा कि जो मेरे चित्तं में मेरे अन्तःकरण में जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान है मैं उन संस्कारों को साक्षात्कार करना चाहता हूँ तो मानो देखो, वह अपने में विचारने लगा चिन्तन करने लगे चिन्तन करते-करते मानो देखो, वह मौन हो गएं और मौन हो करके जब उनकी वाणी के ऊपर

इतना अधिपथ्य हो गया और वाणी से मानो जो आहार भी करते थे वह मुनिवरों! देखो, ऐसे पदार्थों का, कहीं मुनिवरों! देखो, वायु का सेवन करते कहीं अन्नाद का सेवन करते कहीं मानो देखो, अन्नाद को खरल बना करके पान करते मेरे पुत्रों! देखो, उनका आहार जब पवित्र बन गया तो मन पवित्र बन गया और मन के पवित्र बन जाने से देखो, जब भी मानं ब्रहे इन्द्रियां जब अपने में समाहित हो गई तो बेटा! देखो, तो चित्त में जो संस्कार हैं वह मन के द्वारा ही मानो उदबुद्ध होने लगे और जब उदबुद्ध होने लगे तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है पिचासी वर्ष तक उन्होंने मौन धारण किया और पिचासी वर्षो में मानो इस प्रकार का वह याग करते रहे आध्यात्मिकवाद को उन्होंने अच्छी प्रकार जाना ऋषि मुनियों ने अपने जीवन में और वह इस प्रकार का अध्ययन करते रहे कि मैं प्रत्येक इन्द्रियों को मानो देखो संग बना करके चित्त के मण्डल में ले जाना चाहता हूँ और चित्त के मण्डल में जो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार हैं तो बेटा! देखो, उन्होंने लगभग लाखों जन्मों के संस्कारों को उन्होंने साक्षात्कार किया क्योंकि वह चित्त मण्डल में विद्यमान थे तो उन्होंने बेटा! देखो, वह आहार वाणी के ऊपर अनुशासन किया वाणी उद्गीत गाती है और मानव देखो, मौन रहता है और जितना मानव मौन रहता है वह साधक और जितना सार्थक चिन्तन करता है उतना देखो, उसका जीवन वलवती होता है पवित्रता को प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार मेरे प्यारे! देखो, उसका समन्वय मन से रहता है जब मानो देखो, इसी प्रकार जब वर्णं प्रहा चित्त के संस्कारों से जब प्रत्येक इन्द्रियों का जब समन्वय होता है तो चित्त मण्डल में अपने को ले जाता है और चित्त मण्डल में जो संस्कार होते हैं उन संस्कारों को उद्बुध्द करता है और जब संस्कार मानो देखो, उसके साक्षात्कार बलवती हो जाते हैं तो बेटा! वह यह जान लेता है कि तेरा जो शरीर है, तेरा जो देवतव का शरीर है मानो पंच महाभूतों का यह कितना मानो देखो, आयु को प्राप्त होता है, आयु को प्राप्त हो करके मानो देखो, शरीरान्तं ब्रह्मा यह स्थूल शरीर को त्यागेगा तो उसे यह भान हो जाता है और भान हो करके मानो देखो, चित्त के संस्कारों को साक्षात्कार करने लगता है। आज बेटा! देखो, मैं इसके ऊपर प्रत्येक देखो, अपने में विशेष विचार नहीं देना चाहता हूँ विचार केवल यह कि मानो देखो, प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर मानो देखो, उन्नं ब्रहे चक्षु वाणी ब्रह्म वाणी से पाना चाहता है तो मानो देखो, वाणी से पाना चाहता है तो मेरे प्यारे! देखो, वाणी को चिन्तन में लिया जाए। क्या यह तो जो देखो, सदैव सत्य ही उच्चारण करती दृष्टिपात करता है सत्य ही दृष्टिपात करता है वह मेरे प्यारे! देखो, उसके नेत्रों में ज्योति उत्पन्न हो जाती है और वह ज्योति इस प्रकार की है कि वह मानो देखो, शरीरों को जिस प्रकार का दृष्टिपात से मानो वज्र बनाना चाहता है उसी प्रकार का बन जाता है।

मुझे बेटा! स्मरण आता रहता है जब मानो देखो, उस साहित्य के विचारों में प्रवेश करता हूँ तो बेटा! देखो, नेत्रों से देखो जब सुदृष्टिपान करता है करने वाली प्राणी होगा तो उसकी ज्योति तो नेत्रों में इस प्रकार की ज्योति का उसे भान हो जाता है तो संस्कारित जीवन बन करके बेटा! देखो, नेत्रों में एक प्रबलता आ जाती है। मुझे स्मरण आता रहता है मेरे प्यारे! देखो, महाभारत का काल मुझे स्मरण आ रहा है देखो, मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय दिया था कि महाभारत काल में जो देवी गान्धारी थी उससे मानो देखो, जब बाल्यकाल में ही मानो देखो, जब वह गृह में प्रवेश हुई तो उसने अपने पति को दृष्टिपात किया कि नेत्रों से हीन है उसी समय उन्होंने नेत्रों को मानो देखो, वस्त्रों से लिपायमान कर दिया और उसको मुनिवरों! देखो, ज्ञानं ब्रह्मे वृतं वही ज्योति उसके द्वितीय स्थलों में नही जाती थी केवल ज्योति अन्तर्मयी आन्तरिक जगत में ही मानो देखो, वह ज्योति अपने में महान पनपती रही और पनपने का परिणाम यह हुआ कि मुनिवरों! देखो, वह जब अन्तर्काल आया तो दुर्योधन अमृतं ब्रहे अमृता ब्रहे जब वह मृत्यु को प्राप्त होने वाला था महाभारत का काल समाप्त होने लगा, तो मुनिवरों! देखो, महाराजा धृतराष्ट्र ने यह कहा कि जाओ, तुम माता के समीप चले जाओ, और वह तुम्हारे

लिए कोई न कोई उद्गीत गायेंगी, उन्होंने कहा कि किस दशा में जाएं उन्होंने कहा कि नग्न हो करके चले जाओ, मेरे प्यारे! देखो, जब कृष्णा जी को यह प्रतीत हुआ तो क्या, यह तो महाभारत का काल ही समाप्त हो जाएगा तो उसी समय देखो, अर्जुन इत्यादियों ने उससे कहा कि अरे, तुम माता के समीप नग्न जाओगे, तो मानो देखो, उन्होंने वृक्ष पर अपने शरीर को उन्होंने ढ़ांप लिया ओर जब वह गान्धारी के समीप पंहुचा दुर्योधन, तो उसने दृष्टिपातं ब्रह्मे हे माता! तुम मुझे दृष्टिपात कर मेरा जीवन वज्र हो जाये, क्योंकि तुने जीवन में तपस्या की है, नेत्रों से कुदृष्टिपात नहीं किया नेत्र तुम्हारे तपे हुए हैं ओर मेरी जो अमूल्य ज्योति है, अमूल्य ज्योति तो मेरे देखो, शरीर को यह व्रज बना सकता है। तो मेरे प्यारे! देखो, जब गान्धारी ने अपने नेत्रों से उस वस्त्र को दूरी किया तो उन्होंने कहा दुर्योधन! तुम्हें कोई प्राप्त हो गया है, उन्होंने कहा मुझे अर्जुन ओर कृष्णा का दर्शन हुआ, उन्होंने कहा जाओ यही तुम्हारा शरीर मानो देखो, वज्र नही बना है। तो मुनिवरों! देखो, ब्रह्मणे कृतं देवत्वां तो नेत्रों की ज्योति अपने में बड़ी प्रबल बन करके रहती है जब इसका देखो, ध्यानावस्थित हो जाते हैं मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है कागभुषुण्ड जी की ज्योति भी इतनी प्रबल रही जब मुनिवरों! देखो, वह अनुष्ठान करते थे उन्होंने एक समय महर्षि लोमश मुनि से यह कहा कि महाराज! मेरे तो अपने नेत्रों की ज्योति को प्रबल बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि तुम बारह वर्ष का अनुष्ठान करो। तो बारह वर्ष का उन्होंने अनुष्ठान किया। उन्होंने यज्ञ की तरंगों को ही दृष्टिपात किया। याग करते रहना, ओर मानो देखो, उसी को दृष्टिपात करते थे। जब मानो देखो, अग्नि के अव्रत में उसी अग्नि को वह तरंगों में दृष्टिपात करते थे, तो बारह वर्ष का उनका अभ्यास वह अभ्यस्त हो गएं क्या मुनिवरों! देखो, नेत्रों से ज्योति उत्पन्न हो गई, क्या मुनिवरों! देखो, वह ज्योतिवान बन गए ओर ज्योतिवान बन करके वह अग्नि तरंगों को वह जान लेते थे, मानो देखो, वह अग्नि की तरंगें जा रही हैं ओर यह तरंगें कोई द्यौ लोक को जा रही हैं कोई तरंगें मानो देखो, अपने गृह में प्रवेश कर रही हैं कोई मुनिवरों! मानव की वाणी रूप बन करके वही मुनिवरों! देखो, शब्द के रूप में परिणात हो रही हैं। तो मेरे प्यारे! वह चित्त के मण्डल में प्रायः उसका इतना ब्रहा वह अपने में ध्यानावस्थित होते रहते, तो विचार आता रहता है मुनिवरों! देखो, जब हम नेत्रों की ज्योति को पवित्र बनाना चाहतें हैं वाणी को पवित्र बनाना चाहते हैं तो प्रत्येक इन्द्रियों का जो समन्वय होता है वह कहता है चक्षुम्मे पाहि हम उस परमपिता परमात्मा को पाना चाहते हैं परन्तु चक्षुओं में उनका विषय समाप्त हो जाता है परमात्मा प्राप्त नही होता विषय प्राप्त हो जाता है देखो, वह जिस विषय को जानना चाहते हैं जिस विषय का अश्व एक क्रिया लगा हुआ है जिससे उसका समन्वय रहता है ओर वह उसी को जानने वाले बनें।

मेरे पुत्रों! देखो, इसी प्रकार जब मुनिवरों! देखो, जब महर्षि कागभुषुण्ड जी इस प्रकार का उन्होंने बारह वर्ष का अभ्यस्त किया तो वह यज्ञ की ज्योति में यज्ञ की तरंगों में देखो, चित्रों को भी दृष्टिपात करते थे, अन्तर्मुखी हो जाते थे मेरे पुत्रों! देखो, एक समय जब वह याग कर रहे थें तो वृत्तिका ऋषि एक समय मुनिवरों! देखो, विद्यालय में अपने ब्रह्मचारियों को दण्डित किया किसी कारण से, ओर दण्डित करके वह अगले दिवस वह प्रातःकालीन तमोगुण अन्तर्हृदय बना रहा, बनने के कारण बेटा! वह भ्रमण करते हुए उन्होंने कहा मैं तो भ्रमण कर आऊं, तो वह कागभुषुण्ड जी प्रातःकालीन याग कर रहे थे, जब याग कर रहे थे तो याग में से हूत करने लगे, यज्ञ में, साथ में, तो कागभुषुण्ड जी का इतना जीवन अभ्यस्त हो गया था क्या वह जैसे ही स्वाहा उच्चारण करते थे वह स्वाहा शब्द में मानो देखो, तमोगुण में दृष्टिपात आने लगे, कागभुषुण्ड जी ने कहा ऋषिवर! मैं तो इसीलिए अनुष्ठान कर रहा हूँ क्या देखो, ऋषि-मुनि जितना भी अनुष्ठान करते हैं वह इसीलिए करते हैं कि वायुमण्डल उनकी तरंगों से पवित्र हो जायें वह देवतव को प्राप्त हो जाएं ओर देवतव उसका आहार हो, देवतव उसका व्यवहार हो, ओर देवतव दृष्टिपात हो ओर देवतव ही मानो देखो, वह श्रोत्रों में, शब्दों की प्रतिभा आ जाए। तो इसी प्रकार

देवतव ही मानो देखो, सुगन्धित हो जाए तो इस प्रकार मैं सुगन्धित होना चाहता हूँ और मानो देखो, मेरे याग की आहुति दे करके सर्वोपरि बनाना चाहता हूँ मेरे प्यारे! देखो, वृत्तिका ऋषि ने कहा प्रभु! आप यथार्थ उच्चारण कर रहे हैं क्योंकि मैं देखो, इससे पूर्व में मेरे हृदय में रजोगुण छा गया और ब्रह्मचारियों को मैंने कल दण्डित किया है और वह विचार मेरे बने हुए हैं वह तरंगें मेरे अन्तर्हृदय में लगी हुई हैं। तो उन्होंने कहा तुमने मेरे अनुष्ठान को दूषित किया है मुनिवरों! देखो, इतनें में माणां भूतं ब्रह्मे कागभुषुण्ड जी ने जब ऐसा कहा तो ऋषि के चरणों में ओत-प्रोत हो गए और यह कहा कि प्रभु! मुझे क्षमा कीजिए। मैं क्षमा का पात्र हूँ प्रभु! उन्होंने कहा मैं तुम्हें क्षमा नही करूंगा, क्योंकि तुमने यह मेरे लिए यह अनुष्ठान को कलंकित किया है उन्होंने कहा प्रभु! यह अवृतं ब्रह्मा क्योंकि आप ऋषि हैं तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने क्षमा किया। तो कहा जाओ अपने विद्यालय में चले जाओ। अपने विचारों को सतोगुणी बना करके जाओ, क्योंकि विद्यालय की तरंगों से ऊँचा बनेगा, जब तरंगों में मानो देखो, वह अधिकार बना रहेगा, तरंगों में तमोगुण बना रहेगा रजोगुण बना रहेगा तो ब्रह्मचारियों के हृदय में वह शब्द हो, दर्शनों से गुथें हुए शब्द हैं वह तमोगुणी हो करके देखो, ब्रह्मचारियों के हृदय में प्रविष्ट हो जाएंगें और प्रविष्ट हो करके वह ब्रह्मचारी को राष्ट्र और समाज को ऊँचा नही बना सकते उनका आध्यात्मिकवाद पूर्णता को प्राप्त नही होगा। मेरे प्यारे! देखो, जैसे सुयोग्य माता अपने बाल्यों को अपनी लोरियों में, लोरियों में ध्यान करती हुई लोरियों का पान कराती हैं और वह समाज और राष्ट्र और देखो, आध्यात्मिकवाद की बालक के देखो, श्रोत्रों में देखो, पुट दे देते हैं तो वही बालक मानो देखो, माता के संस्कारों से संस्कारित हो जाता है, वह ऐसे संस्कारित हो करके और वह संस्कारों को ले करके देखो, वह जगत में भ्रमण करता है और वह अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, इसी प्रकार जब कागभुषुण्ड जी ने जब ऐसा कहा तो उन्होंने नतमस्तिष्क हो करके चरणों की वन्दना करते हुए कहा प्रभु! आपने मुझे उपदेश दिया है वह उपदेशां भूतं मैं उपदेश का पात्र तो नहीं, परन्तु देखो, मैं प्रयास करूंगा। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने अपने आसन को त्याग ऋषि के आश्रम को त्याग करके अपने आश्रम में प्रवेश हो गये। ब्रह्मचारियों ने उनका स्वागत किया परन्तु देखो, वह तपस्या करते तपस्या में, जो प्रेरणा प्राप्त होती, वह ब्रह्मचारियों को देना प्रारम्भ कर दिया। मेरे प्यारे! हमारे यहाँ इस प्रकार का विज्ञान प्रायः मानवीय मस्तिष्कों में रहा हैं मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है जब भारद्वाज मुनि महाराज के यहाँ देखो, विद्यालय में शिक्षा दी जाती, तो शिक्षा देने के पश्चात उन्होंने यन्त्रों का निर्माण किया था और वह यन्त्रों का निर्माण करके वह यन्त्र विद्यालय के प्रतिष्ठित हो जाता है और वह जब मानो देखो, किसी ऋषि के देखो, वह शिक्षा देने वाले के हृदय में जब वह तमोगुण की मात्रा आई तो वह मात्रा मानो यन्त्रों में दृष्टिपात आती थी और वह ब्रह्मचारियों के हृदय में प्रवेश होती हुई दृष्टिपात आती है, यह मेरे प्यारे! देखो, महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में भी इस प्रकार के वैज्ञानिक होते रहे है। आज मैं बेटा! केवल विज्ञान के ऊपर केवल इतना ही, क्या देखो, महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ बेटा! ब्रह्मचारी कवन्धि ने, सुकेता ने, बेटा! और पणपेतु इत्यादि ब्रह्मचारियों ने एक यन्त्रों का निर्माण किया था जो एक समय मुनिवरों! देखो, यन्त्रं ब्रह्मा यन्त्र विद्यालय में विद्यमान है परन्तु शवेनकेतु महाराज एक समय अध्ययनं ब्रह्मा वृतं वह मानो देखो, जब वह शिक्षा दे रहे थे तो उसके हृदय में तमोगुण की, रजोगुण की दोनों मात्रा उत्पन्न हो गई और उत्पन्न होने से वह देखो, यन्त्रों में चित्र आने लगे और वह जब चित्र आने लगे तो ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा हे ऋषिवर आप मानो देखो, आप मानो आपके हृदय में रजोगुण, तमोगुण छा गया है वह चित्र आ रहे हैं आपके अमृतं ब्रह्मे देवां ब्रहा और वह चित्र मानो उनके हृदय में जा करके दृष्टिपात आ रहे हैं मेरे प्यारे! देखो, वह ब्रह्मचारी आचार्यं भूतं ब्रह्मे आचार्य कहते हैं कि विद्यालय जब ऊँचे बनते हैं शिक्षा देखो, प्रणाली

जब पवित्र बनती है जबकि देखो, विचार देने वाले कि विचार पवित्र होते हैं विचारों में महानता और तपस्या की सुगन्ध होती हैं और तपस्या की जो तरंगें हैं वह उसके विचारों में निहित हो करके ब्रह्मचारियों के हृदय में प्रवेश करती हैं तो मानो देखो, वही तरंगें देखो, तरंगित हो करके जीवन को ऊँचा बनाती है तो आज मैं बेटा! इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नही आया हूँ विचार केवल यह कि मैं ऋषि-मुनियों का उपदेश प्रगट कर रहा हूँ तो उनके जीवन में अनुष्ठान हुए उनका सबका अभिप्रायः यही रहा है, क्या प्रत्येक इन्द्रियों को बेटा! हम संयम में लायें प्रत्येक इन्द्रियों को जो संयम में लाना जानता है वह मृत्युंजय बन जाता है और मृत्यु को मानो देखो, इच्छा के अनुसार त्यागने का प्रयास करता है मेरे प्यारे! देखो, मैंने कई कालों में तुम्हें वर्णन किया है, माता मलदाल्सा का जीवन भी इसी प्रकार का रहा है वह सदैव तपस्या में रमण करती हुई, मानो देखो, सन्तान को शिक्षा देतीं और देखो, वह उससे अपने बाल्यकाल में भी आचार्यों से यह कहा था कि मैं अपनी इच्छा से अपने शरीर को त्यागूंगी। मेरे प्यारे! देखो, जिस मलदालसा का वर्णन आचार्यों का भी ऐसा रहा जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने विद्यालय में अध्ययन करते थे और ब्रह्म सूत्रों का जब अध्ययन करते रहें अध्ययन करके मानो देखो, प्रत्येक इन्द्रियों के ऊपर अन्वेषण होना और प्रत्येक इन्द्रियों का साकल्य चरू बनाना और चरू बना करके मानो देखो, उसके ऊपर अनुष्ठान करना। अनुष्ठान का अभिप्रायः यह है कि व्रत को धारण करके और वह उसी प्रकार का व्रत धारण करे और धारण करके मानो देखो, वही अंकुर हमारे अन्तःकरण में प्रवेश कर जाते हैं वही मानो देखो, तरंगें बन जाती हैं और वही तरंगें मानो देखो, वायुमण्डल को पवित्र बनाती हैं और जिस स्थली पर रहते हैं उसको पवित्रता की वेदी पर ले जाते हैं। तो विचार आता रहता है बेटा! जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि ऋषि-मुनियों का जीवन कितना तपों में रहा है तो मुनिवरों! प्रत्येक इन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान करना, प्रत्येक इन्द्रिय देखो, दस इन्द्रिय है उनको मानो देखो, मनसतव खम्भः है उससे मानो देखो, जकड़ लेते मानव का शरीर प्राण से जकड़ा हुआ रहता है प्राणों से ही मानो देखो, पिरोया हुआ रहता है और वह मानो देखो, उसी में रत्त रहता है उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, इसी प्रकार यह प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है यह मानव के मन से मानो देखो, जब जकड़ा जाता है उसी में स्तम्भ बन करके मुनिवरों! देखो, गऊ का बछड़ा मानो देखो, उसी में उसे सम्मिलित कर लेते हैं और वहीं देखो, गमन करता रहता है इसी प्रकार मन से प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों से वायुमण्डल को पवित्र बनाने का प्रयास करें। तो मेरे प्यारे! देखो, जब साधक जब अपनी साधना से पूर्णता को प्राप्त होता है और वह जब इन्द्रियों को विषयों को जानता है। तो मेरे प्यारे! वही इन्द्रियों को जय करने वाला साधक अपनी इच्छा से अपने शरीर को त्यागता है क्योंकि मन से बेटा! दोनों का समन्वय रहता है प्राणों का विषय देखो, मन से सम्बन्ध रहता है इसीलिए जो क्रिया होती है वह प्राण की होती है और देखो, जो विभाजन करता है वह केवल मन के द्वारा होता है दोनों को जानना दोनों की विभक्त क्रिया को जानने वाला बन जाता है। तो मेरे प्यारे! मुझे बहुत से ऋषि-मुनियों का जीवन प्रायः स्मरण आता रहता है तो मैं वशिष्ठ की चर्चा कर रहा था। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज जब ब्रह्म सूत्रों का अध्ययन करते थे और ब्रह्मवेत्ता बन गये, तो मुनिवरों! देखो, उनकी वाणी में इतना ओज था कि वह किसी को उद्गीत नही गाते थे परन्तु अपने में दृढ़ रहते थे और वह मुझे स्मरण है उनका जीवन मृत्यु आ जाएं शरीर चला जाएं परन्तु देखो, अपनी वाणी इतनी दृढ़ निश्चयात्मक रहती कि उद्गीत गाने में मेरे प्यारे! देखो, वह अपने में कोई दण्डित करने वाला आ जाए तो वह नम्रता का श्वास ले जाते तो मेरे प्यारे! देखो, उच्चारण यह कि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपनी इन्द्रियों पर जय करने वाला वही ब्रह्मवेत्ता कहलाता है, वही ब्रह्मवेत्ता कहलाता है जिस पर इन्द्रियों पर जय नही होती, वह ब्रह्मयाग का भी उसे अधिकार नही होता। मेरे प्यारे! देखो, वेद का ऋषि कहता है ब्रह्मणे ब्रह्मा वशिष्ठ मुनि महाराज से एक समय माता अरूणधती

ने यह कहा था कि हे प्रभु! वेदमन्त्रों में ब्रह्म हत्या का वर्णन आता है यह क्या है? हम ब्रह्मवेत्ता हैं मुझे निर्णय कराईए क्योंकि रात्रि का समय था चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त था तो उस समय उन्होंने कहा कि हे देवी! ब्रह्म हत्या के सम्बन्ध में तुम क्यों जानना चाहती हो उन्होंने कहा प्रभु! वेद में आया है मैं आज ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यालय में अध्ययन कर रही थीं, तो अध्ययन करते हुए मानो देखो, ब्रह्म हत्या का वर्णन आया, तो ब्रह्मणे वाचं हत्यां भूतं प्रहे ब्रह्मे व्रतं वेद का ऋषि कहता है कि तू ब्रह्म हत्या न कर। हे मानव! यदि तू ब्रह्म को जानना चाहता है तो ब्रह्म हत्या न कर मानो यदि तू ब्रह्म हत्या करेगा तो ब्रह्म को नहीं जान पाएगा। ऐसा वेद में आया है प्रभु! तो मैं आपसे जानना चाहती हूँ आशंका बनी हुई है आप उत्तर दीजिए उन्होंने कहा-देवी! तुम्हें आशंका क्यों बनी उन्होंने कहा प्रभु! मुझे जिज्ञासा बनी है और जिज्ञासु बन करके तुम प्रश्न करो, उन्होंने जब जिज्ञासा के रूप में मानो प्रश्न किया तो उन्होंने कहा देवं ब्रह्मा व्रते हे देवी! हे देवी! देखो, ब्रह्म हत्या देखो, बाह्य जगत में यह है कि देखो, ब्राह्मण की देखो, बुद्धिमान देखो, उसका अपमान न करो बाह्य जगत में तो यह है और आन्तरिक जगत में यह है कि जो प्रभु को पाना चाहता है वह बाह्य हो या आन्तरिक जगत हो दोनों उसके लिए शोभित होते हैं देखो, ब्रह्म हत्या का अभिप्रायः क्या कि आत्मा से प्रेरणा आती है, आत्मा से सुप्रेरणा आती है उस प्रेरणा को दमन न करो उसकी हत्या न करो तो आत्मा की आज्ञा के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करता है उसकी प्रेरणा को ले करके गमन करता है वही मानो ब्रह्म को प्राप्त करता है और जो ब्रह्म हत्यां भूतं वह ब्रह्म हत्यारा है जो आत्मा की अवहेलना जो आत्मा की अवहेलना करता है जो आत्मा की प्रेरणा की हत्या जो लज्जा, शंका की अवहेलना हो जिस कर्म के करने में वही कर्म तुम्हारे लिए देवत्वां भूतं ब्रह्मे और वह प्रेरणा जब प्राप्त होती है जो शुद्ध है हम उसी को पालन करने के लिए तत्पर हो जाएं उसको शुद्ध उच्चारण करके जानने का प्रयास करें क्योंकि आत्मा इस शरीर में विद्यमान है उसे चेतना कहते हैं और उस आत्मा की प्रेरणा को जो मानव तिरस्कारित कर देता है वह मानो ब्रह्म हत्या करता है। तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि ने इस प्रकार वर्णन किया तो देवी बड़ी प्रसन्न हुई और देवी ने कहा प्रभु! आपको धन्य है। उन्होंने कहा ऋषि से, वेदमन्त्र कहता है हे मानव! तू ब्रह्म हत्या न कर प्रभु को तुझे प्राप्त करना है यदि तुझे तपस्वी बनना है तो प्रेरणा तू आत्मा की हत्या न कर। तो मेरे प्यारे! देखो, आत्म ब्रह्मे यह ब्रह्म हत्या कहलाती है जब क्या आन्तरिक जगत से विचार उत्पन्न होते हैं वही तो एक विचार है वही तो एक महान है वही तो मानव को पवित्र बना देते हैं।

बेटा! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ केवल यह कि मुनिवरों! देखो, अपने प्रभु का गान गाना और गायन जब अपने में गान गाता है तो वह बेटा! उसे उद्गीत कहते है। उसे माला पाठ में गायक अपने में परिवर्तित कर लेता है हृदय का हृदय से समन्वय कर लेता है और वह हृदय का जब हृदय से समन्वय हो जाता है तो वह एक पंचीकरण का भान हो जाता है पंचीकरण प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियों का जो विषय है इन्द्रियों का जो विषय है प्राण में समाहित हो जाता है प्राण और मन के माध्यम से मानो देखो, परमात्मा के हृदय से आलिंगन हो करके गान गाता रहता है और वह जब गान गाता है तो वह जो हृदय है चाहे वह सिंह रूप में हैं चाहे वह मानो सर्पराज के रूप में हैं इसका हृदय है हृदय से हृदय का समन्वय हो करके वह अहिंसा में परिणत हो जाता है उसका परिवर्तन हो जाता है जीवन में एक महानता का जन्म हो जाता है।

तो आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा न प्रगट करता हुआ, केवल यह क्या वेद का ऋषि कहता है याज्ञवल्क्य हे ब्रह्मणे ब्रहा तुम मानो देखो, इसमें याज्ञिक बनना है तो तुम मानो देखो, ग्यारह होताओं के द्वारा याग करो, ग्यारह होता कौन से हैं तुम प्रत्येक इन्द्रियों को जानने का प्रयास करो, इन्द्रियों से, मानो देखो, जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार उद्बुद्ध होते हैं इन्द्रियों से मौन रहने से मुनिवरों! देखो, अन्तरिक्ष के जो चित्त में विद्यमान में

विद्यमान होने वाला जो व्रत है उससे आत्म बोध होता है और मुनिवरों! देखो, प्रत्येक इन्द्रियों को जानने वाला अपनी इच्छा से अपने को जानता है मेरे प्यारे! देखो, आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह क्या ऋषि-मुनियों का जो अपना कर्तव्य क्रियाकलाप रहा है, वह बड़ा विचित्र रहा है उस क्रियाकलाप को ले करके अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करें, तो यह वेद के ऋषि ने कहा कि ग्यारह होताओं के द्वारा। हे यज्ञदत! यदि यज्ञमान याग करना चाहता है तो आध्यात्मिकवाद में इन्द्रियों के ऊपर जय होना चाहिए और मन मानो देखो, उसका स्तम्भ है उसी से मानो देखो, वह व्रत रहना चाहिए और देवताओं के लोक में आत्मा विद्यमान है तू ब्रह्म हत्या न कर, यदि यहाँ मानो देखो, इन्द्रियों के स्वादन में आ करके तू ब्रह्महत्या करेगा तो तू एक समय परमपिता परमात्मा तेरे से इन्द्रियों को दूरी कर देगा और तू मानो देखो, उन इन्द्रियों से हीनता को प्राप्त हो जाएगा और जब तक देखो, नाना प्रकार की योनियों को प्राप्त करता रहेगा तो यह है बेटा! आज का वाक् आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि ग्यारह होताओं के द्वारा मानव को याग करना चाहिए और वह यागां भूतं ब्रह्मे देखो, मन और प्राण को एकाग्र करता हुआ इन्द्रियों पर जय करता हुआ तू इन्द्रियों पर जय करता हुआ तू इन्द्रियों को विजय करने का प्रयास कर यह है बेटा! आज का वाक् इन्द्रियों को विजय करना यह मेरा कर्तव्य है मानो तू अपनी प्रेरणा को जान करके प्रेरित हो करके अपने जीवन को उदबुद्ध करने का प्रयास कर यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। ओ३म् देवाः आभ्यां मनु गतं आपा म्।ओ३म् यश्शचां प्राची रथं गाया म्।ओ३म् तानु गृहिता मधु मां रेवां आभ्यां गता म्। ओ३म् हृदय श्वमा प्रा गायन्त्वा।

१६ नौ होता ०९-०१-१९९२

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगन गाते चले जा रहे थे ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वेदां भूतप्रमाणां ब्रह्वा कृत्ति क्योंकि ये जो यह वेदवाणी है यह मानव को प्रकाश में लाती है, और अन्धकार से दूरी करने वाली है इसीलिए हम प्रकाश को अपने में धारण करते रहें, और प्रकाश नाम ज्ञान का माना गया हैं जो मानो ज्ञान के प्रकाश में अपने जीवन में जागरूक रहता है वह मानव अपने में जागरूक रहता है जिसके द्वारा ज्ञान है यदि ज्ञान नही है तो मानव जागता नही और ज्ञागां ह्म ब्रह्मे मानो देखो, अपने में महान नही बनता, देवतव को प्राप्त होना बहुत अनिवार्य हैं। क्योंकि देवतव को प्राप्त होना ही मानो देखो, देवं ब्रह्मा देवताओं की सभा में वह सुशोभनीय होता है। जैसे ब्रह्मचारी मानो देखो, ब्रह्मचरी को अपना लेता हैं और वह ब्रह्मचारी जब ब्रह्मचरिष्यामि को अपनाता है तो वह देवताओं की सभा में सुशोभनीय हो जाता हैं और वह देवतव को प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार मेरी पुत्री जब वीरांगना बन करके मानो वह अपने आत्म ज्ञान के द्वारा रत्त हो करके गमन करती हैं और वह अपने में ज्ञान को जानती है उत्पन्न करती हुईं ज्ञान को मानो देखो, ज्ञानाति बना देती है तो मानो देखो, वह पुत्री देवतव को प्राप्त होती है। इसी प्रकार प्रत्येक मानव को जानना चाहिए क्या वह वेदां भूतं प्रकाशा इसीलिए हमें वेद रूपी प्रकाश को अपने अन्तःकरण का वह प्रकाश बना लेना चाहिए और प्रकाश ही मानव को मानवीयता में परिणत कर देता हैं और देवतव और प्रभु का दर्शन करा देता है।

तो विचार आता रहता है मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नही, केवल जो वेद का मन्त्र कहता हैं प्रकाशां भविते वर्णसुतं क्योंकि मानव को प्रकाश में जागरूक रहना चाहिए, जागरूक रहने वाला वही प्राणी है जो प्रकाश में रत्त रहता हैं प्रकाशां जातां ब्रह्वे याज्ञानं ब्रीहि व्रतं मानो देखो, वह जागता रहता है। आओ, मेरे प्यारे! मैंने तुम्हें कई काल में प्रगट करते हुए कहा था आज भी मुझे नाना वार्त्ताएं स्मरण आती रहती हैं जब इन वेदमन्त्रों का अध्ययन राजा करता हैं तो राष्ट्र भी अपने में जागरूक रहता है राजा को जागरूक रहना बहुत अनिवार्य हैं जैसा इससे पूर्व काल में मेरे पुत्र महानन्द जी, ने अपने विचार दिए थे और इनके विचारों यही था कि राजा को जागरूक रहना चाहिए मानो देखो, ब्रह्मज्ञानी जब जागरूक रहता हैं तो वह पुरोहितों के द्वारा अपना विचार-विनिमय करता हैं और वह जागरूक रह करके प्रत्येक इन्द्रिय को प्रकाश में लाने का प्रयास करता हैं तो वह ब्रह्मवेत्ता बन करके राष्ट्र का शासक बनता हैं। तो विचार आता रहता है कि याज्ञागं ब्रह्मा जैसा मैंने तुम्हें कई काल में कहा कि सुनीति नाम के राजा के हृदय में जब यह वेदमन्त्र स्मरण आते रहे, तो वेदमन्त्रों का जब उद्गीत गाते तो या जागां ब्रह्मा जागां प्रह्वा वृत देवस्त्वाम् मानो देखो, जागने के लिए बारम्बार वेद का मन्त्र हमें मानो उद्गीत गाता रहा हैं और यह उद्गीत गाता रहा है कि हे मानव! तू जागरूक बन और ब्रह्म के समीप चल। क्योंकि ब्रह्म के प्रकाश में जब तू चला जाएगा तो सदैव जागरूक रहेगा। तो मेरे प्यारे! देखो, जब राजा के समीप यह वाक् आया, वेदमन्त्र आए तो वह तपस्या में परिणत हो गये। मेरे प्यारे! देखो, जैसा हमारे यहाँ वेदां भूतं कई समय से बेटा! मैं महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में जो ब्रह्मचारियों को नैतिकता प्रदान की जाती है उनकी विवेचना प्रदान कर रहा हूँ अथवा उनकी चर्चाएं हो रही है और वह क्या। क्या चाहता विश्वामित्र ब्रह्मा राजा को अमृत ब्रह्मे क्योंकि राजा को अमृत पान करना हैं अमृत कहते हैं ज्ञान को, अमृत कहते है विवेक को और वह अमृत को पान करना है, जिससे हमारा जीवन एक महानता मे परिणत रहा हैं। मेरे पुत्रों! देखो, इस प्रकार राजा अमृतं राष्ट्रीय चर्चाएं भी प्रायः वैदिक

साहित्य मंय आती रही हैं परन्तु मैं याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में, जहाँ ब्रह्मचारियों को नैतिक शिक्षा का व्यवधान होता है, वह कहते हैं हे ब्रह्मचारी! हे यज्ञदता! तुम्हें याग करना है और यागां भविते ब्रह्मणा तुम याग में परिणत होना चाहते हो, तो मानो तुम विश्व के मित्र बन जाओ, जो याग करने वाला हैं वह विश्व का मित्र बन जाता हैं वह मानो देखो, यागां जब प्रत्येक इन्द्रिय को याग मे ही मानो देखो, होता आहुति बना करके उसको प्रदान कर देता हैं तो वह मानो देखो, उन द्वारों के ऊपर अपना संयम करता हुआ और वह मुनिवरों! देखो, विश्वामित्र की भांति नेत्रों से विश्व को सर्वत्र को मित्र की दृष्टि से दृष्टिपात करता हैं और जो मित्र की दृष्टि से दृष्टिपात करता है वह संसार का मित्र बन जाता है, जगत का मित्र बन जाता हैं और वह नेत्रों से मानो देखो, ध्वनियों को अपने में धारण करने लगता है।

तो विचार-विनिमय क्या, मुनिवरों! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है कि ब्रह्मचारियों! मानो देखो, यज्ञमान को याग करना है याग कैसे करें यह प्रसंग आ रहा है। तो याग मे ऋषि ने कहा है क्या उसे नौ द्वारों को नौ होताओं के द्वारा देखो, याग होना चाहिए। जैसे ग्यारह होताओं की चर्चाएं आई, मानो देखो, दस इन्द्रिय ग्यारवाँ मन इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, यह नौ द्वार है हमारे यहाँ नौ से गणना समाप्त हो जाती हैं जितनी गणना है संसार की शब्दं ब्रह्मा, वह नौ पर आ करके शान्त हो जाती हैं जैसा मुनिवरों! देखो, हमारे यहाँ नौ तथ्यं ब्रह्मा नौ गणना के अंक माने गएं हैं और नौ ही पदार्थ माने गएं हैं। मेरे पुत्रों! देखो, पंच महाभूत हैं काल और दिशा है आत्मा और मन है बेटा! यह नौ मानो देखो, नौ से ही संसार का व्यवधान प्रारम्भ होता हैं तो मुनिवरों! देखो, यह नौ स्तम्भ इस ब्रह्माण्ड के माने गएं हैं और नौ ही द्वार हमारे शरीर में माने गएं हैं मानो देखो, नौ द्वार दो नेत्रों के छिद्र हैं दो श्रोत्रों के छिद्र और दो घ्राण कि छिद्र हैं एक मुखारबिन्दु हैं और मुनिवरों! देखो, अमृतं ब्रहे कृतं एक उपस्थ और ग्रीह्वा मानो यह नौ द्वार हमारे यहाँ स्वीकार किए जाते हैं मेरे प्यारे! इन नौ द्वारों में नौ ही देवता विद्यमान रहते हैं कहीं मानो पृथ्वी देवता बन करके वह देवतव को प्राप्त करा रही हैं कहीं चन्द्रमा देवता बन करके अमृत को पान करा रहा हैं कहीं सूर्य देवता बन करके प्रकाश का व्यवधान कर रहा हैं कहीं मानो अग्नि देवता बन करके अग्नि में ज्योति का नृत्त कर रहा है। इसी प्रकार मेरे प्यारे! किसी पर विश्वामित्र विद्यमान हैं तो किसी पर कश्यप हैं किसी पर मानो गौतम है तो मानो किसी पर अत्रि हैं और किसी पर अत्रि है तो किसी द्वार पर ब्रह्मणे मुनिवरों! देखो, वशिष्ठ कहलाता हैं इसी प्रकार यहाँ नाना देवता इन्द्रियों के ऊपर विद्यमान है तो हमें वशिष्ठ भी बनना है और विश्वामित्र भी बनना हैं विश्वामित्र उसे कहते हैं जो अभिमान से रहित होता हैं विश्व का स्वामी बन जाता हैं वह नेत्रों में विद्यमान रहता हैं हमारे नेत्र जब विश्व को मित्र स्वीकार करते हैं हम संसार के मित्र बन जाते हैं विश्व के मित्र ब्रह्माण्ड के मित्र बन जाते हैं मेरे पुत्रों! देखो, इसी प्रकार एक कश्यप हैं कश्यप मुनिवरों! देखो, जब कश्पयां ब्रह्मे व्रतं कश्यप के पर्यायवाची शब्द बहुत हैं कश्यप नाम के ऋषि हुए हैं, कश्यप नाम का देखो, एक देवता है। जो मुनिवरों! देखो, वह एक मानो अमृतं वह एक श्रोत्र में एक नेत्र में विद्यमान रहता है। मानो देखो, एक नेत्र में विद्यमान होने वाला कश्यप है जिसके ऊपर मानव मुनिवरों! देखो, यह कल्पना करता रहा है कि कश्यप जब दैत्य और देवताओं ने इस समुद्र का मन्थन किया तो मानो उन्होंने मानो देखो, शेष नाग की नेति बनाई, शेष नाग की नेति बना करके दैत्य और देवता दोनों और उन्होंने मानो देखो, सुमेरू पर्वत का रहई बना करके मुनिवरों! देखो, उसको समुद्र को मथा और मथ करके मुनिवरों! देखो, उसमें से नाना प्रकार के रत्नों का जन्म हुआ मानो देखो, उसमे से निकासे गएं उसमें देवां भूतं ब्रह्मणा ब्रहा मेरे पुत्रां! देखो, वह अब्रहे ऐसा कहा जाता है कि देवता अमृतं देखो, देवता उसकी नेति बना करके ही और वह जहाँ नेति स्थिर थी, वह कश्यप कहा जाता है। वह कश्यप के ऊर्ध्वा भाग में मेरे प्यारे! देखो, सुमेरू पर्वत अपने में स्थित हो गया, दैत्य और देवताओं ने मन्थन किया तो मानो

देखो, यह तो एक अलंकार है। देखो, हमारे यहाँ कश्यप नाम मुनिवरों! देखो, श्रोत्रों को कहा गया हैं जब मुनिवरों! देखो, श्रोत्रों के द्वारा मन्थन किया जाता हैं तो मुनिवरों! देखो, कश्प्यां भावा प्रहे कश्पा वह कश्यपाः मानो देखो, अपने नेत्रों की ज्योति में इस संसार को निहारने लगता हैं और दैत्य और देवता मानो देखो, इसका सुमेरू पर्वत के द्वारा मन्थन करते है तो देव और असुर प्रवृत्ति दोनों ने और मन रूपी जो सुमेरू हैं मानो देखो, उसको वह मन्थन करते हैं और वह प्राणं ब्रह्मा देखो, शेष कहते हैं प्राणों को और वह प्राणों की नेति बना करके बेटा! जब मन का मन्थन किया जाता हैं तो मुनिवरों! देखो, इससे संसार में से, नाना प्रकार के रत्नों का जन्म होने लगता हैं और वह जन्मां भूतं ब्रह्मे जन्म ब्रह्मे कृतं मानो देखो, वह जन्म नाना प्रकार के रत्नों का जन्म होता हैं रत्नों में बेटा! देखो, बहुत से अवृत हैं, जिन पर विराजमान हो करके मानव अपने क्रियाकलापों पर तत्पर होता हैं कहीं मानो देखो, उतेश्वर उतेश्वर अश्व का नामोकरण आता हैं, कामधेनु गऊ का वर्णन भी आता हैं मेरे पुत्रों! देखो, इसी प्रकार कहीं मानो देखो, दण्डक का वर्णन आता हैं तो यह नाना प्रकार के जैसे हमारे यहाँ एक तरफ देखो, सुरा का भी उत्पन्न होता है एक अमृत का, वह इसी प्रकार मानो देखो, चौदह रत्नों का जन्म समुद्र को मन्थन करने से प्राप्त होता हैं तो मेरे प्यारे! देखो, जब इस मन रूपी समुद्र का मन्थन किया जाता हैं तो मन्थन करने के पश्चात मन्थनां भूतं ब्रह्मणा लोकां जब बेटा! इसका मन्थन किया जाता हैं दैत्य और देवताओं के द्वारा दैत्य और देवता कौन है एक मानव की देव प्रवृत्ति है एक असुर प्रवृति हैं दोनों प्रवृत्तियों से मानो देखो, मन का मन्थन मन रूपी सुमेरू का अब देखो, इसका मन्थन किया जाता हैं और वह कश्प्यां भूतं ब्रहे वह कश्यप के अर्णस में, परमात्मा का नाम कश्यप कहा गया है यहाँ प्रकरण से जब इसका मन्थन किया जाता हैं तो मन्थन करने से मुनिवरों! नाना प्रकार के रत्नों का जन्म होता हैं, उन रत्नों से देखो, बाह्य जगत मे तो राष्ट्र का और मानव समाज का मानो देखो, उसका निर्माण होता हैं जैसे देखो, गौ नाम के कई प्रकार के पर्यायवाची क्योंकि गो नाम कामधेनु कामं ब्रह्मे वर्णनं मानो देखो, कामधेनु गऊ जिसे कामधेनु कहा जाता हैं जो सर्वत्र कामनाओं की पूर्ति करने वाली धेनु हैं, वह धेनु नाम बेटा! देखो, बुद्धि को कहा गया हैं बुद्धि के द्वारा जब मन से उसका समन्वय होता हैं तो यह बुद्धि के द्वारा ही अपनी कामनाओं की पूर्ति करता हैं नाना प्रकार की कामना उसे कामं ब्रह्मे देखो, वह कामधेनु कही जाती है धेनु व्रताः मानो देखो, गो नाम धेनु का माना गया हैं अश्वं ब्रह्म नाम घोड़े का है अश्व नाम मानो देखो, अश्व उचेश्वर घोड़ा जब मानो देखो, ऊर्ध्वा में गमन करने वाला अप्रतं मानो देखो, उसको राष्ट्र कहते हैं राष्ट्र की प्रवृत्ति राष्ट्रीयता का जन्म होता है जिससे वह मानो देखो, उचेश्वर को अपना करके राष्ट्र को ऊँचा बनाता हैं मेरे प्यारे! देखो, इसी प्रकार हमारे यहाँ देखो, एक अग्रणं ब्रह्मा हमारे यहाँ बेटा! और भी जैसे कलश का वर्णन आता हैं कलश कहते हैं सुरा ब्रणा प्रह्वे जिससे मानो देखो, मद में परिणत हो करके और वह औषधियों का नृत्त बनता हैं औषध विज्ञान बेटा! देखो, अमृत को पान करने वाला वह भी कलश है जिसको बेटा! देखो, इन्द्र अपने आसन पर ले जाता है और देखो, इन्द्र के यहाँ से देखो, देवता प्रार्थना करके पुनः लाते हैं मेरे प्यारे! देवता उसे पान करते हैं वह कौन-सा इन्द्र हैं, वह परमात्मा रूपी जो इन्द्र हैं बेटा! देखो, इन्द्र नाम वायु को कहा गया है जिस इन्द्र के द्वारा ही मानो देखो, नाना प्रकार की विद्युत का जन्म होता हैं और विद्युत से वृष्टि प्रारम्भ होती हैं और वही वृष्टि मुनिवरों! देखो, पृथ्वी के लिए अमृत हैं वही अन्नाद को जन्म देने वाली हैं वही पृथ्वी की प्रतिभा में रत्त रह करके मानो देखो, यह पृथ्वी अप्रधा कहलाती है यह वसुन्धरा हैं और नाना प्रकार के देखो, द्रव्य को उत्पन्न करने वाली हैं यह अमृतमयी कहलाती हैं तो यह जिस अमृत को पान करने वाला पान करता है तो बेटा! अमृत ही अमृत दृष्टिपात आने लगता हैं तो विचार आता है बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा ब्रह्मचारियों! तुम्हें अमृत को प्राप्त करना है, अमृत को अपने में धारण करना हैं और अमृत को जान करके मानो देखो, अमृतमयी बनना है जैसे चन्द्रमा,

सोम की वृष्टि करता हैं जैसे सूर्य मानो ऊर्ज्वा देता है, कान्ति देता हैं और मानो देखो, वह वस्त्रा ब्रह्रे वनस्पतियों को परिपक्व बना देता हैं तो यह जो संसार रूपी समुद्र हैं इसको जानना बहुत अनिवार्य है। मैं विश्वामित्र की चर्चा कर रहा था महाराजा देखो, सुनीति नाम के जब राजा थे तो उन्होंने देखो, उन्होंने इसके ऊपर, नेत्रों के ऊपर अन्वेषण किया और यह विचारा कि यह नेत्र तो विश्व का मित्र जब तक मैं मित्र नही बनूंगा जब तक मैं मानो प्रत्येक को मैं मित्र की दृष्टि से दृष्टिपात न करूं। बेटा! उन्होंने नाना गायत्रियों का छन्द सहित मानो पठन-पाठन किया और पठन-पाठन करने से ही मेरे पुत्रों! देखो, मुझे स्मरण है उनकी तपस्या का जो कौतुक हैं वह इतना विचित्र माना गया हैं क्या मुनिवरों! देखो! वही तपस्यं ब्रह्मणा लोकां वाचन्नमं ब्रह्मे देवाः मेरे पुत्रों! देखो, वह देवता देव पुरी में रत्त हो जाते हैं तो विचार आता कि विश्वामित्र जब वशिष्ठ के द्वार जाते हैं तो वशिष्ठ मानो देखो, उनका अभिमान दृष्टिपात किया, उन्हें देखो, राजर्षि की उपाधि से अलंकृत किया। उसे अभिमान हो गया, क्या मैं राष्ट्र से तो आया हूँ पुनः राष्ट्र में इसने पुनः परिणत कर दिया हैं और देखो, उन्होने नाना प्रकार की यातना दण्डित देना प्रारम्भ किया, एक ब्रह्मचारी देखो, उनका मृत्यु दण्ड को दे दिया। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है जब पुनः तपस्या में परिणत हो गएं क्योंकि क्रोधाग्नि के जागरूक होने पर, इतना दण्ड देने पर, मानव के जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य समाप्त हो जाते हैं, वह पुण्य जब समाप्त हो गएं तो उन्होंने पुनः तपस्या करना प्रारम्भ किया, देखो, भंयकर वनों में चले गएं और भंयकर वनों में जा करके उन्होंने मन के ऊपर, जब मन का अध्ययन उन्होंने प्रारम्भ किया तो मन में वही तरंगें मानो देखो, उन्हें बाध्य करती रही कि मैंने क्रोध किया, मेरा पुण्यवान जीवन समाप्त हो गया हैं मैने मानो देखो, एक आश्रम में जा करके मैंने एक ब्रह्मचारी को दण्डित किया और मृत्यु दण्ड दिया जिससे मेरे अन्तःकरण मे जो पुण्यवान जो कर्म थे वह नष्ट हो गएं हैं अब मैं क्या करूं? मैं बड़े रूदन के पश्चाताप में परिणत हो गया हूँ और वह जब पश्चाताप करने लगे तो बेटा! उन्होंने वायु का सेवन किया, वायु का सेवन करने से परमाणुवाद मानो पुनः से उत्पन्न होने लगे, गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करते हुए वह मन बेटा! देखो, उनका स्थिर हो गया, तो विचार आया क्या, मन जो स्थिर जब भी होगा तो मन जब स्थिर होगा तो अन्न के द्वारा स्थिर होगा, यदि अन्न हमारा पवित्र हैं अन्न में पवित्रता अन्न में मानो देखो, किसी प्रकार का दोषारोपण नही है तो मन मुनिवरों! देखो, स्थिर हो जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था, जब मानो देखो, सुनीति नाम के राजा जब तपस्या में परिणत हो गये, तो उन्होंने छः-छः माह तक वायु का सेवन किया, छः-छः माह तक उन्होंने देखो, जल का सेवन किया और जल के सेवन के पश्चात कुछ अन्न का भी पान किया मानो देखो, अन्न का जो परमाणु देखो, वह वायु मण्डल मे स्थिर होते है। तो मन मुनिवरों! देखो, स्थिर हो करके प्राण के द्वार पर जाता हैं वह कहीं तो प्राण से मन को स्थिर किया जाता हैं परन्तु मन प्राण के द्वारा जाता हैं जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा से पीड़ित हो रहा हैं और वह माता के द्वार पर जाता है और माता उसे लोरियों का पान करा करके उसे शान्त कर देती हैं इसी प्रकार मेरे पुत्रों! देखो, वह मन प्राण के द्वारा जाता हैं और प्राण से कहता है कि हे सखा! मुझे तू अपनी लोरियों का पान करा हे प्राणेश्वर! तू संसार को अपने में धारण कर लेता है, तू सूत्र बना हुआ हैं हे प्राणेश्वर! परमात्मा का नाम भी प्राणेश्वर है। मानो देखो, जो इस ब्रह्माण्ड का सूत्र बना हुआ हैं मानो देखो, यह मन जब उसके द्वार पर जाता है तो बुद्धियुक्त हो करके मेधावी प्रज्ञावी और वह अव्रत बन करके देखो, वह ऋतम्भरा बन करके मानो देखो, वह प्राण सूत्र के द्वार पर जाता हैं प्राण सूत्र अपना इसे मनका बना लेता है उसे अपने में धारण कर लेता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, मन जब भी स्थिर होगा उसके मूल में जाना होगा, हमारे ऋषि-मुनि जब भी तपस्या में परिणत हुए हैं उन्होंने बेटा! देखो, मन से राष्ट्र का क्रियाकलाप किया और जब तपस्या की इच्छा आयी, तो राष्ट्र

को त्याग करके भंयकर वन में चले गये, और जा करके वहाँ तपस्या में परिणत हो गएं तपस्या किसे कहते हैं? तपस्या कहते हैं अन्न को पवित्र बनाना, अन्न को जिसे हम पान करना चाहे, जिससे मन स्थिर होगा उसको हमें शोधन करके मानो उसे पान करना होगा और पान करके ही मुनिवरों! देखो, मुझे स्मरण आता रहता हैं भगवान राम का जीवन जब लंका को विजय करने के पश्चात जब अयोध्या में उनका प्रवेश हुआ उन्होंने यह कहा था कि मैं अपने जीवन को बारह वर्ष तक तपस्या का जीवन व्यतीत करूंगा उसके पश्चात मैं कोई राष्ट्रीयता को अपनाना, क्योंकि मेरे अन्तर्हृदय में रजोगुण, तमोगुण छा गएं हैं, उससे मैंने संग्राम किया हैं, मनुष्यों का हनन किया है तो मुझे स्मरण है बेटा! राम भयंकर वनों में जा करके वह अपने में वायु का सेवन और देखो, वह वनस्पतियों का सेवन करते रहे, अन्नाद का सेवन करके, बारह वर्ष के पश्चात बुद्धि पवित्र बन गई, अनुष्ठान किए जाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, उस समय देखो, राष्ट्र को उन्होंने अपनाया, क्योंकि राष्ट्र जब भी ऊँचा बनता है इन्द्रियों की जय और ब्रह्म ज्ञान और मानो देखो, तपस्वी ही इस राष्ट्र को ऊँचा बना सकते हैं तो विचार आता है बेटा! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह क्या विश्वामित्र मुनिवरों! देखो, पुनः जब तपस्या करने लगे, तो उन्होंने मुनिवरों! देखो, वायु का सेवन किया, कहीं वनस्पतियों का सेवन तो वह पुण्यवान जीवन पुनः से उत्पन्न हो गया। जब पुनः से उत्पन्न हो गया तो बेटा! वहाँ से वह करोड़ो छन्दों का गायत्रणियों का वह पठन-पाठन करते हुए अनुष्ठान युक्त हो करके बेटा! पुनः विश्वामित्र के आश्रम को गमन करते हैं, अस्त्रों-शस्त्रों से युक्त हो करके अश्व पर अश्ववत हो करे जब विश्वामित्र के द्वार पर पंहुचे तो विश्वामित्र ब्रह्मे वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पर पंहुचे तो वशिष्ठ ने कहा आईए राजर्षि! राजर्षि उच्चारण करते ही उसके हृदय में पुनः अग्नि जागरूक हो गई और द्वेषाग्नि और उन्होंने कहा कि इस ब्राह्मण को मैं यह अपने को ब्रह्मवेत्ता स्वीकार करता है इसको मृत्युदण्ड दूंगा, इसे आज मृत्यु को पंहुचाऊंगा। मेरे प्यारे! देखो, वह एक वाटिका में निहित विद्यमान हो गएं और विद्यमान हो करके मुनिवरों! देखो, वह चन्द्रमा पूर्णिमा का दिवस था, और वह वाटिका में देखो, मृत्यु के लिए स्थिर है और माता अरूणधती और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में चर्चा कर रहे है उन्होंने कहा माता अरूणधती बोली कि-प्रभु! यह जो चन्द्रमा है यह सोम की वृष्टि करने वाला हैं उन्होंने कहा हाँ देवी! यह सोम की वृष्टि करता है। उन्होंने कहा सोम किसे कहते हैं। उन्होंने कहा सोम कहते हैं वनस्पतियो के रस को वनस्पतियों का रस किसे कहते है। मानो देखो, जिसको पान किया जाता है, जिससे बुद्धि पवित्र बनती हैं, प्रकाश में आया जाता है। इसीलिए चन्द्रमा अपनी कान्तियों से युक्त हो करके प्रकाशित हो रहा हैं उन्होंने कहा-प्रभु! देखो, यह अमृत मम् ब्रहे और यह चन्द्रमा का प्रकाश बड़ा अद्वितीय कहलाता हैं तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा-देवी! यह कोई प्रकाश नही आज देखो, जो मानव का प्रकाश हैं जो विश्वामित्र की तपस्या का प्रकाश है वह इतना अद्वितीय प्रकाश है कि ऐसे-ऐसे सहस्रों चन्द्रमा भी उसके प्रकाश को मानो देखो, तपस्या से, चन्द्रमा के प्रकाश को आच्छादित नही कर सकते। मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् जब उन्होंने कहा-माता अरूणधती बोली प्रभु! आपको वह विश्वामित्र ने आपके शिष्य को ब्रह्मचारी को मृत्यु दण्ड दिया हैं आपको भी दण्डित करने के लिए सदैव तत्पर रहता हैं अशुद्ध वाक् उच्चारण करता हैं उसकी आप प्रशंसा कर रहे हैं उन्होंने कहा-देवी! मैं गुणों की प्रशंसा कर रहा हूँ, मैं अवगुणों की प्रशंसा नही कर रहा हूँ जो उसमें अवगुण है मैं उसे उच्चारण करता रहता हूँ। अवगुणों के रूप में और जो गुणाधानम हैं मैं गुणों का वर्णन कर रहा हूँ उनकी तपस्या वास्तव में उनका अनुष्ठान बड़ा अद्वितीय माना जाता हैं मेरे प्यारे! देखो, वह जो वाटिका में शान्त मृत्यु दण्ड देने के लिए विश्वामित्र स्थित थे, उन्होंने विचारा कि तुम तो बड़े धूर्त हों तुम तो पामर हो जब पामर अपने को धिक्कारने लगा, तो नम्रता का अश्रु आने लगा। मेरे पुत्रों! देखो, मुझे स्मरण है क्या महाराज विश्वामित्र जो विश्व का मित्र बनने के लिए चले, तो बेटा! वह वशिष्ठ के चरणों में ओत-प्रोत हो गएं और वह मानो देखो, अश्रुपात होते रहें,

अश्रुपात जब होते रहे तो उन्होंने जब चरणों में ओत-प्रोत हो गएं तो उन्होंने कहा आओ, ब्रह्मर्षि! मेरे हृदय से आलिंगन हो जाओ। मेरे प्यारे! देखो, उस समय उन्होंने ब्रह्मर्षि की उपाधि से अलंकृत किया और यह कहा कि तुम ब्रह्मर्षि हो और ब्रह्मर्षि मानो देखो, उसे कहते हैं जिसमें नम्रता का अश्रु होता हैं जो मानो देखो, प्रीति का अश्रु होता है, देखो, अभिमान की मृत्यु अभिमान की ही तो मृत्यु होती हैं शरीराणाम् भवित्प्रह्वा यह शरीर तो मानो भोगने का एक यन्त्र है और यह भोगता रहता हैं परन्तु देखो, वह जो अमृतां अभिमानं ब्रहे यह जो अभिमान है मानव को मृत्यु में प्रविष्ट कर देता हैं तो विचार आता रहता है बेटा! विश्वामित्र ब्रह्मा जब उन्होंने राजर्षि न कह करके ब्रह्मर्षि कहा तो उन्होंने कहा तुम नम्र बन गएं हो और नम्र ही क्योंकि परमात्मा नम्र है इसीलिए परमात्मा संसार को धारण कर रहा हैं आचार्य जब नम्र है तो वह ज्ञान के द्यौतक होते हैं इसीलिए वह मानो देखो, आचार्यतव को प्राप्त होते हैं जब ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म और चरी को दोनों को जानते रहते हैं वह ब्रह्मचारी कहलाते हैं परमात्मा की प्रतिभा में रत्त हो जाते हैं तो इसी प्रकार हमें नम्र होना चाहिए क्योंकि नम्रता में जीवन है और अभिमान में मृत्यु हैं इसीलिए अभिमानी की मृत्यु हो जाती हैं और मृतं ब्रह्मे देखो, मृत्यु उसे कहते हैं मृत्यु शरीर को त्यागने का नाम नही हैं मानो वह शरीर का सूचक नही है, मृत्यु कहते हैं मानो देखो, उसका मस्तिष्क अभिमान में नीचे गिर जाता हैं, अभिमान में मस्तिष्क में देखो, वृत्ति आ जाती हैं और वह अपने अभिमान से नही रह पाता तो इसीलिए अभिमान को त्यागना चाहिए और अभिमान न रहना ही जीवन है और देखो, अभिमान ब्रह्मा देखो, अभिमान का रहना ही मृत्यु है। मेरे प्यारे! देखो, वह नम्र हो करके ऋषि के चरणों में ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए वह सदैव क्योंकि ब्रह्मवेत्ता तो थे, परन्तु केवल नम्रता नही थी, यह नम्रता थी वह माता अरूणधती के चरणों में ओत-प्रोत हो गएं माता अरूणधती बोली कि तुम अपने में महान बनो विश्वामित्र ने बेटा! देखो, जब विश्व को अपने में मित्र बनाने की चेष्टा की तो वह संसार के मित्र बन गये। तो इसीलिए वेद का मन्त्र और ऋषि कहता हैं महर्षि याज्ञाल्क्य कहते हैं ब्रह्मचारियों से हे ब्रह्मचारियों! देखो, तुम याग करना चाहते हो, तुम्हारे नौ द्वारों पर नौ देवता विद्यमान हैं, उनकी पूजा करो और देवतव प्राप्त हो जाएं मेरे श्रोत्रों में, मेरे घ्राण में मानो सर्वत्र देखो, देवतव प्राप्त हो जाएं और प्रत्येक इन्द्रियां में जीवन जब आता हैं द्वारों पर देवतव जब आता है जब उस द्वार को हम जान लेते हैं, कि इस द्वार में क्या-क्या विशेषताएं है जैसे नेत्रों में विश्वामित्र बनने की मानो, हमें एक प्रेरणा प्राप्त होती रहती हैं, घ्राण में सुगन्धिवान बनने की हम मानो देखो, प्रत्येक मानव की जीवन में, सुगन्धियों को धारण करते रहें, दुर्गन्धता को वहीं हम त्यागते रहें। तो आओ, इसी प्रकार नेत्रों में और श्रोत्रों में मानो श्रवण करने की शक्ति विशाल बनी रहे वह द्वार है, उसके ऊपर देवता विद्यमान हैं जहाँ श्रवण किया जाता है श्रवणां देखो, वह ध्वनि से, ध्वनि का मिलान होता रहता हैं वह अनेक रूप में ध्वनियों को वास्तव में भी देखो, परमाणुओं का संघर्ष होता रहता हैं जो ध्वनि जो अपना लेता है अपने में अपनी ध्वनि को धारण करता है वह ध्वनिवान बन जाता हैं तो इन द्वारों को जानना है बेटा! मुखारबिन्दु में मानो देखो, एक अत्रि रहता है देखो, जो अति आहार कर जाता है। अति आहार का अभिप्रायः यह है क्या जो मुनिवरों! देखो, संसार को संसार की ब्रह्माण्ड की वार्त्ता को सबको सबको जान लेता है, वह अत्री, अति खाने वाला उसको अत्रि कहते हैं जो मानो देखो, वह नाना प्रकार के अशुद्ध पदार्थों को भी निगल जाता हो, और शुभ पदार्थों को निगलने वाले को भौतिक रूप में अत्रि कहते हैं परन्तु आध्यात्मिकवाद में इसी को मुनिवरों! देखो, अत्रि इसीलिए कहा जाता है। कि अति संसार की प्रत्येक वस्तु को अपने में धारण करता है, और मुखारबिन्दु से उच्चारण करता है, बुद्धियुक्त हो करके, मन युक्त हो करके यह प्रकृति के सर्वत्र अंगों को जान करके इसका बखान करता है इसे इसीलिए अत्रि कहते है जैसे आहार करता है यह ऐसे ही मानो देखो, उद्गीत गाता हैं तो अत्रीं ब्रह्मा वर्णस्तं मेरे पुत्रों! देखो, इसी प्रकार यह ऋषिवर प्रत्येक द्वार पर विद्यमान हैं उपस्थ में

मानो देखो, चन्द्रमा का वास रहता हैं और चन्द्रमा ही मानो देखो, रेतस् को धारण करता है, माता के गर्भस्थल में रेतस् को धारण करने वाला देवता और नक्षत्र के आधार पर मानो देखो, रेतस बन करके पुत्रवान बनता हैं, मेरी प्यारी माता पुत्रवान बनती हैं तमोगुण को रजोगुण को सतोगुण मे परिणत करती हुई अपने में सूत्र बन्धन कर देती है, इसी प्रकार मेरे पुत्रों! रेतस यह वनस्पतियों का रस चन्द्रमा हैं और यही रेतस के रूप में देखो, पुत्रवान बन करके जगत में प्रवेश हो जाता है।

तो विचार आता है मेरे प्यारे! देखो, वह अमृतं पृथ्वी देवतां ब्रह्मणा यह पृथ्वी देवता हैं जो पृथ्वी को जान लेता हैं वह घ्राण इन्द्रियों को जान लेता हैं जब प्राण आता रहता है देवां भूतं देवत्वां ब्रह्मणे वाचा देवता अपने को धारण करके हम इस सागर से पार होने का प्रयास करना चाहिए। मेरे पुत्रों! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों से कहा हे यज्ञदता! यदि तुम्हें याग करना है तो प्रत्येक इन्द्रियों को देवता और उसके मानो द्वारों को जान करके ऋषियों को जान करके तुम्हें देवतव को धारण करना है विजय बनना हैं और अपने अपने में मानो धारयामि बन करके सागर से पार होना है। मेरे प्यारे! देखो, वह यज्ञदत बड़े प्रसन्न हुए और यज्ञदत ने कहा धन्य है प्रभु! आपने हमारे हृदय में प्रकाश कर दिया है अब हम प्रकाशमान बन गएं हैं मानो आपने यज्ञमान बनने के लिए हमें बाध्य कर दिया है और यज्ञमान वही होता हैं जो मानो शरीर रूपी यज्ञशाला को जान लेता हैं यह ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना करने वाले ऋषि-मुनियों ने इसके ऊपर बड़ा अध्ययन किया है, वेदमन्त्रों में इसका वर्णन आता रहता है, उसी को उन्होंने अपने शरीर में लाने का प्रयास किया। आज मैं बेटा! तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ केवल विचार-विनिमय क्या, क्या मुनिवरों! देखो, हमे विश्व का मित्र बनना हैं हम मित्र जब ही बनेंगें जब संसार को अपना मित्र स्वीकार करेंगें तो संसार के हम भी स्वतः मित्र बन जाएंगें यदि हम मानो देखो, संसार को जान करके अपने को घ्राण इन्द्रियों को जान करके श्रोत्रों को जान करके हम देवतव को प्राप्त हो जाएंगें, देवता संसार को जाने तो हम भी देवतापने को अपने में धारयामि बन सकते हैं, संसार देवता स्वीकार करेगा। तो आओ, मेरे प्यारे! विचार-विनिमय क्या देखो, विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नही आया हूँ विचार-विनिमय हमारा यह कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा को जानते हुए इस सागर से पार होने का प्रयास करें, यह जो यज्ञशाला रूपी जो प्रकाश की मानो देखो, शाला है यह मानो देखो, समुद्र के तुल्य कहलाती है संसार रूपी समुद्र हैं और इस परमात्मा की यज्ञशाला को जान करके हमें सागर से पार होना है बेटा! तो आओ, मेरे प्यारे! देखो, आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है, कि परमपिता परमात्मा की महिमा को जानना और देखो, ऊर्ध्वा में गमन करना और हमें प्रत्येक इन्द्रियों के ऊपर जय होना, यह हमारा कर्तव्य है आज का वाक् यह बेटा! सम्पन्न होने जा रहा हैं आज के विचारों का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा को जान करके, जानेंगें जब नम्रता हमारे अन्तर्हृदयों में हो जाएगी, क्योंकि परमात्मा नम्र हैं इसीलिए मानव को नम्र होना है, मानो देखो, माता नम्र है पुत्र को भी नम्र होना होगा मेरे प्यारे! देखो, सर्वत्र जगत एक नम्रता में ही अपनी-अपनी उपाधियों से अलंकृत होता रहा है, तो विश्वामित्र ने उसको अलंकृत किया और अलंकृता पा करके मुनिवरों! देखो, वशिष्ठ के चरणों की वन्दना की और वन्दनं ब्रह्मा वर्णनं हे ब्रह्मचारियों! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ में परिणत हो जाओ, तो बेटा! देखो, यज्ञं ब्रह्मा याग अपने में बड़ा पूर्णतव को प्राप्त होता रहा है, इसके ऊपर ऋषि-मुनियों ने बड़ा अध्ययन किया है और अध्ययन करके उसको सार्वभौम रूप दे करके बेटा! प्रत्येक मानव अपने में जो भी क्रियाकलाप कर रहा है, सुक्रियाकलाप है वह सब याग के रूप में परिणत होता रहा है, यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट कर सकूंगा, आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह क्या, हम पर्यायवाची शब्दों को और अलंकारों को, आलांकारिक रूप से विचारें, तो हमारा

साहित्य हमारे ज्ञान की रक्षा हो सकेगी और यदि हम देखो, अंलकार को अलंकार नही जानेंगें और उसको साहित्य ले लेंगें, तो न साहित्य रह सकेगा, न अलंकार ही रह सकेगा, अलंकार को अलंकृत किया जाएं साहित्य को साहित्य मे प्रवेश किया जाएं तो हम देखो, विद्या की रक्षा कर सकते हैं और बुद्धिमान बन करके परमात्मा के चरणों की परमात्मा के आँगन में जाने के लिए सदैव हम तत्पर रहेंगें तो यह आज का वाक् अब सम्पन्न होने जा रहा हैं, समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें।

याग मंजूषा पृष्ठ १२० से १३३

१७ होता १०-०१-१९९२

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ यह जो पाठयक्रम है यह परम्परागतों से ही, मानवीय मस्तिष्कों में समाहित रहा है और यह नाना प्रकार के उसके पठन-पाठन का वर्णन किया जाता हैं जैसे हमारे यहाँ माला पाठ में जब गान रूप में जब वेदमन्त्रों का उद्गीत गाता हैं तो वह यज्ञशाला में जो उद्गीत गा रहा हैं वह महानता का वर्णन कर रहा हैं क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है, याग उसका आयतन है, उसका गृह है उसका सदन हैं और वह उसी में वास कर रहा है। तो इसीलिए हम परमपिता परमात्मा को यज्ञोमयी मानो वर्णित किया जाता हैं और यह कहा करते है कि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी है और याग में वह रत्त रहने वाला है। तो आज कहीं से मुझे यह प्रेरणा प्राप्त हो रही है, कि मैं याग के ऊपर अपने दो शब्द अपने उद्गीत रूप में गान करने का प्रयास करूं, तो आज का हमारा वेदमन्त्र नाना प्रकार के यागों का वर्णन करता रहा हैं। हमारें यहाँ देखो, जहाँ अश्वमेध यागों का प्रायः वर्णन आता रहता है, वही अजामेध याग का वर्णन है वही हमारे यहाँ देखो, वाजपेयी और अग्निष्टोम यागों का भी वर्णन किया जाता है। आज मैं उन यागों के सम्बन्ध में, विशेष विवेचना न देता हुआ केवल यह कि हम मुनिवरों! देखो, परमपिता परमात्मा का, रचाया हुआ, यह एक अनुपम यज्ञशाला हैं यह जो ब्रह्माण्ड है यह एक प्रकार की यज्ञशाला है इसमें एक मानो एक प्राणी, प्राणी का सहायक बना हुआ हैं एक लोक, लोक का सहायक बना हुआ हैं और वह मानो देखो, एक दूसरे के सहयतार्थ वह याग कर रहा है क्योंकि शक्ति प्रदान करने का नाम ही मुनिवरों! देखो, याग माना गया हैं। यह जो याग हैं जब हम अग्नि में नाना प्रकार का साकल्य प्रदान करते हैं, और देवतवां ब्रह्मणां देवताओं का जो मुख है वह अग्नि है, मानो देखो, वह अग्नि के मुख को सहायक बनाते हैं और वह उसके मुखारबिन्दु में साकल्य प्रदान करते हैं, भोज्य देते हैं, और वही भोज्य संसार की मुनिवरों! देखो, एक-एक परमाणु में समाहित हो जाता हैं वह अपने में परमाणु रूप बन जाता हैं जैसे परमपिता परमात्मा का यह जो अनुपम जगत हैं यह जो ब्राह्मण्ड है एक प्रकार की यज्ञशाला हैं और उस यज्ञशाला में बेटा! वे परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा हैं और आत्मा उसका यज्ञमान हैं देखो, जब ब्रह्मा परमपिता परमात्मा है, आत्मा यज्ञमान हैं, तो यह जो पंचीकरण है इनमें कोई उद्गाता हैं, कोई अध्वर्यु है, कोई मानो देखो, पुरोहित बन करके वह याग हो रहा हैं।

मेरे पुत्रों! देखो, याग के चार प्रकार के बन्धन माने जाते हैं। सबसे प्रथम वह ब्रह्मा का बन्धन हैं जो वे परमपिता परमात्मा संसार का रचयिता है, निर्माणवेत्ता है। और द्वितीय आत्मा है जो उस मानो निर्माणवेत्ता के क्रियाकलाप को वह आत्मा अपने में उपभोग करता हैं, अपने में धारण करता है अथवा वह नाना प्रकार के रूपों में दृष्टिपात आता हैं। यह आत्मा बेटा! यज्ञमान है क्योंकि आत्मा ही तो बेटा! मैंने पूर्व काल में कहा था आत्मा ही तो पंच महाभूतां का नृत्त करने वाला है, वही तो मानो देखो, उससे चरू ले करके और वह अग्नि के मुखारबिन्दु में उसे मानो परिणत कर देता हैं वह अग्नि वह अग्नि नही है जो प्रदीप्त अग्नि हैं वह ब्रह्मग्नि कहलाती हैं और ब्रह्माग्नि उसे कहते हैं जिसे ब्रह्म का वास करता है। अथवा ब्रह्म का जो उपदेश है ज्ञान है वह ब्रह्माग्नि है मुनिवरों! देखो, जो वाणी को उद्गीत गाया जाता हैं, सूक्ष्म रूपों में रत्त रहने वाला है।

तो विचार आता है कि वे परमपिता परमात्मा ब्रह्मा है, इस संसार रूपी यज्ञशाला का वह दृष्टा है अथवा वह इसका धिपति है, धारण करने वाला है, श्रृंगार करता हैं और इसको मुनिवरों! देखो, वह अपने में धारण करने वाला है, तो विचार आता है कि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप हैं याग मानो उसका आयतन है वे परमपिता परमात्मा याग रूपी गृह में प्रवेश करता रहता हैं जैसे एक गृह स्वामी है और गृह स्वामिनी मानो देखो,

अपने गृह में प्रवेश करते हैं इसी प्रकार यहाँ आत्म ब्रह्मे यह जो परमपिता परमात्मा है यह संसार रूपी जो यज्ञशाला है अथवा उसका जो गृह हैं वह उसी में वास करता रहता है उस गृह को संचालन करने वाला है। तो मेरे प्यारे! देखो, यही उसका आयतन है। आयतन का अभिप्रायः यह कि आयातानं भूतं ब्रहे आयतना जगति, वेद का वाक् कहता है कि परमपिता परमात्मा का यज्ञ ही तो आयतन है इसी को तो वह गति देता हैं और याग ही इस संसार को मेरे प्यारे! महानता की वेदी पर ले जाता है। क्योंकि एक दूसरा मानव एक दूसरें मे रत्त हो रहा हैं वे परमपिता परमात्मा मानो देखो, वह आयतन बना करके इसमें वास करता है इसमें प्रतिष्ठित रहता है तो हम उस परमपिता परमात्मा का मानो यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला हैं और यज्ञ ही मानो उस परमपिता परमात्मा का आयतन हैं, वही गृह है उसी में वह वास करता रहता हैं। तो मेरे प्यारे! आत्मा इस यज्ञशाला का यज्ञमान हैं और वह यज्ञमान बन करके आत्मा मेरे प्यारे! स्वाहा करके हूत कर रहा हैं और वह मुनिवरों! देखो, आत्मा जब पंच महाभूतों के लोक में विद्यमान होता है तो वह अपने में सुक्रियाकलाप करता रहता हैं यही प्रजापति बनता हैं यही इन्द्र रूप में परिणत हो जाता हैं। यही विष्णु के रूप में याग में परिणत हो जाता है। मेरे पुत्रों! देखो, वह जो आत्मा यज्ञमान बन करके वह हूत कर रहा हैं परमात्मा के भव्य याग में देखो, अपने जीवन को जागरूक कर रहा है वह उदबुद्ध कहता हुआ अग्नि को चेता रहा हैं ज्ञान रूपी ब्रह्माग्नि जो प्रदीप्त हो रही है उस अग्नि को जागरूक करता है अपने में महान बना रहा हैं तो आत्मा यज्ञमान है, परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा है। और मुनिवरों! देखो, इसी का अग्निता बन करके अप्रतं ब्रह्मा वर्णो सुतं मानो देखो, वह देखो, इन पंच महाभूतां में कोई उद्गाता हैं उद्गीत गाने वाला मानो प्राणों के सहित एक वायु है जो मानो देखो, इस ब्राह्मण्ड रूपी यज्ञशाला में उद्गीत गाया जाता हैं वह गान गाता हुआ परमाणुओं का आदान प्रदान करता रहता हैं अग्नि देखो, यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हैं और अग्नि प्रदीप्त होते बेटा! देखो, वही अग्नि अमृतं देखो, वायु आती है उन परमाणुओं को अपने मे धारण करती हैं और अपने में ले जा करके उद्गीत गाती हैं परमाणुओं से उसका उद्गीत चलता रहता है। इसी प्रकार आपां ब्रह्मे व्रतं देवाः यह जो आपो हैं यही मानो देखो, अमृत में समाहित हो करके यह चन्द्रमा जैसे मानो देखो, लोकों में शीतलता प्रदान करता हैं और इसी का समन्वय मानो समुद्रों से अकृतियों से आपो में रमण करने वाला, इससे आपो को हमारे यहाँ ज्योतिवान कहा जाता है।

तो आओ, मेरे पुत्रों! देखो, वेद का ऋषि क्या कहता है उद्गीतां उद्गम मं ब्रह्मा व्रत्यं यह मानो देखो, अध्वर्यु ब्रहे यह मानो देखो, यह जो अध्वर्यु है यह पृथ्वीतव माना गया हैं इसमें नाना प्रकार के पदार्थ हैं, वनस्पतियां परिपक्व हो रही है नाना प्रकार का खाद्य और खनिज नाना पिपादों में परिवर्तित हो रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वही तो अध्वर्यु है हमारे वैदिक साहित्य में जैसे देखो, यह अध्वर्यु इसी प्रकार राजा का नाम भी अध्वर्यु कहलाता हैं यह प्रजा का मानो देखो, स्वामीतव करने वाला है, तो राजा देखो, अध्वर्यु इसीलिए अध्वर्यु कहते है जो मानो देखो, अपने राष्ट्र को, अपने में धारण करता है उसकी व्यवस्था बनाता हैं उसको ओजस बनाता हैं और प्राणी मात्र को मानो शिक्षा दे करके मानो उद्गीतता में परिणत करता है। तो विचार आता रहता है बेटा! देखो, वह उद्गाता कौन हैं उद्गीत गाने वाला मानो देखो, वायु हैं अग्नं ब्रह्मा वर्णासुतं देवत्प्रहाः मेरे प्यारे! देखो, यह तो अध्वर्यु बन करके देखो, वह द्रव्यों का स्वामी हैं और वह पृथ्वी तक के रूप गुरूतव के रूप में विद्यमान रहती हैं जिससे बेटा! देखो, वह यागों में साकल्य बन करके वह स्वाहा कह करके मानो देखो, प्राणों को प्रदान कर देता है और प्राण अपने में प्राणेश्वर बन करके भोगतव्य में लाते हैं। तो विचार आता है मेरे प्यारे! मैं कई समय से तुम्हें यागों की चर्चा कर रहा हूँ विचारों में मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्य मुनि महाराज के विद्यालय में प्रवेश हो करके वह याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारियों को शिक्षा दे रहे हैं कहीं गो मेध याग हो रहा है, गो मेध याग का अभिप्रायः यह जो राजा

करता है। गो पशु को कहते हैं और पशु नाम मेरे प्यारे! देखो, अमृतं वह पशु का राजा, रक्षार्थी बनता हैं और मुनिवरों! देखो, पशु नाम ब्रह्मचारी को कहा जाता है देखो, वह वेदं ब्रह्मा आचारसुति देवत्वां गो मेधा वह गो से मेधा बना देता हैं मेधावी में प्रवेश करता है वह ब्रह्मचारी है जिसको आचार्य बेटा! देखो, गो कहते हैं अन्धकार को, अन्धकारं ब्रह्मे मानो देखो, गो मेधा मेध कहते हैं प्रकाश को, जो प्रकाश मे जा करके उसे त्याग देता है उसे कहता है प्रकाशां ब्रह्मचारी सुत हे ब्रह्मचारी! तुम प्रकाशक बनो परन्तु वह देखो, गो मेध याग कहलाता है। हमारे यहाँ गो नाम इन्द्रियों को कहा जाता है जो, इन्द्रियों का ज्ञान कराता हैं और गो मेध जो पशु को मानो देखो, अपनी संरक्षणता मे राजा अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाता है तो उसको गो मेध याग कहते हैं। गो मेधां ब्रह्मं ब्रह्मे गत्वां मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता हैं जब गऊओं की देखो, गो याग करता हैं मुझे भगवान कृष्ण का जीवन प्रायः स्मरण आता रहता हैं, जब भगवान कृष्ण बेटा! देखो, अपनी स्वर ध्वनि से गऊओं को पुकाराते रहते थे तो गऊ अपने स्थानो पर स्थिर हो जाती और वह मानो देखो, उसे गऊओं को दुग्ध को पान करने वाला प्राणी अमृत को पान करता है उसकी बुद्धि प्रखर और महान बन जाती हैं। विचार आता है उसके देखो, मनं ब्रह्मा वह मन भी पवित्रता की वेदी पर रत्त हो जाता है तो विचार आता रहता है बेटा! हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा का यह जो भव्य संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया हैं, यज्ञशाला अपने मे यज्ञमयी परिणत हो रही हैं आज हम देखो, उस यज्ञशाला को विचारने वाले बनें आज के हमारे वेदमन्त्रों में कई समयों में देखो, यागों का वर्णन आ रहा था। याग अपने में बड़ा विचित्रतव विष्णु कहलाता है। हे मेरे प्यारे! देखो, तरंगों वाला हैं और वही याग हैं जो मुनिवरों! देखो, आत्मा को उन्नत बनाता हैं, वह मानव के जीवन में एक मानव सत्यवादी हैं, वह सत्य उच्चारण कर रहा है तो सत्य मे याग कर रहा हैं एक मानो देखो, नेत्रों से सुदृष्टिपान करता हैं वह भी याग कर रहा है एक मानो देखो, घ्राण से सुगन्ध ले करके उसका उपयोग करता है, वह भी याग कर रहा हैं एक मानो देखो, मेरे प्यारे! अपनी प्रत्येक इन्द्रियों को संयम में लाता है तो वह गो मेध याग कर रहा हैं यागां भविते ब्रह्मणा व्रतं देवा देखो, अपने याग को सम्पन्नता से मार्ग पर ले जाना उसका कर्तव्य कहलाता है।

तो आओ, मेरे प्यारे! देखो, आज का हमारा यह वाक् क्या कह रहा है, कि हम याज्ञिक बनें और यागां भूतं ब्रह्मा मेरे प्यारे! देखो, याग में हम परिणत हो जायें आज मैं याग के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही, जैसे परमपिता परमात्मा ने संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया, मुझे स्मरण आता रहता है वैज्ञानिक जनों ने मानो याग के ऊपर बड़ा अन्वेषण किया हैं। मुझे विचार आता रहता है बेटा! देखो, महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ कुछ जिज्ञासु जन पंहुचे और वह जिज्ञासु बेटा! देखो, महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिलभ, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेणकेतु, और भी नाना ऋषि-मुनि बेटा! देखो, जैसे हमारे यहां गाड़ीवान रेवक और नाना ऋषि शिलक, मेरे पुत्रों! देखो, स्थली पर पंहुचे, स्थली पर जाने के पश्चात सम्भव ब्रह्मणा लोकां वाचन्नं ब्रह्मे कृतं देवाः हमारे यहाँ बेटा! जब उसके द्वार पर पंहुचे, तो भारद्वाज मुनि ने अमृतं उनका स्वागत किया और स्वागत करने के पश्चात उन्होंने कहा कहो भगवन! आज मेरे आश्रम पर आने का अभिप्रायः? उन्होंने कहा हमने श्रवण किया है यज्ञं ब्रह्मा व्रतं देवाः हम तुम्हारी यज्ञशाला को दृष्टिपात करना चाहते हैं बेटा! उनके विद्यालय मे एक यज्ञशाला थी और यज्ञशाला में देखो, जो भी याग करता था मुनिवरों! देखो, उनके चित्र बन करके द्यौ में प्रवेश करते, मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने कहा यज्ञं ब्रह्मा तुम याग करो मेरे आश्रम का यह नियम हैं। भारद्वाज मुनि ने जब यह कहा कि मेरे आश्रम का नियम है, तुम याग करो तो याग करने के लिए जब वे तत्पर हुए, उन्होंने बेटा! यन्त्र स्थित कर दिये, और जैसे ही स्वाहाः उच्चारण किए जाते, मुनिवरों! देखो, उनके चित्र बन करके मानो अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यौ में जाते हुए दृष्टिपात आने लगे। मेरे प्यारे! देखो, यन्त्रों में दृष्टिपात आ रहे थे, महर्षि गाड़ीवान रेवक बोले क्या हे भगवन!

आपको धन्य है आपने वैज्ञानिक तथ्यों से इस संसार को बहुत जाना हैं आप ने मानो देखो, वैज्ञानिक तथ्य याग को साक्षात्कार किया हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, उन्हें उनके चित्र जो स्वाहाः उच्चारण कर रहे थे, उनका यज्ञशाला का रथ बन करके वह देखो, रथप्रहे वह द्यौ में प्रवेश हो जाता है तो विचार आता रहता है प्रत्येक मानव अपने में इस प्रकार के यागों का अवधान करे। क्योंकि मन, कर्म, वचन की प्रतिभा एक सूत्र में जब सूत्रित हो जाती हैं तो प्रायः उनके चित्र बन करके द्यौ में प्रवेश करते हैं। तो विचार आता रहता है, मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने इस प्रकार के चित्रों का दर्शन बनाया तो अपने में मौन हो गएं और भारद्वाज मुनि से कहा-प्रभु! आपको धन्य है तो मेरे प्यारे! विचार यह आता है कि याग अपने में देखो, पूर्णता को प्राप्त होता रहा हैं, यह सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके और देखो, वर्तमान के काल तक इस क्रियाकलाप चल रहा हैं मानवीय मस्तिष्कों में मानो यह याग चल रहा हैं चाहे वह मुनिवरों! देखो, ब्रह्माण्ड के रूप में हों चाहे वह भौतिकवाद के रूप में हो चाहे वह साकल्य चरू के रूप में क्यो न हों परन्तु देखो, उनका विधान उनका जो मानो कर्मकाण्ड की पद्धति एक ही तुल्य मानी गई है। जैसे परमपिता परमात्मा का यह ब्रह्माण्ड कर्मकाण्ड से गुथा हुआ रहता हैं, इसी में बेटा! देखो, परमात्मा ब्रह्मा है, आत्मा यज्ञमान हैं, पंच महाभूत है उनमें कोई उद्गाता हैं कोई अध्वर्यु हैं कोई पुरोहित बन करके बेटा! देखो, याग कर रहा हैं, पुरोहित उसे कहते हैं जो मानो देखो, पराविद्या के देने वाला हैं और पराविद्या में मुनिवरों! देखो, अग्नि का व्यवधान आता हैं अग्नं ब्रह्मा देवत्वां ब्रव्हे अग्नि वह अग्नि देवताओं का मुख होने से इसमें ब्रह्मज्ञान देखो, ब्रह्मयाग की प्रतिष्ठा हो जाती हैं मेरे प्यारे! इसी प्रकार हमारे यहाँ वर्णनं ब्रहे कृतं और परमात्मा का इसी प्रकार यह जो हमारा मानव शरीर हैं यह भी यज्ञशाला है, मैं कई समय से अपने वाक् को उद्गीत रूप में गाता रहता हूँ, मानो देखो, यह नाना प्रकार के साकल्यों को ले करके मानो देखो, हृदय रूपी यज्ञशाला में हृदयग्राही करते हैं जिससे हृदय पवित्र होता हैं जितना हृदय पवित्र होता हैं उतना ही मन पवित्र होता है जितना मन पवित्र है उतना बुद्धि है और जितना मन और बुद्धि है उतनी ही बेटा! देखो, तरंगों से तरंगित होता हुआ यज्ञमान अपनी द्यौ को प्राप्त कर देता है। प्रत्येक मानव अपने द्यौ में प्रवेश हो जाता है, तो बेटा! देखो, आज का विचार यह क्या आज मैं परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, जैसा याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का उपदेश प्रारम्भ हैं ब्रह्मचारियों के मध्य में उन्होंने यह कहा कि हे यज्ञमान! तू होता बन करके आहुति दे और तू मानो देखो, ग्यारह होताओं के द्वारा हूत कर, ग्यारह होता भी जब मानो तेरे प्रतिभूति हो रहे हैं तो नौ द्वारा को देखो, अपने इस ब्रह्माण्ड को जानने का प्रयास कर, यह नौ द्वार इनमें नौ देवता किसी द्वार का जमदग्नि है तो किसी का कश्यप हैं किसी का कश्यप है तो किसी का अत्रि हैं अत्रि है तो किसी का मानो देखो, गौतम माना गया हैं इस प्रकार के मानो देखो, यह अप्रतं ब्रह्मा यह नौ द्वार है और नौ द्वारों पर नौ ऋषि विद्यमान हैं, उन ऋषियों को जानने का प्रयास करो। जिससे तुम्हारा याग सफलता को प्राप्त हो जाये, और तुम गौ मेध याग में परिणत हो जाओ, जिससे देखो, गो धन की सेवा हो और गो धन को एकाग्र करके तुम याज्ञिक बन जाओ। मेरे प्यारे! देखो, जब एकाग्र का प्रसंग आयेगा वहाँ इन्द्रियाँ आयेंगी और जहाँ गो धन का सम्बन्ध होगा वहाँ बेटा! गो नाम का पशु होगा और जहाँ गो नाम अमृतं ब्रह्मचारी का आयेगा वह ब्रह्मज्ञान को बेटा! देखो, गो मेध याग कहते हैं यहाँ नाना प्रकार के यागों का व्यवधान आता रहता हैं आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही केवल देखो, अध्वर्यु नाम राजा का हैं और जो राजा अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता हैं वह मेरे प्यारे! देखो, वह अध्वर्यु कहलाता हैं जैसे यज्ञशाला में एक अध्वर्यु होता हैं वह द्रव्य का स्वामी बनता हैं वह कुबेर कहलाता है यज्ञशाला में कुबेर होता हैं जो द्रव्य का स्वामी हैं वह द्रव्य को मानो प्रदान करता है जिसको हम चरू कहते हैं, साकल्य कहते हैं वह मेरे प्यारे! देखो, उसे प्रदान करता रहता हैं वह अध्वर्यु है। इसीलिए राजा

का नाम भी हमारे यहाँ देखो, अमृतं उदगाम् ब्रहे वह सर्वत्र का स्वामीतव करने वाला उसे उद्गीत उदगम् ब्रह्मा वह अध्वर्यु कहलाता हैं जो राष्ट्र का स्वामी है। तो मेरे प्यारे! देखो, आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः- ओ३म् देवां भूतं भवि वर्णस्सतं देवाः वाचन्नमाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल, अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गागर मे सागर की कल्पना कर रहे थें और वह इस ब्रह्माण्ड को प्रायः मापते रहते हैं मानो आज वह अपने विचारों से ब्रह्माण्ड को माप रहे थें, परमपिता परमात्मा को ब्रह्मा के रूप में, आत्मा को यज्ञमान के रूप में, पंच महाभौतिकता को अपने में मानो देखो, इस प्रकार यह मापा जा रहा था। यह यज्ञशाला के रूप में इन्होंने वर्णन किया हैं नाना प्रकार के यागों का जो कर्मकाण्ड हैं वह कर्मकाण्ड की पद्धतियाँ प्रायः पूज्यपाद को स्मरण रहती हैं विचार आता है कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करता हूँ क्या मैं जो शब्द उच्चारण करूं, तो वह आज मुझे पुनः से समय प्रदान किया है आज का यह जो हमारा विचार है, वह यह कि आज जहाँ हमारी यह वाणी जा रही हैं वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ हैं और मैं देखो, ऐसे काल में जो यह काल चल रहा है, यह काल वाममार्ग का काल है, वाममार्ग उसे कहते हैं जो उल्टे मार्ग पर गमन करता हैं पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने कई कालों में वर्णन कराया क्या आधुनिक काल का राजा भी वाममार्गी हैं और प्रजा भी वाममार्गी हैं प्रजा वह वाममार्गी कहलाती है। जिस प्रजा में सुरा और सुन्दरी में लगा हुआ हैं मानो सुरा में पान कर रहा हैं और सुन्दरी में संलग्न है और द्रव्य को एकत्रित करने में लगा हुआ है वह उल्टे मार्ग पर जब गमन करता है तो उसे वाममार्ग कहते हैं राजा भी इसी प्रकार राजा देखो, अभी-अभी पूज्यपाद गुरुदेव उच्चारण कर रहे थे। कि वह देखो, उद्गाता है उद्गीत में और जो अध्वर्यु है उसे राजा कहते हैं राजा के राष्ट्र में जब अध्वर्यु होता हैं तो राजा स्वतः अध्वर्यु बन करके अपना स्वामीतव और उसे मानो देखो, उसे अपनी भावना दे करके राष्ट्र को उन्नत बनाता हैं और जब राष्ट्र उन्नत हो जाता है वही राष्ट्र महानता को प्राप्त हो करके वह अध्वर्यु का रूप धारण करता है, इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव देखो, यहाँ गागर में सागर की कल्पना कर रहे थें, मैं भी देखो, राजा के सम्बन्ध में अपने विचार देता रहता हूँ मेरा तो सदैव एक ही मन्तव्य रहता हैं कि जो मानो देखो, यज्ञमान को मैं अपने हृदय से, उनके हृदय की आभा को प्रगट करता हुआ कहता हूँ हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और तेरे जीवन में सदैव महानता की प्रतिभा मा जन्म होता रहे हे यज्ञमान! अमृतं ब्रह्मा तू यज्ञ को पान करता रह यह तेरे जीवन का सौभाग्य है कि जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता हो देवताओं के द्वारा तेरा द्रव्य जाता हो और अग्नि के मुखारबिन्दु में तेरा द्रव्य प्रदान किया जाता हो, वही तो मानो देखो, यज्ञ का नाम वसु कहा जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यज्ञ को वसु कहा है, क्योंकि यज्ञ ही तो वसाने वाला है, वह वसाता है यज्ञ नही रहता तो मानव वसेगा नही इसी प्रकार मानो देखो, यज्ञ का नाम वसु हैं इसी में मानव वसता रहता हैं यदि सुक्रियाकलाप नही होगा, सुकर्म नही होगा तो मानो वस नही सकता, इसीलिए वेद का ऋषि, वेद का मन्त्र कहता है वसु कहलाता हैं तो वसु को धारण करना हमारा कर्तव्य है। और वसु को मानो रचयिता में ला करके क्रियात्मकलापों में परिणत होना है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई कालों में नाना प्रकार के विचार परिणत किए हैं तो आज का विचार मेरा भी यह कि मैं अपने यज्ञमान को अपने हृदय से आलिंगन करता हुआ कहता रहता हूँ तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहें और गृह में द्रव्य का सदैव सदुपयोग होता रहें और गृह स्वामी गृह स्वामिनी दोनो मानो प्रसन्नता की वृष्टि होती रहे।

इसी प्रकार देखो, मैं विशेष चर्चा न देता हुआ अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव राजा को भी वाम मार्गी, और मैनें भी यही कहा कि राजा वाम मार्गी इस समय वर्तमान में, वाममार्ग उसे कहते हैं जो राष्ट्र में संग्रह करने की प्रवृत्ति

वैश्यजन को होती है उनका वितरण पवित्र नही रहती, यह राज कर रहे हैं राजा बन करके संग्रह कर रहे हैं और जब राजा संग्रह करता है तो देखो, राष्ट्र की, राष्ट्र में अशान्ति हो जाती हैं। इसीलिए राजा के राष्ट्र में अशान्ति नही होनी चाहिए जब राजा को द्रव्य की आवश्यकता हो तो वह वैश्य से प्रार्थना वैश्य से घोषित करे कि हे वैश्य! तुम मुझे द्रव्य प्रदान करो राष्ट्र के लिए आवश्यकता हैं तो वह वैश्य जनों से द्रव्य ले करके राष्ट्र को उन्नत बनाते हैं और जब राजा स्वयं वैश्य प्रवृत्ति का बन जाता है मानो व्यवसाय करने वाला बन जाता हैं वह राजा नही कहलाता वह राष्ट्र तो देखो, अशान्ति अशान्ति का प्रतीक बन जाता हैं वह देखो, अशान्ति देता है प्रजा को और उससे ही जब राजा संग्रहित हो जाता है तो उससे उग्रवाद की प्रवृत्तियों का जन्म होता हैं क्योंकि उग्रवाद राष्ट्र से प्रारम्भ होता हैं जब राजा द्रव्य को एकत्रित करने लगता है देखो, वह वैश्यजनों को ले करके अपने कोष में वृत करता है कोष होना चाहिए राजा के द्वारा मैं इसका विरोधी नही हूँ परन्तु देखो, इसका विरोधी हूँ कि संग्रह करके अपने स्वार्थ के लिए अपने लिए जो कर रहा है वह राजा पापाचार करता हैं प्रजा में देखो, एक क्रान्ति की प्रतिभा को लाने का प्रयास कर रहा हैं, इसीलिए राजा को चाहिए क्या देखो, वैश्य के द्वारा हो या राष्ट्र का एक कोष होना चाहिए जिससे राष्ट्र ऊँचा बनें, पवित्रता को धारण करता रहे और अपने राष्ट्र को उन्नत बनाएं देखो, राजा जब स्वयं शासन करता हैं देखो, वह शासन का उसका वह आचार्य कहलाता हैं जैसे विद्यालय मे आचार्य अपने विद्यालय को पवित्र बनाता है ऐसे ही यह जो राष्ट्र होता है यह राजा का विद्यालय है, राजा अपने विद्यालय को ऊँचा बनाने में लगा रहे स्वयं को ऊँचा नही बनाएंगा तो विद्यालय ऊँचा नही रहेगा तो स्वयं राजा को ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए और ब्रह्मवेत्ता हो करके नाना प्रकार की रूढ़ि नही पनपनी चाहिए, जब राजा के राष्ट्र में अज्ञान आ जाता हैं और राजा स्वयं ब्रह्मवेत्ता नही रहता और ब्राह्मणजन नही होते तो उस राजा के राष्ट्र में देखो, वह नाना प्रकार की रूढ़ियाँ पनपती है ईश्वर के नाम पर और ईश्वर के नाम पर जब रूढ़ियाँ पनपती हैं मानो देखो, सम्प्रदाय पनप जाते हैं उस काल में रक्त भरी क्रान्ति के अवशेषों का जन्म हो जाता हैं मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा है क्या राजा को चाहिए, कि ब्रह्मवेत्ता बन करके ब्रह्मज्ञान को अपना करके अपने राष्ट्र को उन्नत बनाएं और उन्नत बना करके देखो, द्रव्य का राष्ट्र में सदुपयोग हो और देखो, वह द्रव्य का दुरूपयोग नही होना चाहिए राजा के राष्ट्र मे राजा स्वयं अपनी इन्द्रियों पर जय करने वाला हो और जय करके उसमे मानो सबके मानो विचारों को ले करके और एक महान विचार देखो, जिस पर विज्ञान और मानवता स्थिर हो जाएं उसको अपना करके अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना चाहिए। आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ मैंने पूज्यपाद गुरुदेव से जब यह कहा तो गुरुदेव ने कहा था, क्या देखो, राजा रावण के काल में भी नाना प्रकार के मत मतान्तरों की प्रतिभा का जन्म हो गया था नाना सम्प्रदा बन गएं थे क्योंकि राक्षक भी एक सम्प्रदा थी, जिसका रावण मानो देखो, सम्प्रदाय में रत्त था और वह मेघनाथ भी अमृते मानो देखो, उनके यहाँ भी एक देवी सम्प्रदा था जिस मानो देखो, उस सम्प्रदा ने तमोगुणी याग में परिणत रहते थे, इस प्रकार के सम्प्रदाओ का जब समूह बन जाता है तो कोई महापुरूष आ करके देखो, इसको विनाश के मार्ग पर ले जाता हैं और राष्ट्र को उन्नत बनाता है तो राजा का कर्तव्य है वह अपने राष्ट्र को उन्नत बनाने मे उसका देखो, उसको उसका मानवीय ज्ञान ही उसको ऊँचा बनाता है और यदि देखो, ब्रह्मज्ञान नही है तो राजा राष्ट्र का अधिकारी नही है, वह प्रजा को नेतृतव नही दे सकेगा, वह प्रजा को विज्ञान में ले जा सकता है परन्तु देखो, वह सात्विक नेवृता न दे करके वह देखो, रक्त भरी क्रान्तियां उत्पन्न कर सकता हैं तो इसी प्रकार मैं विशेष चर्चा न देता हुआ अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाता हुआ केवल यह कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहें, तेरे गृह में सदैव द्रव्य का सदुपयोग होता रहें, और देवतम अग्नि के मुखारबिन्दु में देखो, अग्न्याध्यान होता रहें ऐसा मेरा सदैव मन्तव्य रहता हैं अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से विश्राम पाऊंगा केवल यह क्या अमृतं ब्रह्मा क्या

हे राजन! तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बना इसी प्रकार देखो, राष्ट्रीयता की चर्चा मेरे अन्तर्हृदय में सदैव निहित रहती हैं, अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से विश्राम चाहूँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः- मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार दिए इनके विचारों में कितनी विडम्बना है राष्ट्र के प्रति कितनी विडम्बना है, मानवता के प्रति क्या मानव कैसा हो मानव ब्रह्मज्ञानी राजा भी ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए क्योंकि वह राजा वशिष्ठ कहलाता है। राजा को वशिष्ठ इसीलिए कहा जाता हैं क्योंकि वह पुरूषों में वशिष्ठ कहलाता है मेरे प्यारे महानन्द जी ने बड़े ऊर्ध्वा में अपने उदगार दिए हैं और वह वेदना से युक्त उदगार है जिससे देखो, राष्ट्र को ऊँचा बनाने से राजा के राष्ट्र में ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ि नही रहनी चाहिए क्योंकि वह जो रूढ़ि है ब्रह्मज्ञान से अलंकृत की जाती हैं ब्रह्मज्ञान से उनका निर्णय लिया जाता हैं तो वह निर्णय निर्णायक होता हैं राजा अपने मे निर्णायक बने और अपने पुरोहित के द्वारा उसको मन्थन में लाए और उस समय देखो, राजा की ईश्वर के नाम पर जो रूढ़ियाँ हैं वह प्रायः विनाश के मार्ग पर ले जाती हैं मानव समाज को तो यह आज का वाक् अब सम्पन्न होने जा रहा हैं आज के विचारों का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और परमात्मा के यज्ञरूपी संसार को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं क्योंकि यह जो संसार है यह ब्रह्माण्ड है यह परमात्मा का परमपिता परमात्मा का यज्ञमयी स्वरूप मानो उसका आयतन उसका गृह और वह उसी मे वास करता रहता हैं आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन ओ३म्

१८ वैदिक पद्धति १२-०१-१९९२

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी है और उसको अनन्तमयी जगत में जो यह भव्य याग हो रहा है मानो, वह इसलिए हमारा वेदमन्त्र अपनेपन का उदगीत गा रहा है। हे मानव! तू अपने में यागों का व्यवधान कर जिससे तेरी अन्तरात्मा पवित्र हो जाए।

मुनिवरों! हमारे यहाँ वैदिक साहित्य मे अपने में अपनेपन का भान और अपने पन की आभा में मानव सदैव रत्त और अपने में ही समाहित रहा है। तो इसलिए हम उस परमपिता परमात्मा की जो महिमा है अथवा उसका जो ज्ञान और विज्ञानमय जगत है, उसे हम सदैव अपने में ही धारमयी बनाते चले जाएं। तो आज का हमारा वेदमन्त्र हमे एक ऐसे मार्ग के लिए प्रेरित कर रहा है, जिस मार्ग में चलने के पश्चात मानव का अन्तःकरण पवित्र होता है। वह मार्ग, वेद के प्रकाश का मार्ग है, ज्ञान का मार्ग है क्योंकि मानव को ज्ञान और विज्ञान दोनों में रत्त होना है। विज्ञान कर्मकांड से आता है और ज्ञान अध्ययन से आता है तो दोनों ही एक सूत्र के मनके हैं। जैसे एक पक्षी के आकाश में गमन करने के लिए दो पक्ष होते हैं और वह दोनों ही पक्ष समान रहने चाहिएं, ऐसे ही हमारे यहा मानव का एक पक्ष ज्ञान का है और एक कर्मकांड का है। वेद का मार्ग यह कहता है कि मानव को ज्ञानकांड और कर्मकांड, दोनों में ही रत्त रहना चाहिए। वेद का मन्त्र कहता है कि जो मानव केवल ज्ञान ही ज्ञान में प्रवीण हो जाते हैं वह ज्ञान में ही विश्वसनीय बन जाते हैं, कर्मकांड की अवहेलना कर देते हैं, तो वह ऐसे प्राणी हैं जैसे मानव के श्रोत तो हैं, घ्राण भी हैं परन्तु दृष्टिपात करने वाले नेत्र नहीं हों। इसी प्रकार मानव को विचारना है कि ज्ञान के पश्चात कर्मकांड आता है।

मानव के अन्तरात्मा से प्रेरणा का जन्म होता है और वह अपने में प्रेरणा को प्राप्त करता हुआ कर्म करता है। वह देवताओं के समीप जाता है और देवताओं के गर्भ में जो ज्ञान-विज्ञान है, वह उसका अनुसरण करके उसको क्रिया में लाने का प्रयास करता है। कर्मकांड और ज्ञानकांड हमारे दोना पक्ष ऊंचे रहने चाहिए। एक मानव कर्म में विश्वास करता है, ज्ञान में नही का रहा है और वह कहता है मैं कर्मकांड करता चला जाऊं परन्तु उसको प्रतीत नहीं है कि तू क्या कर रहा है तो वह कर्म भी ऐसे ही हैं जैसे एक मानव के शरीर में सर्वत्र अंग विद्यमान हैं परन्तु उसके पग नहीं है तो वह अपंग बन जाता हैं। तो इसीलिए अपंग नहीं बनना चाहिए। जो कर्मकांडी होता है वह अपने भावों का वृत्त होता है और उसमें जब ज्ञान का मिश्रण हो जाता है तो वह ज्ञानी बन जाता है। वह ज्ञान और कर्मकांड दोनों में सम्मिलित हो करके ऊर्ध्वा में उड़ाने उड़ता है, नाना प्रकार की उडानों में अपनी भव्यता को प्राप्त करता है। जैसे हम सूर्य की उपासना करते हैं और हमने जान लिया है कि सूर्य प्रकाशक है, तेजवान है और वह हमारा रक्षक है, इस प्रकार मानव को ज्ञान होता है और वह प्रकाश में एक-एक परमाणु को अपने में सिंचन कर परमाणुओं को जान लेता है और अब वह उसकी कर्मकांड के माध्यम से उपासना करता है। कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनां ही एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों एक ही सूत्र के मनके हैं और इन मनकों को हमें जानना है।

मेरे प्यारे! देखो, एक मानव यह जानता है कि परमात्मा ने विद्युत को जन्म दिया है, मेघमण्डलों का उत्थान किया है, मानो मेघमण्डलों से वृष्टि होती है, वह समुद्रों से जल अपने में धारण करता है और विद्युत एक ओजस बनाती है, वह तेज दे करके मानव को तेजवान बनाती है। देखो, इसका नाम ज्ञान है। यदि हमने धनुर्याग का नाम श्रवण किया है परन्तु यदि हम कर्मकांड की पद्धतियों से धनुर्याग को नहीं करेंगे तो क्रिया में धनुर्याग को

नही ला सकेंगे। विद्यालय और ब्रह्मचारी में ज्ञान से और कर्म से नाना प्रकार के लोकों में उड़ान उड़ने की क्षमता हो तो कर्मकांड और ज्ञान, दोनों एक दूसरे के पूरक बन करके वह दोनों में पारायण हो गया है। जब पारायण हो गया है तो मुनिवरों! वह कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनों को अपने में लाना चाहता है क्यों कि दोनों एक पक्षी के दो पक्ष माने गएं हैं, जब ही वह उड़ान उड़ता है, यदि एक पक्ष होगा तो उड़न नहीं उडी जाएगी। इसी प्रकार जब याज्ञिक पुरूष याग करते हैं तो याग का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि अग्नि की धाराओं में सर्वत्र विद्यमानता रहती है। अग्नि की धाराओं पर वेदम् अक्षर स्थिर हो जाता है और वही अपने में उड़ान उड़ता रहता है। अग्नि की धाराओं पर शब्द अन्तरिक्ष में चला गया, द्यौ में प्रवेश हो गया और द्यौ, अन्तरिक्ष को जान करके यन्त्रों का निर्माण करना है तो वह कर्मकांड की पद्धति बन गई। ज्ञान और कर्म दोनों ही मानव के साक्षी होने चाहिएं, दोनों में उसे अपने में ऊर्ध्वता को प्राप्त करना चाहिए। हमारे यहाँ कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनों ही ऊर्ध्वा में गमन करेंगे तो जीवन सागर से पार होने का प्रयास हम प्रायः करते रहेंगे।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। कागभुषुण्ड जी जी ने महर्षि लोमश मुनि महाराज से कहा कि मैं तपस्या में प्रवीण होना चाहता हूं, मैं तपस्वी बनना चाहता हूँ। उन्होंनें कहा बहुत प्रिय, तुम तपस्वी बनो। कागभुषुण्ड जी ने कहा कि मैं तपस्वी कैसे बनूं? लोमश ऋषि ने कहा कि तुम अनुष्ठान करो, याग करो। देखो, संकल्प करके जब याग का नाम, याग का दिनांक निश्चित हो जाता है तो उसको अनुष्ठान कहते हैं अनुष्ठान करो तो अनुष्ठान की पद्धति को अपनाते हुए अनुष्ठित हो जाओ। अनुष्ठान में जो भी तुम्हें आहार करना है, व्यवहार करना है, जो भी तुम्हारा क्रियाकलाप है, उसके आधार पर तुम अपने में निष्ठित हो जाओ। कागभुषुण्ड जी ने कहा कि-प्रभु! बहतु प्रिय, मैं वायुमण्डल को सबसे प्रथम जानना चाहता हूँ। लोमश ऋषि ने कहा कि वायुमण्डल वह है जहाँ हम श्वास लेते हैं और श्वास हमारे मन-मस्तिष्क को ऊर्ध्वा में ले जाता है। श्वास को जब हम बाह्य जगत में लाते हैं तो वही अशुद्ध परमाणुओं को बाह्य जगत में प्रवेश कर देता है तो बाहरी जगत और आन्तरिक जगत दोनों, उसकी महानता में परिणित हो गए और उसी में वह निहित हो गया है तो दोनों प्रकार की आभाओं को ले करके सक्षम करो।

ऋषि ने ज्ञान से जान लिया कि अनुष्ठान संकल्प को कहते हैं और संकल्प में जो क्रियाकलाप हो रहा हैं, जो उसमें वृत्त है, वह अपने में धारण करना है। उन्होंने लोमश ऋषि से कहा कि तपस्वी बनने के लिए आहार क्या है, व्यवहार क्या है? लोमश ऋषि ने कहा कि ज्ञान और कर्म हैं। मेरे प्यारे! एकान्त में विद्यमान हो करके लोमश और कागभुषुण्ड जी यह विचारते रहे कि तपस्या करने से पूर्व हम उपासक बनना चाहते हैं तो उपासना का एक ही अभिप्राय होता है कि हमें जानना है। जैसे जल की उपासना का अभिप्राय यह है कि हम जल को देखें कि उसका कहाँ उपयोग होता तो यही जल हमारा उपास्य है। हम इसकी उपासना करेंगे तो उसका करेंगे, ज्ञान में, विज्ञान में प्रवेश करेंगे तो वहाँ हमज ल को क्रियात्मकता में परिणित करेंगे। वह कृषि को, आनन्द को देने वाला जल है तो जल का उपयोग उसकी पूजा का माध्यम माना गया है, वह पूजा कहलाई जाती है। हम पूजक बनें, हम पुजारी बन करके ही अपने को ऊंचा बनायें। मेरे प्यारे! जब तक हम क्रियाकलाप में प्रवीण नहीं होगे तो जीवन में ज्ञान और कर्म दोनों को नहीं जान सकेंगे और यदि कर्मकांड ही कर्मकांड है, ज्ञान नहीं है तो कर्म नहीं हो सकेगा, मानो उसकी उपासना नहीं कर सकते। यदि ज्ञान ही ज्ञान होता है, कर्म नहीं है तो वह एक रूपक माना जाता है। ज्ञान और कर्मकांड दोनों ही मानव को ऊर्ध्वा में ले जाते है।

बेटा! कागभुषुण्ड जी ने याग का प्रारम्भ किया तो याग से वायंमण्डल को पवित्र बना उसी वायुमण्डल को जब आन्तरिक जगत में ले जाएंगे, हृदय से आलिंगन करेंगे तो हृदय पुकार-पुकार के कहेगा कि हृदय ब्रह्म हृदय

ब्रह्रे कृतम। वह हृदय ब्रह्म का उपासक बन करके ब्रह्म की प्रकृति को और ब्रह्म के विज्ञान को अपने में सिंचन कर रहा है तो वैज्ञानिक बन रहा है। विचार आता है कि कर्मकांड और ज्ञानकांड, दोनो एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। ऋषि-मुनियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार प्रायः वैदिक साहित्य से हम प्राप्त करते रहे हैं क्योंकि जब दार्शनिकजन अपनी स्थलियों पर विद्यमान होते हैं तो वे अपने-अपने दृष्टिकोणों से संसार को मापने लगते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक मानव अपनी दृष्टि से मापता है परन्तु जब मनस्वत और प्राणत्व एक ही सूत्र में पिरोऐ जाते हैं तो वहाँ सबका एकाकीकरण हो जाता है। तो विचार आता है कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का अपने में अनुसरण करते चले जाएं, अपने में जानते हुए जानाति ब्रह्मा, उसको जान करके सागर से पार हो जाएं। आज का विचार केवल यह कि हमारे दोनों पक्ष ऊंचे होने चाहिएं।

आज देखो, यजम् ब्रह्मा, याग के ऊपर विचार-विनिमय हो रहा था। ब्रह्मचारी! तू याग कर। गृह स्वामिनी, गृहस्वामी से कहती है कि आओ, हम याग करें। राजा प्रजा से कहता है कि अश्वमेध याग करो जिससे राष्ट्र ऊंचा बने। अश्व नाम राजा का और मेध नाम प्रजा कर, जब दोनों सम्मिलित हो करके याग करेंगे तो याग सम्पन्न होगा और अजा मेघाम ब्रह्मे, देखो, मेध को अपने में धारण करना है, जैसे हमारे यहाँ वाजपेयी याग है। जब ब्रह्मणा ब्रहे वृत्तम उद्गीतम ब्रह्मः उद्गीत गाने वाला उद्गीत गाता है, पुरोहित उसके समीप विद्यमान है तो वह कहीं अग्निष्टोम यामाम् याग करता है, कहीं वाजपेयी याग करता है। अग्निष्टोम याग वृष्टि के लिए है और वाजपेयी याग उसकी पुष्टि के लिए कहलाता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के यागों का विधान प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है, यज्ञम् ब्रह्मा यज्ञम् देवतव यज्ञः याग में हमे परिणित होना है।

मुनिवरों! अश्वपति राजा की वार्त्ता हमें स्मरण आती हैं, वे अग्निष्टोम याग करते थे। प्रातःकालीन अग्निष्टोम याग राजा करता है, वह वेदमन्त्रों का उद्गीत गा अपनी देवी से कहता है कि आओ, देवी! तुम याग में सम्मिलित हो आता, राष्ट्र के लिए हम वाजपेयी याग करें, इससे हमारा राष्ट्र वाचस्य बन जाए और वाचस्य बन करके महानता को प्राप्त हो जाए। बेटा! अश्वपति राजा का जीवन मुझे स्मरण है। अश्वपति प्रातःकालीन अपनी कृषि का उद्यम और याग करके अपने राष्ट्र के लिए स्वयं अपने में कला-कौशल करके द्रव्य प्राप्त करते। कृषि के उद्यम से जो अन्न उत्पन्न होता उसे पान करना और राष्ट्र के क्रियाकलापों में तत्पर हो जाना, ब्रह्मज्ञान का अध्ययन करना है। ब्रह्माणा ब्रह्मे, हे ब्राह्मण! तू आ और मेरे राष्ट्र को बुद्धिमान बना और इस राष्ट्र को ऊर्ध्वा में गमन करा। जैसे वह महाराज अश्वपति प्रार्थी बनते रहते थे इसी प्रकार प्रत्येक मानव जब प्रार्थी बना रहता है तो प्रार्थना में तल्लीन हो करके वह देवतव को प्राप्त करता है। देखो, परोक्ष में हमारा यह मानव शरीर, याग के रूप में रहता है।

बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में ब्रह्मचारी आते और नाना प्रकार के प्रश्न और उत्तरावलियां बना करके चले जाते। हम विचारक बन करकेजब विचार में प्रवेश करेंगे तो हमे यह भान होगा कि वास्वतमें इस प्रकार की धाराओं का प्रायः जन्म प्रत्येक मानव के द्वार पर होना चाहिए। मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि हम नाना प्रकार के यागों में परिणित हो जाएं क्योंकि याग मानव को ऊर्ध्वा में ले जाते हैं। आज हम विष्णु शब्द का प्रतिपादन कर रहे थे। राजा अश्वपति के यहा विष्णु याग का भी विधान था क्योंकि वह विष्णु वसु कहलाता है, प्रत्येक मानव उसमें बसता है, उसी में रत्त रहता है। यहाँ विष्णु नाम याग का है। यज्ञो वै विष्णुः यह यज्ञ विष्णु कहलाता हैं। मेरे प्यारे!। अपने राष्ट्र, अपने समाज के प्रति जो विडम्बित हो रहे है, वे ब्रह्मणा शान्त होने चाहिएं। इस प्रकार जब मानव अपने में धारयामि बना रहता है तो देवतव को प्राप्तहोता है। यज्ञ ही हमें बसाता है क्योंकि यह वसु है, यह बसाने वाला है। मानव ध्यानावस्थित होकर याग में परिणित हो जाते हैं और राजा अग्निष्टोम याग करता है। विचार केवल यह कि परमपिता परमात्मा की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें जो

परमपिता परमात्मा रचयिता है, जो उपाधियों से संसार में अलंकृत हो रहा है, उसे हमें विचारना है और हमें परमपिता परमात्मा की महिमा का भान होना चाहिए। हम उसके ऊपर चिन्तनीय बने रहें और कर्मकांड की देवी प्रवृत्ति से भी मानव देवतव को प्राप्त होता रहा है। अब मेरे प्यारे! महानन्दम् ब्रह्मेः दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी का प्रवचनः- ओ३म् देवानाम भवितम नमः द्रव्यम् वृत्तम महः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल, मेरे भद्र समाज! अभी-अभी मेरे परमपूज्य गुरुदेव गागर मे सागर की कल्पना कर रहे थे, कर्मकांड और ज्ञानकांड उनका उद्गार था। विषय केवल यह कि मानव को ज्ञानी और कर्मकांडी भी बनना चाहिए। जो मानव कर्मकांड और ज्ञानकांड को ले करके, दोनों पक्षों में गमन करता है वह प्रायः अपने उद्देश्य को पूर्ण कर लेता है, वह अपने उद्देश्य मे पूर्णता को प्राप्त हो करके बैतरनी नदी से पार हो जाता है। मेरे परमपूज्य गुरुदेव बहुत-सी आख्यिकायें हमें प्रकट करा रहे थे। कर्मकांड की पद्धतियाँ मानव अध्ययन करता रहता है और साथ में याग जैसे कर्मकांड, क्रियाकलापों में। रत्त रहता है क्योंकि वह ज्ञान और कर्म दोनों से बनते हैं।

आज यह काल बड़ा विचित्र काल है, यहाँ न तो गुरु है न कोई शिष्य। यह काल ऐसा है जहाँ गुरु-शिष्य की परम्परा सीमा से दूरी चली गई है। मैं तो यह कहता रहता हूँ कि इस कर्मकांड को ऊंचा हो करके गमन करने चाहिएं, जिसका परमपूज्य गुरुदेव ने अभी-अभी उच्चारण किया। परन्तु इस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा नहीं प्रकट करूंगा, विचार केवल यह कि यहाँ एक याग हो रहा था। याग में मेरा अन्तर्हृदय यज्ञमान के साथ रहता है और मैं यह कहा करता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। मेरे परमपूज्य गुरुदेव यह कहा करते हैं कि जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है वहाँ द्रव्य उसको नहीं त्यागता और जहाँ द्रव्य की अवहेलना होती है वहाँ द्रव्य क समय उसको त्याग देता है। तो विचार आता है, मैं यह कहता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरा तन-मन-धन सर्वत्र देवता को समर्पित होना चाहिए। वह यज्ञ देवता तेरे को संसार से पार पहुंचायेंगे। इस प्रकार का उपदेश इस वैदिक साहित्य में प्रायः हमारे समीप आता रहा है, हम इसे विचारते रहे हैं।

याग के सम्बन्ध में हमें परमपूज्य गुरुदेव ने बड़ी आख्यिकाएं प्रकट कराई हैं। इनका मन्तव्य बड़ा विचित्र रहा है क्योंकि याग ऐसा कर्मकांड है जो अपने में बड़ा पूर्ण है। इसमें देवताओं की पूजा, अग्नि की पूजा और जल की पूजा है, अन्तरिक्ष की, पृथ्वी की पूजा है और यही पूजा करके मानव संसार सागर से पार होने का प्रयास करता है। तो विचार आता है कि वह सर्व याग एक प्रकार भव्यता में प्राप्त हो रहा है। हम इस प्रकर के यागों में परिणित होकर मन को ऊंचा बनायें। यज्ञमान प्रायः कह रहा है कि मन प्राण मनम् प्रहेयम् ब्रह्वे प्राणों मने मनम् व्रति वृताः। देखो, मैंने कई कालों में पूज्यपाद को वर्णन कराया है कि एक मन विशेष है, एक सामान्यत्व है। इसी प्रकार दो प्रकार का प्राण है। प्राण और मन को सहयोगी बना करके जब हम गमन करेंगे तो मन के लिए सामग्री चाहिए, साकल्य चाहिए। वह साकल्य क्या है जिससे हमारा मन पवित्रता को प्राप्त हो जाए। मन का प्राण ही सखा अथवा मित्र माना गया है। जब हम अपने परमपूज्य गुरुदेव के आश्रम में अध्ययन करते थे तो पूज्यपाद प्रातःकाल ब्रह्मचारियों के मध्य में,साधको के मध्य में विद्यमान हो करके यह कहाकरते थे कि मन को प्राण के द्वार पर ले जाओ। जब ले गए तो वह यह कहते प्राण को मन पर ले जाओ। जब ले आए तो उन्होंने कहा दोनों का मिलान करो। तो जब प्राण और मन, दोनों का मिलान हुआ तो मन प्रसन्न हो गया और मन देवतव को प्राप्त हो गया। प्रायः यह एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं।

परम पूज्य गुरुदेव ने नाना प्रकार का ज्ञान, विज्ञान और कर्मकांड दिया है। हम वैसे ही कर्मकांडी बने, धर्मवृत्ति को अपनाने का प्रयास करें। हे यज्ञमान! जब तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो तो मन को एकाग्र कर।

मन में जो ज्योति जागरूक हो रही है, प्राण के माध्यम से जो अग्नि अपना स्वरूप दे रही है, साकल्य दे रही है, तेरे चित्रों को द्यौ में प्रवेश कर रही है, चित्राम् ब्रह्मणा बन करके अग्नि की धाराओं पर वायुमण्डल को दर्शा रही है, आज तू उसकी उपासना कर। मैं अपने परमपूज्य गुरुदेव से यह कहता रहता हूँ कि पूज्यपाद इस प्रकार के ज्ञान और विज्ञान में ही हमें ले जाते हुए जब गागर में सागर भरते हैं तो मानो वे प्रातःकालीन ब्रह्मचारियों के मध्यम में विद्यमान हो करके क्रियात्मकता में ले जाते हैं और मन और प्राण को एकाग्र करके अपनी इस दे हके द्वारा एकाग्र हो करके सांत्वना को प्राप्त होते हैं, अग्नम् ब्रह्मा, वे प्राणायाम करते हैं जिससे हमारे अन्तःकरण में प्रवेश हो गई अशुद्धता समाप्त हो जाए और अन्तःकरण पवित्रता को प्राप्त होता रहे।

इसी प्रकार विचार आते रहते हैं, मैं अपने परमपूज्य गुरुदेव से कोई वाक्य प्रकट करने अथवा कोई व्याख्यान देने नहीं आया हूँ। मैं केवल यज्ञमान के समीप आया हूँ और अपने हृदय से यही कहता रहता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे तीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे, द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, क्योंकि द्रव्य सद्मयी कहलाता है और द्रव्य का दुरूपयोग होना अज्ञान कहलाता है। सदुपयोग वही है जो मोक्ष की पगडंडी को दर्शा देता है और दुरूपयोग नरक बना देता है। मैं राष्ट्र के प्रति भी बहुत-सी चर्चाएं परमपूज्य गुरुदेव को अवगत कराता रहता हूँ और यह उद्गीत गाता रहता हूँ कि आधुनिक काल का यह राष्ट्र वाममार्गी हैं। इसमें एक दूसरे की प्रबलता नहीं और देवतव नहीं, ऊंचा मार्ग नहीं है। यह वाममार्ग इसलिए क्योंकि आहार अशुद्ध हो गया, व्यवहार अशुद्ध हो गया। यदि आहार देवम् ब्रह्म, जिसके यह वृत हो गएं हैं तो ऊर्ध्वा में कैसे उड़ान उड़ी जाएगी। विचार आता रहता है कि हम देवतव को धारण करें और जैसे परमपूज्य गुरुदेव से कहा है, राष्ट्र में राष्ट्रवाद याग करना चाहिए। राजा अपनी प्रजा को महान बनाने के लिए अश्वमेध याग मे ले जाए। आज मैं वरणीय शैली में नहीं जाना चाहता हूँ, वाक्य केवल यह कि हमारा जीवन प्रायः परमात्मा को निहारता रहे, उसके ज्ञान और विज्ञान को धारण करता हुआ मानव संसार सागर से पार हो जाए। हमें अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करना चाहिए, महान बनाना ही प्रकाश में जाना हैं महान न बनाना देखो, अन्धकार में प्रविष्ट होना है, मृत्यु का आह्वान करना है।

भगवन! जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक याग का आयोजन हुआ। यागाम भूतम् ब्रह्मे यागः, याग अपने में पूर्णता को प्राप्त होता रहा है। मन की पवित्रता विशेष होती है जो याग विशेष बन जाता है। आज मैं परमपूज्य गुरुदेव से उच्चारण कर रहा हूँ कि आधुनिक काल का राष्ट्रवाद प्रियता को प्राप्त नहीं है। यदि राष्ट्र को ऊंचा बनना है तो रजा को प्रजा को महान बनाना है, जैसे मन अपनी इन्द्रियों की रक्षा करता है राजा को इसी प्रकार रक्षार्थी होना चाहिए। रक्षा करते-करते वह विष्णु का रूप बन करके अपने में अपनेपन को चाहता है। राजा यदि अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहता है, वाममार्ग से उपरामता को चाहता है तो राष्ट्र में ज्ञान होना चाहिए। जैसे परमपूज्य गुरुदेव ने वर्णन कराया राजा स्वयं अपने में ब्रह्मवेत्ता बने और प्रभु को ध्यानावस्थित भी करे। जब राजा इस प्रकार का बन जाता है तो ध्यानावस्थित हो करके अपने में ऊर्ध्वा में गमन करता रहता है। यजमन् ब्रह्मा यजमन् देवाः, प्रजा में मन होने चाहिए। आधुनिक काल में मानव चिन्तित हो रहा है और वह चिन्तित क्यों है? में दृष्टिपात करता रहता हूँ, परमपूज्य गुरुदेव को अवगत कराता रहता हूँ कि आधुनिक काल में न तो द्रव्यपति को शान्ति है, और न द्रव्य की हीनता वाले को शान्ति है, इसका मूल कारण यह कि राजा को शान्ति नहीं है। राजा, जो अधिपति है, शान्ति में नहीं होगा तो प्रजा भी शान्ति में नहीं होगी। माता-पिता जब कर्मकांडी नहीं होंगे तो उनकी संतानें भी नहीं होगी।

राजा ब्रह्मज्ञानी हो, कर्मकांडी हो, अपना शुद्ध आहार-व्यवहार करने वाला हो जैसे पूज्यपाद अश्वपति की चर्चा कर रहे थे। अश्वपति प्रातःकालीन अपने में कृषि का उद्यम करके उसके अन्न को पान करते तो बुद्धि पवित्र

रहती और राजा राष्ट्र के में लगे रहते। वे स्वयं अपने कोष का अन्न ग्रहण करते थे, राष्ट्र के कोष का अन्न ग्रहण नहीं करते थे। आधुनिका काल का राष्ट्र ऐसा है कि वह प्रजा के श्रृंगार, प्रजा के वैभव के अपने में संग्रह कर रहा है तो बुद्धि कैसे पवित्र रहेगी। जब संग्रह ही नहीं होगा तो बुद्धि पवित्रता को धारण करती रहेगी। मैंने कई काल में कहा है कि जो राजा प्रजा के वैभव को अपने वैभव में लगाता है तो उस राजा को शान्ति नहीं होगी, वह राजा अशान्ति में होगा। प्रजा का द्रव्य, प्रजा के ही क्रियाकलाप में आए तो प्रियत्व है। जब राजा स्वार्थी बन करके उस द्रव्य को अपने भोग में लाता है तो वह भोग उसका विनाश कर देता है, उसको अपने में धारण करता हुआ वह अप्रियता को प्राप्त हो जाता है। राजा अश्वपति स्वयं अपना कृषि उद्यम करके, उस अन्न को पान करके राष्ट्र और प्रजा को स्वच्छ बनाने का प्रयास करते थे।

राजा के यहाँ किसी प्रकार का सम्प्रदाय नहीं होना चाहिए। जिस काल में देखो, ईश्पर का नामकरण नहीं होता, वहाँ मन और प्राण दोनों बिखर जाते हैं। मानव को चाहिए कि उन्हे बिखरने न दे। राजा के राष्ट्र में जब ईश्वर के नाम पर साम्प्रदायिकता आ जाती है तो एक रूढ़ि दूसरे के रक्त की प्यासी बन जाती है और राष्ट्र का उन रूढ़ियों से विनाश हो जाता है और प्रजा में अशान्ति आ जाती है। ईश्वर के नाम पर जब बिखर जाते हैं तो मानव का मन और प्राण, दोनों बिखर जाते हैं, प्रवृत्ति बिखर जाती है, द्रव्य का दुरूपयोग हो जाता है और राष्ट्र विनाश के मार्ग पर चला जाता है। ऐसी सम्प्रदायों का जन्म हो तो राजा को ब्रह्मवेत्ता बन करके जो भी विचार, विज्ञान और मानवीयता से स्थिर हो जाए, उस विचारधारा को स्वीकार करके राष्ट्र का पालन करना चाहिए। जब राजा य कहता है कि मैं तो धर्मनिरर्पेक्ष हूं तो अरे, राजन्! जब तुम धर्मनिरर्पेक्ष बन गएं तो धर्म का पक्ष कहाँ है? जब धर्म का पक्षतेरे द्वारा नहीं रहेगा, तो तू क्या है? मेरे विचार में तो वह वाममार्गी बन गया है। जब वह धर्मनिरर्पेक्ष हो गया है तो धर्मनिरर्पेक्ष का अभिप्राय यह कि वह धर्म जानता नहीं है।

आघुनिक समाज में धर्म को कहीं जल में स्वीकार कर लिया है, कहीं भव्य भवनों में स्वीकार कर लिया। अरे, जो परमात्मा का बनाया हुआ यह भव्य भवन है इसमें जो इन्द्रियाँ हैं, इनमें धर्म समाहित रहता है। मेरे परमपूज्य गुरुदेव ब्रह्मचारी से कहते हैं कि चक्षु में सुन्दामि, प्राणम में सुन्दामि। हे ब्रह्मचारी! तू इन्द्रियों को ऊंचा बना, प्राण-सु-प्राण हो, वह अशुद्ध नह हो, दृष्टि तुम्हारी सु हो, माता और पुत्री की दृष्टि से दृष्टिपात करने वाला तेरा समाज रहना चाहिए। सु-दृष्टिपात करना धर्म है, सु-युगन्ध को लेना धर्म हे, सु-शब्दों को श्रवण करना धर्म है, सु-क्रियाकलाप का नाम धर्म है। अरे, धर्म को अपना करके तू अपने राष्ट्र को ऊंचा बना क्योंकि जो ब्रह्मवेत्ता राजा होता है, वह धर्म को इन्द्रियों में स्वीकार कर लेता है। भव्य भवनों में धर्म नहीं होता, वहाँ तो राज्यसभा होती है, वहाँ एक दूसरे की कटुता होती है। धर्म तो मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता हैं मेरे परमपूज्य गुरुदेव में मुझे कई कालों में वर्णन कराया कि ब्रह्मज्ञान से राजा अपनी प्रजा को कहता है कि इन्द्रियों से सु-दृष्टिपात करना और दर्शनों को वाणी से विचारना है, सु-अध्ययन करना है। अरे, वही तो मेरा धर्म है, उस धर्म का अपना करके तू अपने राष्ट्र और समाज को उसी मार्ग पर ले चल।

राजा जब ब्रह्मवेत्ता होता है तो नाना प्रकार की रूढ़ियों को इन्द्रियों के धर्म से समाप्त कर देता है। बाह्य और आन्तरिक जगत, दोनों का मिलान करके जो क्रियाकलाप हो रहे हैं, ऐसी प्रेरणा देखो, दैत्य के हृदय में भी होती है और ऐसी प्रेरणा मानव के मन में भी होती है, उन प्रेरणाओं का उत्सुक बनना है। मेरे परमपूज्य गुरुदेव ने कई काल में कहा कि जब आन्तरिक जगत से प्रेरणा उत्पन्न होती है तो वह प्रेरणा आत्मा की है। आत्मा को ब्रह्म कहते हैं और वही ब्रह्म हत्या कहलाती है जो आत्मा की वाणी को स्वीकार नहीं करता। आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं देने आया हूँ, मेरे हृदय में विडम्बना है और विडम्बित होता हुआ मैं अपने विचार देता रहता हूँ।

ब्रह्मवेत्ता राजा का पुरोहित हो और उसका गुरु, आचार्य हो। राजा का पुरोहित ही राष्ट्र को सदैव सचेत करता है। राजा जब सुरापान करता है, जब प्रजा के वैभव को अपने में संग्रह करता है तो वह राजा नहीं होता, वह तो वाममार्गी कहलाता है। तो आज मैं विशेष चर्चा न प्रकट करता हुआ अपने परमपूज्य गुरुदेव से आज्ञा पाता हुआयह कहता रहता हूँ कि ज्ञानाम ब्रह्मे ज्ञान और कर्मकांड दोनों ही ऊंचे बनने चाहिए।

पूज्यपाद गुरुदेवः- मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं और उन्होंने आधुनिक काल की कुछ चर्चाएं की है। उन्होंने राष्ट्र को वाममार्गी वृत्तियों में रत्त और यज्ञमान को उन्होंने हृदय से उनके अपने जीवन के सम्बन्ध में वार्त्ता कही। राष्ट्र के प्रति इनका उद्गार बड़ा विचित्र है। परम्परागतों से ऋषि-मुनि राजा को अपना उपदेश देते रहे हैं, उनका एक विचार चलता रहता है, भ्रमण करता रहता है, चरेवेति होता रहता है। तो आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा को जानते हुए, धर्म और मानवीयता को इन्द्रियों में दृष्टिपात करते रहें। वैदिक पद्धतियों में प्रायः ऐसा आया है और महानन्द जी ने भी उसी प्रकार अपने उद्गार दिये। यह आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा। अमृतसर, १२-०१-१९९२